मूल्य चार रुपये आठ आने

प्रकाशक :
ओम्प्रकाश
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई

मुद्रक :
धीरूभाई दलाल
एसोसियेटेड एडवर्टाइज़र्स एण्ड
प्रिंटर्स लिमिटेड, तारदेव, बम्बई ।

आमुख

पञ्चतन्त्र संस्कृत-साहित्य की अनमोल कृति है। न केवल इस देश में किन्तु अन्य देशों में भी, विशेषतः इस्लामी जगत् और यूरोप के सभी देशों के कहानी-साहित्य को पञ्चतन्त्र से बहुत बड़ी देन प्राप्त हुई। एक भारतीय विद्वान् ने डॉ० विण्टरनित्स से प्रश्न किया, "आपकी सम्मति में भारतवर्ष की संसार को मौलिक देन क्या है।" इसके उत्तर में संस्कृत-साहित्य के पारखी विद्वान् डा० विण्टरनित्स ने कहा—"एक वस्तु, जिसका नाम मैं तुरन्त और बेखटके ले सकता हूँ, वह पशु-पक्षियों पर ढालकर रचा हुआ कहानी-साहित्य है, जिसकी देन भारत ने संसार को दी है।" कहानियों के क्षेत्र में भारतीय कहानी-संग्रहों ने विश्व-साहित्य को प्रभावित किया है। पशु-पक्षियों की कहानी का सबसे पुराना संग्रह जातक कथाओं में है जो वस्तुतः लोक में प्रचलित छोटी-बड़ी कहानियाँ थीं और नाम-मात्र के लिए जिनका सम्बन्ध बुद्ध के जीवन के साथ जोड़ दिया गया। जातकों की कहानियाँ सीधी-सादी, बिना सँवारी हुई अवस्था में मिलती हैं। उन्हीं का जड़ाऊ रूप पञ्चतन्त्र में देखने को मिलता है, जो एक महान् कलाकार की पैनी बुद्धि और उत्कृष्ट रचना-शक्ति का पूर्ण कलात्मक उदाहरण है।

पञ्चतन्त्र के लेखक विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण थे। कुछ लोग इस सीधे-सादे तथ्य में अनावश्यक सन्देह करते हैं। विष्णुशर्मा के मूल ग्रन्थ के आधार पर रची हुई पञ्चतन्त्र की वाचनाओं में उनका नाम ग्रन्थकर्ता के रूप में दिया हुआ है, जिसके सत्य होने में सन्देह का कोई कारण नहीं दीखता। किन्तु उनके विषय में और कुछ विदित नहीं। पञ्चतन्त्र के कथा-मुख प्रकरण से केवल इतना आभास मिलता है कि वे भारतीय नीतिशास्त्र

के पारङ्गत विद्वान् थे। जिस समय उन्होंने पञ्चतन्त्र की रचना की उस समय उनकी आयु अस्सी वर्ष की थी। नीतिशास्त्र का परिपक्व अनुभव उन्हें प्राप्त हो चुका था। उन्होंने स्वयं कहा है—"मैंने इस शास्त्र की रचना का प्रयत्न अत्यन्त बुद्धिपूर्वक किया है जिससे औरों का हित हो।" जिस समय उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा उनका मन सब प्रकार के इन्द्रिय-भोगों से निवृत्त हो चुका था और अर्थोपभोग का भी कोई आकर्षण उनके लिए नहीं रह गया था। इस प्रकार के विशुद्ध-बुद्धि, निर्मल-चित्त इस ब्राह्मण ने मनु, बृहस्पति, शुक्र, पराशर, व्यास, चाणक्य आदि आचार्यों के राजशास्त्र और अर्थशास्त्रों को मथकर लोकहित के लिए पञ्चतन्त्र रूपी यह नवनीत तैयार किया। ईरानी सम्राट् खुसरो के प्रमुख राजवैद्य और मंत्री बुर्ज़ुए ने पञ्चतन्त्र को अमृत की संज्ञा दी है जिसके प्रभाव से मृत व्यक्ति भी जीवित हो उठते हैं। उसने किसी पुस्तक में पढ़ा कि भारतवर्ष में किसी पहाड़ पर संजीवनी औषधि है जिसके सेवन से मृत व्यक्ति जी उठते हैं। उत्कट जिज्ञासा से वह ५५० ई० के लगभग इस देश में आया और यहाँ चारों ओर संजीवनी की खोज की। जब उसे ऐसी बूटी न मिली तब निराश होकर एक भारतीय विद्वान् से पूछा, "इस देश में अमृत कहाँ है?" उसने उत्तर दिया, "तुमने जैसा पढ़ा था, वह ठीक है। विद्वान् व्यक्ति वह पर्वत है जहाँ ज्ञान की यह बूटी होती है और जिसके सेवन से मूर्ख-रूपी मृत व्यक्ति फिर से जी जाता है। इस प्रकार का अमृत हमारे यहाँ के पञ्चतन्त्र नामक ग्रन्थ में है।" तब बुर्ज़ुए पञ्चतन्त्र की एक प्रति ईरान ले गया और वहाँ सम्राट् के लिए उसने पहलवी भाषा में उसका अनुवाद किया। पञ्चतन्त्र का किसी विदेशी भाषा में यह पहला अनुवाद था, पर अब यह नहीं मिलता। उसके कुछ ही वर्ष बाद लगभग ५७० ई० में पहलवी पञ्चतन्त्र का सीरिया देश की प्राचीन भाषा में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद अचानक उन्नीसवीं शती के मध्य-भाग में प्रकाश में आया। इसका सम्पादन और अनुवाद जर्मन विद्वानों ने किया है। यह अनुवाद मूल संस्कृत पञ्चतन्त्र के भाव और कहानियों के सबसे अधिक सन्निकट है।

पहलवी अनुवाद के आधार से दूसरा अनुवाद आठवीं शती में अब्दुल्ला-इब्न-उल्-मुकफ्फा ने अरबी भाषा में किया, जिसका नाम है कलील: व दिमन:, जो करटक व दमनक इन दो नामों के रूप हैं। अब्दुल्ला ने अपने अनुवाद में एक भूमिका लिखी है एवं और कई कहानियाँ भी अन्त में जोड़ दी हैं। इस रूप में यह ग्रन्थ अरबी भाषा के सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थों में से है।

अरबी अनुवाद के आधार पर पञ्चतन्त्र के विदेशी अनुवादों का वह सिलसिला शुरू हुआ जिसने सारे यूरोप की भाषाओं को छा लिया। ग्यारहवीं शती में यूनानी भाषा में यूरोप का सबसे पुराना अनुवाद हुआ। उसी से रूसी और पूर्वी यूरोप की अन्य स्लाव भाषाओं में कितने ही अनुवाद हुए। कालान्तर में इस यूनानी अनुवाद का परिचय पश्चिमी यूरोप के देशों को हुआ और सोलहवीं शती से लेकर अनेक बार लैटिन, इटैलियन और जर्मन भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। लगभग १२५१ ई० में अरबी पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद प्राचीन स्पैनिश भाषा में हुआ। हेब्रू भाषा में भी अरबी से ही एक अनुवाद पहले हो चुका था। उसके आधार पर दक्षिणी इटली के कपुआ नगर में रहने वाले जौन नामक यहूदी ने लैटिन में उसका एक अनुवाद १२६० और १२७० ई० के बीच में किया। इसका नाम था 'कलील: दमन: की पुस्तक—मानवी जीवन का कोष'। मध्यकालीन यूरोपीय साहित्य में जौन कपुआ के अनुवाद की बड़ी धूम रही और उससे पश्चिमी यूरोप के दसियों देशों ने अपनी-अपनी भाषा में पञ्चतन्त्र के अनुवाद किये। १४८० के लगभग कपुआ वाले पञ्चतन्त्र के संस्करण का अनुवाद जर्मन भाषा में हुआ। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि एक संस्करण के बाद दूसरा संस्करण जनता में खपता गया; यहाँ तक कि पचास वर्ष में बीस से अधिक संस्करण बिक गए। डेन्मार्क, हॉलैण्ड, आइसलैण्ड आदि की भाषाओं में भी इस जर्मन संस्करण के अनुवाद हुए।

कपुआ के लैटिन अनुवाद से सीधे ही स्पेन, चेक और इटली की भाषाओं में अनुवाद किये गए। दोनी नामक एक लेखक ने १५५२ ई० में जो अनु-

बाद इटली की भाषा में तैयार किया उसी से १५७० ई० में सर टॉमस नॉथ ने अंग्रेजी का पहला पञ्चतन्त्र तैयार किया जिसका दूसरा संस्करण १६०१ ई० ही में हुआ। इस प्रकार शेक्सपियर के जीवन-काल में ही अंग्रेजी भाषा को संस्कृत-साहित्य की यह निधि अनुवाद के रूप में मिल चुकी थी। अंग्रेजी का यह अनुवाद संस्कृत से पहलवी, पहलवी से अरबी, अरबी से हिब्रू, हिब्र से लैटिन, लैटिन से इटैलियन और इटैलियन से अंग्रेजी, इस प्रकार मूल ग्रन्थ की छटी पीढ़ी में था।

अरबी कलील: व दिमनः का एक अनुवाद फारसी में नसरुल्ला ने बारहवीं शती में किया। उसी से पन्द्रहवीं शती में पुनः फारसी में अनवार सुहेली के नाम से एक संस्करण तैयार हुआ। इससे भी लगभग उतनी ही भाषाओं में उतने ही अधिक संस्करण तैयार हुए जितने अरबी के कलील: व दिमनः के। तुर्की, पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया की भाषा में भी अनवार सुहेली के अनुवाद हुए हैं। १६४४ ई० में फ्रेञ्च भाषा में उसका अनुवाद छपा। लोगों में यह पिलपिली साहब की कहानियों के नाम से मशहूर हो गया। (Fables of Pilpay)। प्रसिद्ध फ्राँसीसी कहानी-लेखक ला फौतें ने अपने संग्रह की अनेक कहानियाँ विद्वान् पिलपिली की कथाओं से ली हैं। अस्सी वर्ष बाद १७२४ में फारसी के अनवार सुहेली के तुर्की अनुवाद हुमायूँनामा से एक दूसरा फ्रेञ्च अनुवाद 'बिदपई की भारतीय कहानियाँ' इस नाम से प्रकाशित हुआ। इन दो ग्रन्थों के मूल फ्रेञ्चरूप और अन्य भाषाओं में अनुवाद लोगों को बहुत पसन्द आए। यूनान, हंगरी, पोलैण्ड, हॉलैण्ड, स्वीडन, जर्मनी और इंग्लिस्तान, इन देशों में ये अनुवाद खूब चले। अंग्रेजी में 'पिलपिली' का संस्करण पहली बार १६९९ में छपा और उसके बाद अठारहवीं सदी-भर दमादम प्रकाशित होता रहा।[1]

---

१. पञ्चतन्त्र के विदेशों में अनुवाद-सम्बन्धी इन सूचनाओं के लिए मैं श्री एजर्टन द्वारा पुनः-घटित पञ्चतन्त्र (Panchatantra Reconstructed) पूना का ऋणी हूँ।

भारतवर्ष के भीतर भी पञ्चतन्त्र की लम्बी परम्परा पाई जाती है। मूल ग्रन्थ तो अब लुप्त हो गया है किन्तु उसके आधार पर रचे हुए ग्रन्थ कई संस्करण उपलब्ध हैं। ये प्राचीन पाठ-परम्पराएँ गिनती में आठ हैं—(१) तन्त्राख्यायिका; (२) दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र; (३) नेपाली पञ्चतन्त्र; (४) हितोपदेश; (५) सोमदेव कृत कथासरित्सागर के अन्तर्गत पञ्चतन्त्र; (६) क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा-मंजरी के अन्तर्गत पञ्चतन्त्र, (७) पश्चिमी भारतीय पञ्चतन्त्र; और (८) पूर्णभद्र कृत पञ्चाख्यान।

(१) तन्त्राख्यायिका पञ्चतन्त्र की काश्मीरी वाचना है। इसकी प्रतियाँ केवल काश्मीर में शारदा लिपि में मिली हैं। इसका सम्पादन डॉ० हर्टल ने किया है। उनका मत है कि इसमें पञ्चतन्त्र का असंक्षिप्त और अविकृत पाठ है, किन्तु डॉ० एजर्टन तन्त्राख्यायिका को इतना महत्त्व नहीं देते। तन्त्राख्यायिका की रचना का समय अनिश्चित है।

(२) दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र की पाठ-परम्परा में एजर्टन का विचार है कि मूल पञ्चतन्त्र के गद्य-भाग का तीन चौथाई और पद्य-भाग का दो तिहाई सुरक्षित है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक विचार है कि दक्षिण के महिलारोप्य नामक नगर का पञ्चतन्त्र में कई बार उल्लेख होने से मूल पञ्चतन्त्र की रचना वहाँ ही हुई होगी।

(३) नेपाली पञ्चतन्त्र में किसी समय गद्य-पद्य दोनों थे। पीछे किसी ने पद्य-भाग अलग कर लिया जो आज भी उपलब्ध है। उसका गद्य-भाग लुप्त हो गया। संयोग से मूल का एक गद्य-वाक्य इसमें बचा रह गया है। इस वाचना में एक भी श्लोक ऐसा नहीं जो दक्षिण भारतीय वाचना में न हो किन्तु फिर भी जिस पाठ-परम्परा से इस वाचना का जन्म हुआ वह दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र से पृथक् थी।

(४) हितोपदेश संस्कृत-साहित्य में इस समय पञ्चतन्त्र से भी अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। उसके कर्ता नारायण भट्ट ने पञ्चतन्त्र की परम्परा में किन्तु बहुत-कुछ गद्य और पद्य-भाग की स्वतन्त्रता लेकर नौ सौ ईसवी के आस-पास हितोपदेश की रचना की। पञ्चतन्त्र में पाँच तन्त्र हैं, लेकिन हितोपदेश

में केवल चार विभाग हैं, यथा मित्र-लाभ, सुहृदय-भेद, विग्रह और सन्धि। पञ्चतन्त्र का पहला मित्र-भेद नामक तन्त्र हितोपदेश में दूसरे स्थान पर है। विग्रह और सन्धि नामक विभागों की कल्पना इसमें नारायण भट्ट ने नये ढंग से की है जिनमें वहुत सी नई कथाएँ भी जोड़ दी गई हैं। पञ्चतन्त्र का तीसरा तन्त्र काकोलूकीय उस रूप में हितोपदेश में नहीं मिलता, किन्तु उसकी जगह कर्पूर द्वीप के राजा हिरण्यगर्भ हंस और विन्ध्यगिरि के राजा चित्र-वर्ण मयूर के वीच विग्रह और सन्धि की कथा है। पञ्चतन्त्र का चौथा तन्त्र लब्धप्रणाश हितोपदेश में नहीं मिलता और पाँचवें तन्त्र अपरिक्षितकारक की कथाएँ हितोपदेश के तीसरे और चौथे भाग में मिली हुई हैं। नारायण भट्ट ने हितोपदेश की रचना में दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र से सहायता ली। मूल पञ्चतन्त्र के गद्य-भाग का कम-से-कम तीन-बटा-पाँच और पद्य-भाग का कम-से-कम एक-तिहाई अंश हितोपदेश में आ गया है।

(५) व (६) बृहत्कथा-मंजरी और कथासरित्सागर दोनों के अन्तर्गत शक्तियशालम्बक में पञ्चतन्त्र की कथा आती है। किन्तु पञ्चतन्त्र के इन रूपों में मूल ग्रन्थ का कलात्मक रूप विलकुल लुप्त हो गया है। वह निष्प्राण संक्षेप-मात्र है। बृहत्कथा के अनुसन्धानकर्ता श्री लाकोते का विचार है कि मूल बृहत्कथा में पञ्चतन्त्र का कोई स्थान न था। हो सकता है कि पञ्च-तन्त्र की लोकप्रियता के कारण पैशाची बृहत्कथा में किसी समय संस्कृत-पञ्च-तन्त्र का सार ले लिया गया हो और उसके आधार पर क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव ने फिर संस्कृत में अनुवाद किया हो। क्षेमेन्द्र ने काश्मीर में प्रचलित तन्त्रा-ख्यायिका का भी उपयोग किया, क्योंकि मूल पञ्चतन्त्र में अप्राप्य किन्तु क्षेमेन्द्र में प्राप्त पाँच कहानियाँ ऐसी हैं जो तन्त्राख्यायिका में पाई जाती हैं।

(७) पश्चिम भारतीय पञ्चतन्त्र की परम्परा वह है जिसका एक रूप निर्णयसागर प्रेस से छपा हुआ पञ्चतन्त्र का संस्करण है। इसी का दूसरा रूप वम्बई संस्कृत सीरीज़ का संस्करण है। इस वाचना को विद्वान् लोग पञ्चतन्त्र की सादी या अनुपबृंहित वाचना (Textus simplicior) मानते हैं। इस वाचना का रूप एक सहस्र ईसवी के लगभग वन

चुका था।[1]

(८) इसी को मूल आधार मानकर पूर्णभद्र ने ११९९ ई० में पञ्चाख्यानग्रन्थ की रचना की जो मूल पञ्चतन्त्र की विस्तृत वाचना मानी जाती है (Textus ornatior)। पूर्णभद्र का ही ऐसा संस्करण है जिसका निश्चित समय ज्ञात है। उसने लिखा है कि उसके समय में पञ्चतन्त्र की पाठ-परम्परा बिखर चुकी थी तब उसने पञ्चतन्त्र की सब उपलब्ध सामग्री को जोड़-बटोरकर उस ग्रन्थ का जीर्णोद्धार किया और प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक पद, प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक कथा का उसने संशोधन किया। इस प्रकार प्राचीन कई परम्पराओं को एकत्र करके पूर्णभद्र ने एक नई रचना पञ्चाख्यान के रूप में प्रस्तुत की।

इन अनेक वाचनाओं के मूल में जो पञ्चतन्त्र था उसका स्वरूप जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है। डॉ० एजर्टन ने ऊपर लिखी समस्त सामग्री की तुलना करके, पूर्णभद्र की तरह एक-एक अक्षर का तुलनात्मक विचार करके, मूल पञ्चतन्त्र का एक संस्करण तैयार किया जिसे उन्होंने पुनःघटित पञ्चतन्त्र (Panchatantra Reconstructed) कहा है। उस पञ्चतन्त्र की भाषा, शब्दावली, शैली, कहने का ढंग, संक्षिप्त अर्थ-गर्भित वाक्य-विन्यास और कथाओं का गठा हुआ ठाट, इन सबको देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि गुप्तकाल की कोई अत्यन्त उत्कृष्ट कृति हमारे सामने आ गई है। आवश्यकता है कि मूल पञ्चतन्त्र के उस संस्करण की समस्त सांस्कृतिक सामग्री और शब्दावली का अध्ययन करके उसका अनुवाद भी हिन्दी-जगत् के लिए प्रस्तुत किया जाय। वह पञ्चतन्त्र निश्चय ही महान् साहित्यकार की विलक्षण कलापूर्ण रचना है जिसमें लेखक की प्रतिभा द्वारा कहानियाँ और संवाद अत्यन्त ही सजीव हो उठे हैं। डॉ० एजर्टन के शब्दों

---

१. भारत में पञ्चतन्त्र की विविध वाचनाओं के सम्बन्ध की जानकारी के लिए मैं श्री योगीलाल जी संडेसरा के पञ्चतन्त्र के उपोद्घात का ऋणी हूँ।

में पञ्चतन्त्र के उस मूल रूप को जब हम दूसरी वाचनाओं से मिलाते हैं तो यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि वह न केवल साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है किन्तु सबसे सुन्दर निखरी हुई और निपुणतम रचना है।

डॉ० मोतीचन्द्र का प्रस्तुत अनुवाद पश्चिम भारतीय पञ्चतन्त्र की वाचना के अनुसार प्रकाशित निर्णयसागर संस्करण को आधार मानकर किया गया है। यही संस्करण इस समय सबसे अधिक सुलभ और लोकप्रिय है। हिन्दी में पञ्चतन्त्र के पहले भी कई अनुवाद किये गए थे जो पुरानी हिन्दी-पुस्तकों की खोज में प्राप्त हुए हैं। खेद है कि अभी तक पञ्चतन्त्र की उस परम्परा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। आधुनिक समय में भी पञ्चतन्त्र के कुछ अनुवाद हिन्दी में हुए हैं। प्रस्तुत अनुवाद की विशेषता यह है कि इसमें मुहावरेदार हिन्दी भाषा का अधिक-से-अधिक प्रयोग किया गया है जिससे पञ्चतन्त्र के नोक-झोंक-भरे संवादों और ओजपूर्ण प्रसंगों का सौन्दर्य बहुत ही खिल गया है। हिन्दी-अनुवाद प्रायः स्वतन्त्र जँचता है; संस्कृत के सहारे उसे नहीं चलना पड़ता। आशा है यह अनुवाद पञ्चतन्त्र के हिन्दी-अनुवादों के लिए एक नई शैली और दिशा का पथ-प्रदर्शन करेगा। वैसे तो यह कहा जा सकता है कि राइडरकृत पञ्चतन्त्र के अंग्रेजी अनुवाद में भाषा और भाव दोनों के नुकीलेपन का जो आदर्श बन गया है उस तक पहुँचने के लिए हिन्दी में अभी कितने ही प्रयत्न करने होंगे। विशेषतः हमें तब तक सन्तोष न मानना चाहिए जब तक पञ्चतन्त्र के संस्कृत-श्लोकों का अनुवाद हिन्दी के वैसे ही चोखे, नुकीले और पैने पद्यों में न हो जाय।

मूल की भाषा या अनुवादों के गुणों के अतिरिक्त पञ्चतन्त्र का जो सच्चा महत्त्व और दृष्टिकोण है उसकी ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। विष्णु शर्मा ब्राह्मण ने सिंहनाद करते हुए घोषणा की थी कि पञ्चतन्त्र की युक्ति से छः महीने के भीतर वह राजपुत्रों को नीति-शास्त्र में पारम्गत बना देगा। उसकी दृष्टि में पञ्चतन्त्र वह ग्रन्थ है जिसके नीतिशास्त्र को जान लेने पर और कहानियों की सहायता से उसमें रम जाने पर कोई व्यक्ति जीवन की होड़ में हार नहीं मान सकता, फिर चाहे इन्द्र ही उसका वैरी क्यों न हो।

राइडर ने अत्यन्त भावपूर्ण शब्दों में अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है—"पञ्चतन्त्र एक नीतिशास्त्र या नीति का ग्रन्थ है। नीति का अर्थ है जीवन में बुद्धिपूर्वक व्यवहार। पश्चिमी सभ्यता को इसके लिए कुछ लज्जित होना पड़ता है कि अंग्रेजी, फ्रेंच, लैटिन या ग्रीक उसकी किसी भाषा में नीति के लिए कोई ठीक पर्याय नहीं है।··सर्वप्रथम, नीति इस बात को मानकर चलती है कि मनुष्य विचारपूर्वक अपने लिए सबूकड़ों का मार्ग छोड़कर सामाजिक जीवन का मार्ग चुनता है। दूसरे, नीति-प्रधान दृष्टिकोण इस प्रश्न का सराहनीय उत्तर देता है कि मनुष्यों के बीच में रहकर जीवन का अधिक-से-अधिक रस किस प्रकार प्राप्त किया जाय।··नीति-प्रधान जीवन वह है जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का पूरा विकास हो, अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति जिसमें आत्मरक्षा, धन-समृद्धि, संकल्पमय कर्म, मित्रता और उत्तम विद्या, इन पाँचों का इस प्रकार समन्वय किया जाय कि उससे आनन्द की उत्पत्ति हो। यह जीवन का सम्भ्रान्त आदर्श है जिसे पञ्चतन्त्र की चतुराई और बुद्धि से भरी हुई पशु-पक्षियों की कहानियों के द्वारा अत्यन्त कलात्मक रूप में रखा गया है।"

—*वासुदेवशरण अग्रवाल*

ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु, वरुण, यम, अग्नि, इन्द्र, कुवेर, चन्द्र, सूर्य, सरस्वती, समुद्र, युग (कृत, त्रेता, द्वापर), पर्वत, वायु, पृथ्वी, सर्प, सिद्ध, नदी, अश्विनी कुमार, चण्डिकादि माताओं, वेदों, यज्ञों, तीर्थों, यज्ञों, गणों, वसुओं, ग्रहों और मुनियों को नमस्कार।

मनु, वाचस्पति, शुक्र, पराशर, व्यास, चाणक्य-ऐसे विद्वान नीति-शास्त्र-कर्त्ताओं को प्रणाम।

संसार में सर्व अर्थ-शास्त्रों को देख-भालकर विष्णुशर्मा ने इस मनोहर शास्त्र को पांच तंत्रों में वनाया।

इस वारे में इस प्रकार सुना गया है—

दक्षिण जनपद में महिलारोप्य नाम का नगर है। वहां भिखमंगों के लिए कल्पवृक्ष-समान, उत्तम राजाओं की मुकुट-मणियों की प्रभा से भासित चरणों वाले, सकल कलाओं में पारंगत अमरशक्ति नामक राजा थे। उसके वहु-शक्ति, उग्रशक्ति और अनेकशक्ति नाम के तीन परम मूर्ख पुत्र हुए। उन्हें पढ़ने से विमुख देख राजा ने अपने मंत्रियों को वुलाकर कहा, "देखिए, आपको पता है कि मेरे पुत्र शास्त्र-विमुख और वुद्धिरहित हैं। इन्हें देखते हुए वड़ा राज्य भी मुझे सुख नहीं देता। अथवा ठीक ही कहा है—

"अजात, मृत और मूर्ख पुत्रों में मृत और अजात पुत्र अच्छे हैं; क्योंकि पहले दो तो थोड़ा ही दुख देते हैं, पर मूर्ख पुत्र तो जीवन-पर्यन्त जलाता रहता है।

"गर्भ गिर जाना अच्छा है, ऋतु-काल में स्त्री-समागम न करना ठीक है, मरी संतान पैदा होना भी ठीक है, कन्या होना भी श्रेयस्कर है, स्त्री का वन्ध्या होना भी ठीक है और सन्तान गर्भ में ही पड़ी रहे, यह भी ठीक है, पर धनवान, रूपवान और गुणवान होते हुए भी मूर्ख पुत्र हो, यह ठीक नहीं।

"उस गाय का क्या किया जाय जो न बच्चा देती हो न दूध; उस पुत्र के पैदा होने का क्या अर्थ है जो न विद्वान है न भक्त?

"इस संसार में कुलीन पुत्र की मूर्खता की अपेक्षा उसकी मृत्यु भली है, जिसकी वजह से विद्वानों के बीच में मनुष्य को उससे जारज सन्तान की तरह लज्जा करनी पड़े।

"गुणियों की पाँत की गिनती के आरम्भ में जिसके नाम पर खड़िया एकाएक न चले उससे यदि माता पुत्रवती कहलाए तो कहो बांझ कैसी होती है?

इसलिए इनकी जैसे बुद्धि खुले ऐसा कोई उपाय आप कीजिए। यहां पर मुझसे वृत्ति भोगने वाले पाँच सौ पंडितों की मंडली बैठी है, इसलिए जिससे मेरी मनोकामनाएं सिद्ध हों, वैसा कीजिए।"

एक पंडित बोले, "देव! व्याकरण का अध्ययन बारह वर्ष तक चलता है। इसके बाद मनु आदि के धर्मशास्त्र, चाणक्य इत्यादि के अर्थशास्त्र और वात्स्यायन इत्यादि के काम-शास्त्र का अध्ययन होता है। इस तरह धर्म, अर्थ और काम-शास्त्र का ज्ञान होता है। इस तरह बुद्धि जागती है।" इतने में उनके बीच से सुमति नाम का एक मंत्री बोला, "यह जीवन नाशवान् है, शब्द-शास्त्र बहुत दिनों में सीखे जाते हैं, इसलिए राजकुमारों की शिक्षा के लिए किसी छोटे शास्त्र का विचार करना चाहिए। कहा भी है—

"शब्द-शास्त्र अनन्त है, आयुष्य थोड़ी है और विघ्न अनेक हैं,

लेन-देन का व्यापार, जवाहरात का व्यापार, परिचित ग्राहक के हाथ माल वेचने का काम, झूठे दाम पर माल वेचना, खोटी तौल-माप रखना तथा देसावर से माल मंगाना।

"सौदों में सुगंधित द्रव्य ही असल सौदा है, जो एक में खरीदने पर सौ में बिकता है। फिर सोने इत्यादि के व्यापार से क्या लाभ ! घर में गिरवी रकम देखकर सेठजी अपने कुल-देवता की प्रार्थना करते हैं कि गिरों वरने वाले के मरने पर मैं आपकी मन्नत उतारूंगा।"

"जवाहरात का काम करने वाला जौहरी सुखी मन से सोचता है, पृथ्वी धन से भरी है, फिर मुझे दूसरी वस्तु से क्या काम !

"परिचित ग्राहक को आते देखकर उसे ठगने की ब्योंत की घबराहट में व्यापारी पुत्र-जन्म का सुख मानता है।

और भी

"भरे और खाली नपुए से वह नित्य परिचित जनों को ठगता है; माल की खोटी कीमत कहना यही किराटों यानी लुच्चे व्यापारियों का स्वभाव है।

और भी

"दूर देसावर में गए व्यापारियों को उनके उद्यम से नियमपूर्वक माल वेचने से दुगुना-तिगुना धन मिलता है।"

इस प्रकार विचार करके मथुरा के उपयोगी माल लेकर अच्छी सायत में, गुरुजनों की आज्ञा लेकर तथा अच्छे रथ पर चढ़कर वह वाहर निकला। अपने घर में ही पैदा हुए माल ढोनेवाले संजीवक और नन्दक नाम के शुभ लक्षण वाले दो वैलों को उसने अपने रथ में जोत दिया था। इन दोनों में संजीवक नाम के वैल का पैर यमुना के किनारे उतरते हुए कीचड़ में फँसकर टूट गया, और जोत टूट जाने पर वह जमीन पर वैठ गया। उसकी यह अवस्था देखकर वर्धमान को वड़ा दुःख हुआ। स्नेह से द्रवित होकर वह उसके लिए तीन दिनों तक अपनी यात्रा रोके रहा।

उसे दुखी देखकर उसके साथियों ने कहा, "अरे सेठ, क्यों तुम इस बैल के कारण सिंह और बाघ से भरे इस वन में अपने सारे कारवां को जोखिम में डालते हो ? कहा भी है—

"बुद्धिमान पुरुष छोटी चीजों के लिए बड़ी वस्तुओं का नाश नहीं करते, छोटी वस्तु छोड़कर बड़ी वस्तु का रक्षण करना ही पांडित्य है ।"

इस पर उनकी बात मानकर संजीवक के लिए रखवारे नियुक्त कर बाकी अपने साथियों के साथ वह आगे चल निकला। उन रखवारों ने वन को अनेक विघ्नों से भरा जानकर संजीवक को छोड़ दिया और पीछे से दूसरे दिन सार्थवाह के पास जाकर उससे झूठ ही कहा, "हे स्वामी, संजीवक मर गया। उसे सार्थवाह का प्यारा जानकर हमने उसका अग्नि-संस्कार कर दिया।" यह सुनकर स्नेहार्द्र-हृदय और कृतज्ञ सार्थवाह ने उसकी वृषोत्सर्ग आदि उत्तर-क्रियाएं सम्पन्न कीं।

यमुना के जल से सिंचित शीतल हवा से स्वस्थ शरीर होकर, संजीवक अपने बाकी आयुष्य के कारण किसी तरह उठकर यमुना तट के ऊपर पहुँचा। वहां पन्ने-जैसी नीली दूब के नये टूंगों को चरता हुआ वह थोड़े ही दिनों में महादेव के नंदी जैसा पुष्ट, बड़े डील वाला और बलवान हो गया तथा हर रोज अपने सींगों से बांबी खोदता हुआ हुंकड़ने लगा। ठीक ही कहा है—

"अरक्षित व्यक्ति भी भाग्य से रक्षित होने पर रक्षा पाता है और सुरक्षित व्यक्ति भी भाग्यहीन होने से नष्ट हो जाता है। वन में छोड़ दिये जाने पर भी अनाथ व्यक्ति जीता है, घर में प्रयत्न करने पर भी मनुष्य नाश पाता है।"

एक समय सब जानवरों से घिरा हुआ पिंगलक नाम का सिंह प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए यमुना तट पर उतरा और दूर से ही संजीवक का गंभीर शब्द सुना। उसे सुनकर उसका हृदय व्याकुल हो उठा, जल्दी से उसने अपनी हालत छिपाकर बरगद के नीचे चतुर्मंडल सभा

यानी सिंह, सिंह के अनुयायी, काकरव और नौकरों की सभा बुलाई। करटक और दमनक नाम के दो अधिकार-भ्रष्ट शृगाल मंत्रि-पुत्र सदा उसके पीछे फिरते थे। उन दोनों ने यह देखकर आपस में विचार किया। दमनक बोला, "भद्र करटक, यह अपना स्वामी पिंगलक पानी पीने के लिए यमुना के किनारे पर आकर खड़ा है। प्यास से व्याकुल होते हुए वह किस कारण से पीछे फिरकर व्यूह-रचना करके उदासचित्त होकर इस वट-वृक्ष के नीचे आ गया है?" करटक ने कहा—

"इस बात से अपने को क्या मतलब? अपने काम के सिवा जो दूसरे के बारे में सिर मारने जाता है वह खीला खींचने वाले बन्दर की तरह मृत्यु पाता है।"

दमनक ने कहा, "यह कैसे?" करटक ने कहा—

खीला खींचने वाले एक बन्दर की कथा

"किसी नगर के पास एक बगिया के बीच एक बनिये ने देव-मंदिर बनवाना आरम्भ किया। वहां थवई वगैरह जो कारीगर थे, वे भोजन के लिए दोपहर में शहर को चले जाते थे। एक ऐसा अवसर पड़ा कि पास में रहने वाला बन्दरों का एक झुण्ड इधर-उधर कूदता-फांदता उस स्थान पर आ पहुंचा। वहां किसी शिल्पी ने आधा चिरा हुआ साल का लट्ठा छोड़ दिया था और उसके बीच में खैर का एक खीला ठोंक दिया था। बंदरों ने पेड़ों के सिरे से मंदिर के शिखर के ऊपर और लकड़ियों के ऊपर मनमाने तौर से कूदना आरम्भ कर दिया। उनमें से एक बन्दर जिसकी मृत्यु पास आ गई थी, खिलवाड़ से अधचिरे लट्ठे पर बैठकर हाथ से खीला खींचने का प्रयत्न करने लगा। उसी समय लट्ठे की फांस के बीच उसका अण्डकोश लटक रहा था। खीला अपने स्थान से खिसक गया और जो फिर नतीजा हुआ उसके बारे में तो मैंने पहले ही तुमसे कह दिया है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अपना काम न होने पर भी दूसरे के काम में जो माथा मारने जाता है, वह खीला खींचने वाले बन्दर की तरह मृत्यु पाता है। सिंह के खाने से बचा

हुआ आहार तो अपने पास रहता ही है फिर इस खोद-गिनोदसे क्या मतलव ?"

दमनक ने कहा, "तो क्या तुम केवल भोजन-मात्र की ही इच्छा रखते हो? यह ठीक नहीं। कहा भी है—

"वुद्धिमान पुरुष मित्रों पर उपकार करने के लिए अथवा दुश्मनों का अपकार करने के लिए राजाश्रय चाहता है। केवल पेट तो कौन नहीं भरता ?

और भी

"जिसके जीने से वहुत से जीते हैं वही इस जगत में जीवित कहलाता है, वाकी तो क्या पक्षी भी चोंच से अपना पेट नहीं भर लेते ?

"विज्ञान, शौर्य, वैभव तथा आर्यगुणों के साथ प्रसिद्ध होकर मनुष्य अगर एक क्षण-मात्र भी जीवित रहे तो उसे इस लोक में ज्ञानी पुरुष जीवित कहते हैं। यों तो कौआ भी वहुत दिनों तक जीता है और वलि खाता रहता है।

"जो अपने सेवकों, दूसरों, व वन्धु-वर्ग पर और दीनों पर दया नहीं करता उसका मनुष्य-लोक में जीने का क्या फल है ? यों तो कौआ भी वहुत दिनों तक जीता रहता है और वलि खाता है।

"छोटी नदी जल्दी से भर जाती है, मूसे की विल भी जल्दी से भर जाती है तथा सत् पुरुप संतोषी भी थोड़ी-सी वस्तु में प्रसन्न हो जाता है।

और भी

"जो अपने वंश की चोटी में झण्डे की तरह ऊपर चढ़ा नहीं रहता, माता का केवल यौवन हरण करने वाले ऐसे मनुष्य के जन्म से क्या लाभ ?

और भी

"इस परिवर्तनशील संसार में कौन मरता नहीं और कौन पैदा नहीं होता ? पर सच्चे अर्थ में जन्मा वही गिना जाता है जो अपने

वंश में अधिक चमक पैदा करता है।

इसी प्रकार

"नदी के तीर उगते हुए उस तृण का जन्म सफल है कि जो पानी में डूबते हुए व्याकुल मनुष्य के हाथ का सहारा बनता है।

और भी

"धीरे-धीरे ऊपर जाने वाले और लोगों का दुःख हटाने वाले सज्जन पुरुष संसार में कम होते हैं।

"पंडित लोग इसलिए माता के पैर को सब से अधिक मानते हैं क्योंकि वह ऐसे किसी गर्भ को धारण करती है जो जन्म लेकर बड़ों का भी गुरु होता है।

"जिस पुरुष की शक्ति प्रकट न हुई हो ऐसा शक्तिशाली मनुष्य भी तिरस्कार पाता है; लकड़ी में छिपी हुई अग्नि को तो लांघा जाता है पर जलती हुई को छू नहीं सकता।"

करटक ने कहा, "मैं और तुम प्रधान पदवी पर तो हैं नहीं, तो फिर हमें इस झंझट से क्या काम? कहा भी है—

"मामूली ओहदे पर रहने वाला जो मूर्ख राजा के सामने बगैर पूछे बोलता है वह केवल असम्मान ही नहीं तिरस्कार का भी पात्र होता है।

और भी

"अपनी वाणी का वहीं प्रयोग करना चाहिए जहां उसके कहने से फल मिले, जैसे कि रंग सफेद कपड़े पर ही खूब पक्का बैठता है।"

दमनक ने कहा, " ऐसा मत कह,

"अगर मामूली आदमी भी राजा की सेवा करे तो प्रधान बन जाता है और प्रधान भी यदि सेवा छोड़ दे तो छोटा हो जाता है।

क्योंकि कहा भी है

"राजा अपने पास रहने वाले का ही मान करता है, फिर भले ही वह विद्याहीन, अकुलीन और असंस्कृत क्यों न हो। प्रायः राजा, स्त्रियां और लताएं जो पास में होता है, उसी का सहारा लेती हैं।

इसी प्रकार

"जो सेवक स्वामी को कोपित और प्रसन्न करने वाली वस्तुओं की खबर रखता है, वह भटकते हुए राजा के भी धीरे-धीरे ऊपर चढ़ जाता है।

"विद्वान,महत्वाकांक्षी , शिल्पी,तथा सेवावृत्ति में चतुर पराक्रमशील-पुरुषों के लिए राजा के सिवाय और कोई दूसरा आश्रय नहीं है।

"जो अपनी जाति के अभिमान में मस्त होकर राजा के पास नहीं जाता उसके लिए मरने तक भिक्षा-रूपी प्रायश्चित की व्यवस्था है।

"जो दुरात्मा ऐसा कहते हैं कि 'राजा मुश्किल से प्रसन्न होने वाले होते हैं' वे सरासर अपना प्रमाद , आलस्य और मूर्खता ही प्रकट करते हैं।

"सर्प, वाघ, हाथी और सिंहों जैसे जानवरों को उपाय से वश में किया हुआ देखकर बुद्धिशाली और अप्रमादी पुरुषों के लिए राजा को वश में करना कौन-सी बड़ी वात है !

"राजा का आश्रय पाकर ही विद्वान परम सुख प्राप्त करता है। विना मलय के चन्दन और कहीं नहीं उगता।

"राजा के प्रसन्न होने पर सफेद छाते, सुन्दर घोड़े तथा सदा मतवाले हाथी मिलते हैं।"

करटक बोला, "तो अब तुम्हारा मन क्या करने का है ?" उसने कहा ," अभी हमारा मालिक पिंगलक अपने परिवार के साथ भयग्रस्त है। हम उसके पास जाकर उसके भय का कारण जानकर संधि , विग्रह, यान, आसन, संशय और द्वैधीभाव में से किसी एक से उसे साध लेंगे।"

करटक ने कहा ," स्वामी भयभीत है यह तुमने कैसे जाना है ?" उसने कहा ,"इसमें जानने की क्या वात है ?

कहा है कि—

"कही गई वात तो पशु भी ग्रहण करते हैं , घोड़े और हाथी

हांकने से ही चलते हैं, पर पंडित पुरुष विना कही वात का मर्म समझ जाते हैं,क्योंकि दूसरे की चेष्टा का ज्ञान ही वुद्धि का फल है।

जैसा मनु ने कहा है—

"आकार, इशारे, गति, चेष्टा, भाषण तथा आंख और मुख के भावों से ही अन्तर्गत मन का अभिप्राय जाना जा सकता है।

तो आज इस डरे हुए पिंगलक के पास जाकर उसे अपनी वुद्धि के प्रभाव से निर्भय वनाकर और वस में करके अपने लिए मंत्रिपद की व्योंत करूंगा।" करटक ने कहा, "तुम सेवा धर्म से अनभिज्ञ हो, फिर कैसे उसे वश में कर सकते हो?" दमनक ने कहा, "पांडव जिस समय विराट नगर में पहुँचे उस समय धौम्य मुनि ने उनसे सेवक का जो धर्म कहा, वह सव मैं जानता हूँ।

वह यह है—

"सोने के फूलों से भरी पृथ्वी को तीन लोग चुनते हैं, शूरवीर, विद्वान और सेवा का मर्म जानने वाले।

"जो सेवा स्वामी के हित की हो उसे ही जान वूझ कर ग्रहण करना चाहिए, और उसी द्वारा विद्वान मनुष्य को राजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए, दूसरे से नहीं।

"जो राजा पंडित का गुण न जानता हो उसकी सेवा पंडित को नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जिस तरह अच्छी तरह से जोती हुई ऊसर जमीन से फल नहीं मिलता उसी तरह राजा के पास से भी फल नहीं मिलता।

"धन और मंत्रियों से रहित होने पर भी अगर राजा में सेवा लेने योग्य गुण हैं तो उसकी सेवा करनी चाहिए, क्योंकि कालांतर में उससे जीवन का फल मिलता रहता है।

"ठूंठे वृक्ष की तरह अगर पड़ा रहना पड़े और भूख से देह भी सुखाना पड़े तो भी पंडित अनात्म सम्पन्न पुरुष की वृत्ति ग्रहण करना न चाहे।

"कंजूस, कम और रूखे शब्द वोलने वाले स्वामी के प्रति सेवक का

द्वेष होता है, पर वह अपने प्रति भी सेव्य और असेव्य भेद जानने पर द्वेष क्यों नहीं करता ?

"जिसके आश्रय करने पर विश्राम नहीं मिलता और जिसके सेवक भूखे होकर इधर-उधर फिरते रहते हैं, ऐसे राजा का नित्य फूलने-फलने वाले मदार के पेड़ की तरह भी त्याग कर देना चाहिए।

"राजमाता, देवी, राजकुमार, मुख्य मंत्री, पुरोहित और प्रतिहारी के प्रति राजा के ही तरह व्यवहार करना चाहिए।

"पुकारते ही जो 'आप बहुत जीएं' यह कहता हुआ उत्तर देता है और जिस कार्य में चतुराई लगती है, उस कार्य को निशंक नीति से करता है, वह राजा का प्रेमपात्र होता है।

"अपने मालिक की कृपा से मिले धन का उपयोग जो सुपात्रों में करता है, और अच्छे कपड़े पहनता है, वह राजा का प्रिय पात्र होता है।

"अन्तःपुरवासियों और राजस्त्रियों के साथ जो गुप्त सलाह नहीं करता, वह राजा का प्रियपात्र होता है।

"जुए को जो यमदूत के समान मानता है, मदिरा को भयंकर विष के समान और स्त्रियों को असुन्दरी के समान मानता है, वह राजा का प्रिय पात्र होता है।

"जो लड़ाई के समय सदा राजा के आगे-आगे रहता है और नगर में पीछे-पीछे चलता है तथा रात्रि में महल के दरवाजे पर बैठा रहता है, वह राजा का प्रिय पात्र होता है।

"मैं हमेशा राजा की राय से सहमत हूँ, ऐसा मानकर संकटों में भी जो अपनी मर्यादा को नहीं लाँघता, वह राजा का प्रिय पात्र होता है।

"जो मनुष्य द्वेषियों से द्वेष करता है, और इष्टों का मनचाहा काम करता है, वही राजा का प्रियपात्र होता है।

"मालिक के कहने का कभी भी उलटा जवाब नहीं देता, न उसके

समीप जोर से हँसता है वह राजा का प्रिय पात्र होता है ।

"जो भयरहित होकर युद्ध और शरण को एक-सा मानता है, तथा विदेश यात्रा और नगर में रहने को भी एक-सा देखता है, वह राजा का प्रिय पात्र होता है ।

"जो राजा की स्त्रियों का साथ, निन्दा और विवाद में मगन नहीं रहता, वह राजा का प्रिय पात्र होता है ।"

करटक ने कहा, "तुम वहां जाकर पहले क्या कहोगे, यह तो पहले बतलाओ।" दमनक ने कहा —

"अच्छी वर्षा से जैसे बीज से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार बातचीत करते हुए क्रमशः नये वाक्य उत्पन्न होते हैं ।

"उलटे उपाय करने से पैदा होने वाली विपत्ति और अनुकूल उपाय से उत्पन्न होने वाली गुण सिद्धि को जो नीति प्रयुक्त होती है, उसे मेधावी पुरुष सामने फड़कती दिखला देते हैं ।

"मधुर सूक्तियां सुग्गे की तरह किसी की वाणी में होती हैं तथा गूंगे की तरह किसी के हृदय में भी होती हैं और कभी किसी की वाणी और हृदय दोनों में ही शोभायमान होती हैं ।

बिना समय के मैं कुछ नहीं बोलूंगा। बहुत पहले पिता की गोद में बैठकर मैंने यह नीति-शास्त्र सुना था ।

"बृहस्पति भी अगर असमय में वचन बोलें तो उनकी बुद्धि का भारी निरादर और अपमान होता है ।"

करटक ने कहा—

"पर्वतों की तरह राजा सदा व्यालाकीर्ण (खल-पुरुष अथवा सर्पों से आकीर्ण), विषम (कठोर प्रकृति वाला अथवा ऊँचा-नीचा) कठिन और कष्ट से सेवन योग्य होता है ।

उसी तरह

"राजे सर्पों की तरह भोगी (वैभवयुक्त अथवा फणयुक्त) कंचुकाविष्ट (कंचुकी अर्थात् अन्तःपुर के एक अधिकारी से युक्त

राजा, सांप के अर्थ में केंचुली से युक्त) क्रूर, अत्यन्त दुष्ट और मंत्र-साध्य (राजा के अर्थ में छिपी मंत्रणा और सांप के अर्थ में सांप साधने का मंत्र) होता है।

"राजा सर्पों की तरह दो जीभ वाले, क्रूर-कर्मी, अनिष्ट करने वाले, दूसरों का दोष देखने वाले और दूर से देखने वाले होते हैं।

"राजा हमें चाहता है इसलिए जो किसी का थोड़ा भी बुरा करते हैं वे पापी आग में पतिंगों की तरह जल जाते हैं।

"सब लोगों से पूजित राजपद दुरारोह होता है। थोड़े-से अपकार से भी वह ब्रह्मतेज की तरह दुःख देता है।

"राजलक्ष्मी मुश्किल से प्रसन्न और मुश्किल से मिल सकने वाली होती है, लेकिन एक बार भेंट होने पर जिस तरह जलाशय में जल रहता है उसी तरह वह बहुत समय तक टिकी रहती है।"

दमनक ने कहा, "बात ठीक है, किंतु

"जिस-जिस मनुष्य का जैसा-जैसा भाव रहता है उस-उस मनुष्य से उसी भांति मिलकर चतुर उसे अपने वश में करता है।

"अपने स्वामी के विचार के अनुसार काम करना, यह सेवक का सब से अच्छा धर्म है। स्वामी की इच्छानुसार नित्य चलने वाला सेवक राक्षसों को भी वश में कर लेता है।

"क्रोधित राजा की तारीफ़, उसके चाहने में चाह, उसके द्वेष में द्वेष, और उसके दान की प्रशंसा, ये चीजें बिना तंत्र-मंत्र के भी वशीकरण के साधन हैं।"

करटक ने कहा, "अगर तेरी यही मंशा है तो तेरा रास्ता सुखकर हो। तू अपनी इच्छानुसार काम कर।"

दमनक करटक को प्रणाम करके पिंगलक की तरफ चला। उसे आते देखकर पिंगलक ने द्वारपाल से कहा, "अपनी छड़ी दूर हटाओ और मेरे पुराने मित्र मंत्रि-पुत्र दमनक को बिना किसी रोक-टोक के आने दो। वह मेरे द्वितीय मंडल में बैठनेवाला और यथार्थवादी है।" द्वारपाल ने कहा, "जैसी

"ऐसा जानकर राजा को विचक्षण, कुलीन, वहादुर, मजवूत तथा खानदानी मनुष्यों को सेवक वनाना चाहिए।

"जो सेवक राजा का दुष्कर और उत्तम काम करके लज्जा से कुछ कहता नहीं, उससे राजा सर्वदा सहायवान रहता है।

"जिसे कार्य सौंपकर निःशंक चित्त से वैठा जा सके, ऐसे सेवकों को, मानो वह राजा की दूसरी स्त्री ही हो, ऐसा भला मानना चाहिए।

"जो विना वुलाए पास आता, है सदा द्वार पर खड़ा रहता है तथा पूछने पर सच्ची और थोड़ी वातें करता है, वह राजाओं के योग्य सेवक है।

"राजा के लिए हानिप्रद वस्तु देखकर विना आज्ञा के भी जो उसे नष्ट करने की कोशिश करता है, वह राजाओं का योग्य सेवक है।

"राजा अगर उसे मारे, गालियां दे और दण्ड दे, फिर भी राजा की अनिष्ट चिंता नहीं करता, वह राजाओं का योग्य सेवक है।

"जो कभी मान में गर्व नहीं करता, न अपमान में तपता है और सर्वदा अपना आकार ज्यों-का-त्यों रखता है, वही राजाओं का योग्य सेवक है।

"जो कभी भूख और नींद से पीड़ित नहीं होता, न ठंडक या गरमी से, वह सेवक राजाओं का योग्य सेवक है।

"जो भविष्य में होने वाले युद्ध की वात सुनकर स्वामी की ओर प्रसन्न मुख से देखता है, वह राजाओं का योग्य सेवक है।

"जिसकी देखभाल से शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह राज्य-सीमा नित्य वढ़ती है, वही सेवक राजाओं के योग्य है।

"जिसके अधिकार से अग्नि में जैसे चमड़ा सिकुड़ जाता है वैसे ही राज्य सीमा संकुचित हो जाती है, राज्य की इच्छा रखने वाले राजा को तो ऐसा सेवक छोड़ देना चाहिए।

तथा 'सियार है', यह मानकर स्वामी जो मेरी हेठी करते हैं, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि कहा है

"रेशमी वस्त्र कीड़े से बनता है; सोना पत्थर से निकलता है; दूब पृथ्वी के रोयों से उगती है; लाल कमल कीचड़ में पैदा होता है; चन्द्रमा समुद्र में से निकला है; नील कमल गोबर से निकलता है; आग काठ में होती है; मणि सांप के फन में होती है; पिउरी गाय के पित्त से निकलती है; इस प्रकार गुणी-जन अपने गुणों से ऊपर उठते और ख्याति पाते हैं; इसमें जन्म से क्या संबंध ?

"नुकसान करने वाली घर में पैदा हुई चुहिया भी मार देने योग्य है; पर सहायक होने से बिल्ली को भोजन देकर भी लोग उसकी इच्छा करते हैं।

"रेंड, भिंड, नरकुल और मदार बड़ी तादाद में संग्रह करने पर भी इमारती लकड़ी का काम नहीं देते, उसी प्रकार असंख्य अज्ञानियों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

"असमर्थ भक्त किस काम का ? मुझे आप भक्त और समर्थ दोनों ही जानिए। मेरी अवज्ञा करना आपके योग्य नहीं है।"

पिंगलक ने कहा, "ठीक है; असमर्थ हो कि समर्थ, तू हमेशा के लिए मेरा मंत्रि-पुत्र है, इसलिए जो कुछ भी कहना चाहता है निःशंक होकर कह।" दमनक ने कहा, "देव, आपसे कुछ विनती करनी है।" "जो कुछ कहना चाहता है कह," पिंगलक ने कहा।

उसने कहा, "बृहस्पति का कहना है कि

"अगर राजा का बहुत थोड़ा-सा भी काम हो तो उसे सभा के बीच में नहीं कहना चाहिए।

इसलिए महाराज, आप मेरी विनती एकांत ही में सुनिए। कारण कि

"राजकीय मंत्रणा अगर छः कानों में जाय तो वह प्रकट हो जाती है, पर चार कानों से वह बाहर नहीं जाती। इसलिए बुद्धिमान इस बात की कोशिश करता है कि छः कानों का त्याग हो।"

पिंगलक के अभिप्राय को ज़ानने वाले बाघ, चीता, भेड़िये इत्यादि सब दमनक की यह बात सुनकर उसी क्षण वहां से दूर हट गए। इसके बाद दमनक बोला, "आप पानी पीने जाते-जाते फिर क्यों वापस लौटकर यहां बैठ गए?" पिंगलक शरमीली हँसी से बोला, "इसमें कोई बात नहीं।" दमनक बोला, "देव! अगर यह बात कहने लायक नहीं है तो रहने दीजिए।

कहा भी है—

"कुछ बातें स्त्रियों से, कुछ बातें रिश्तेदारों से, कुछ बातें मित्रों से और कुछ बातें पुत्रों से छिपाने-जैसी होती हैं। यह वस्तु ठीक है अथवा नहीं, इस बात को गंभीरतापूर्वक विचारकर विद्वान पुरुष को बात करनी चाहिए।"

यह सुनकर पिंगलक ने विचार किया, यह योग्य मालूम पड़ता है, इसीलिए इसके सामने मैं अपना मतलब बताऊंगा। कहा है कि

"विशिष्ट गुणों के समझने वाले स्वामी के पास, गुणवान सेवक के पास, अनुकूल पत्नी के पास, और अभिन्न मित्र के पास अपना दु:ख निवेदन करके मनुष्य सुखी होता है।"

फिर पिंगलक बोला, "हे दमनक, क्या तू दूर से आती हुई यह भयावनी आवाज सुनता है?" उसने कहा, "स्वामी सुनता हूं पर इससे क्या?" पिंगलक ने कहा, "भद्र! मैं इस जंगल से भाग जाना चाहता हूँ।" दमनक ने कहा, "किसलिए?" पिंगलक ने कहा, "इसलिए कि मेरे इस वन में कोई अजीब जानवर घुस गया है जिसकी यह बाहरी आवाज सुन पड़ती है। उसकी ताकत भी उसकी आवाज के समान ही होगी।" दमनक ने कहा, "महाशय! आप केवल आवाज से भयभीत हो गए, यह ठीक नहीं। कहा है कि

"पानी से मेंढ़ टूट जाती है, गुप्त न रखने से छिपी बात फूट जाती है, चुगली खाने से स्नेह टूट जाता है और केवल शब्द से कायर डरता है।

अपने पुरखों से मिले इस वन को एकायक छोड़ना आपको उचित नहीं। क्योंकि भेरी, बांसुरी, वीणा, मृदंग, ताल, पटह, शंख और काहल इत्यादि के बजाने से तरह-तरह की आवाजें निकलती हैं, इसलिए केवल आवाज से ही नहीं डरना चाहिए। कहा है कि

"अति प्रबल और भयंकर शत्रु राजा के चढ़ आने पर भी जिसका धीरज नहीं टूटता, वह राजा कभी नहीं हारता।

"विधाता के भय दिखलाने पर भी धीर पुरुषों का धैर्य नाश नहीं होता। गरमी में जब तालाब सूख जाते हैं तब भी समुद्र बराबर उछलता रहता है।

उसी प्रकार

"जिन्हें संकट में दुःख नहीं, ऐश्वर्य में हर्ष नहीं, और युद्ध में कायरता नहीं, ऐसे तीनों भुवनों के तिलक रूप विरले ही पुत्र को माता जन्म देती है।

उसी प्रकार

"ताकत न होने से, नम्र बने हुए, निर्बल होने से गौरवहीन बने हुए तथा मानहीन प्राणी की और तिनके की एक-सी गति है।

और भी

"दूसरे के प्रताप का सहारा लेने पर भी जिसमें मजबूती नहीं आती, ऐसे लाख के बने गहने के समान मनुष्य के रूप से क्या प्रयोजन है?

यह जानकर आपको धैर्य धरना चाहिए और केवल आवाज से नहीं डरना चाहिए।

कहा भी है—

"मैंने पहले जाना कि वह चरबी से भरा होगा, पर अन्दर घुसने के बाद उसमें जितना चमड़ा और जितनी लकड़ी थी, वह ठीक-ठीक समझ में आ गया।"

पिंगलक ने कहा, "यह किस तरह?"

दमनक ने कहा—

सियार और दुन्दुभि

"गोमायु नाम के एक सियार ने भूख-प्यास से व्याकुल होकर खाने की खोज में वन में इधर-उधर घूमते हुए दो सेनाओं की लड़ाई का मैदान देखा। उसने वहां नगाड़े के ऊपर हवा से हिलती हुई शाखा की टोंक की रगड़ से पैदा हुई आवाज सुनी। घबराए मन से उसने सोचा, 'अरे मैं मर गया! ऐसी बड़ी आवाज करने वाले जानवर की नजर में पड़ने के पहले मुझे चल देना चाहिए। लेकिन सहसा ऐसा करना ठीक नहीं।

"भय अथवा खुशी के मौके पर जो सोचता है और उतावले में काम नहीं करता उसे झींखने का कभी मौका नहीं आता।

तो अब मैं तलाश करूंगा कि यह किसकी आवाज है।" बाद में धीरज के साथ सोचता हुआ वह आगे बढ़ा और नगाड़ा देखा। उसमें से आवाज आती है, यह जानकर उसने पास जाकर खिलवाड़ के लिए उसे बजाया और फिर खुशी से विचारने लगा—"बहुत दिनों के बाद मुझे ऐसा बड़ा भोजन मिला है। निश्चय ही यह भरपूर मांस, चरबी और लहू से भरा होगा।" बाद में सख्त चमड़े से मढ़े हुए नगाड़े को किसी तरह चीरकर और एक भाग में छेद करके वह उसमें घुस गया। चमड़ा चीरते हुए उसके दांत भी टूट गए। केवल लकड़ी के नगाड़े को देख निराश होकर सियार ने यह श्लोक पढ़ा—

"मैंने पहले जाना कि वह चरबी से भरा होगा। पर अन्दर घुसने के बाद उसमें जितना चमड़ा और जितनी लकड़ी थी, वह ठीक-ठीक समझ में आई।

इसलिए आपको केवल आवाज से डरना नहीं चाहिए।" पिंगलक ने कहा, "अरे भाई, जब हमारा सारा कुटुम्ब ही भय से व्याकुल होकर भाग जाना चाहता है तो मैं कैसे धैर्य धारण कर सकता हूँ।" दमनक ने कहा, "स्वामी! इसमें उनका दोष नहीं है, क्योंकि सेवक स्वामी की तरह

ही होते हैं। कहा भी है--

"घोड़ा, हथियार, शास्त्र, वीणा, वाणी, पुरुष और स्त्री यह सब खास आदमियों को पाने पर लायक अथवा नालायक बनते हैं।

इसलिए जब तक मैं इस शब्द का स्वरूप जानकर न लौटूं तब तक आप धीरज के साथ यहीं हमारी राह देखिए। इसके बाद हम जैसा होगा करेंगे।" पिंगलक ने कहा, "क्या तू वहां जाने की हिम्मत रखता है?" दमनक ने कहा, "स्वामी की आज्ञा से अच्छे सेवक के लिए क्या कोई भी काम न-करने जैसा भी होता है? कहा भी है--

"स्वामी की आज्ञा होने के बाद अच्छे सेवक को कहीं भी भय नहीं लगता, वह सर्प के मुख में और कठिनता से पार करने के योग्य समुद्र में भी घुस जाता है।

और भी

"स्वामी की आज्ञा मिलने पर जो सेवक टेढ़े सीधे का विचार करता है, उसे समृद्धि चाहने वाले राजा को नहीं रखना चाहिए।"

पिंगलक ने कहा, "भद्र, यदि ऐसी बात है तो तू जा। तेरा पथ कल्याणमय हो।" दमनक भी उसे प्रणाम करके संजीवक की आवाज का पीछा करता हुआ चला।

दमनक के चले जाने पर भय से व्याकुल-चित्त पिंगलक सोचने लगा, "अहो, मैंने उसका विश्वास करके उसे अपना मतलब बताया, यह ठीक नहीं किया। अपने पद से हटाए जाने की वजह से दमनक शायद दूसरे पक्ष से भी पैसे लेकर मेरे प्रति बुरा बरताव अगर करे तो फिर? कहा भी है कि

"जो पहले राजा के सम्मानित होते हैं और पीछे अपमानित, वे कुलीन होने पर भी हमेशा राजा को खतम करने का प्रयत्न करते हैं।"

इसलिए उसकी चाल को जानने के लिए मैं दूसरी जगह जाकर उसका रास्ता देखूं, क्योंकि दमनक उस प्राणी को लाकर कदाचित मुझे

मारने की इच्छा रखता हो।

कहा भी है—

"कमजोर भी अगर अविश्वासी है तो तगड़े से नहीं मारा जायगा। जो तगड़ा भी है। वह विश्वास में आकर कमजोर से भी मारा जाता है।

"जो बुद्धिमान पुरुष अपनी बढ़ती आयुष्य और सुख की इच्छा रखता है, वह बृहस्पति का भी विश्वास नहीं करता।

"शपथ देकर भी संधि करने वाले दुश्मन का विश्वास नहीं करना चाहिए। राज्य पाने की अभिलाषा करने वाला वृत्र इन्द्र द्वारा शपथ लेकर भी मारा गया।

"विश्वास के बिना शत्रु देवताओं के भी वश नहीं आते। इन्द्र ने विश्वास का ही फायदा उठाकर दिति के गर्भ को चीर डाला।"

इस प्रकार निश्चय करके दूसरी जगह जाकर पिंगलक अकेला दमनक की बाट जोहने लगा। दमनक भी संजीवक के पास जाकर और उसे बैल जानकर प्रसन्न मन से सोचने लगा—"यह तो बड़ा अच्छा हुआ। इसके साथ मेल और लड़ाई कराने से पिंगलक मेरे वश में हो सकेगा।

कहा भी है—

"जब तक दुःख अथवा शोक न आ पड़े, तब तक राजा केवल कुलीन अथवा मित्र भाव होने से ही मंत्रियों की बात नहीं मानता। आफत में पड़ जाने पर राजा हमेशा के लिए मंत्रियों के वश में हो जाता है। इसीलिए मंत्रिगण चाहते हैं कि राजा विपत्ति में पड़े। जिस तरह नीरोग मनुष्य अच्छे वैद्य की परवाह नहीं करता, उसी प्रकार बिना आफत में फँसा राजा मंत्रियों की परवाह नहीं करता।"

इस तरह सोचते हुए दमनक पिंगलक की ओर बढ़ा। पिंगलक भी उसे आते देखकर अपने मनोभाव को छिपाता हुआ पहले की तरह ही बना रहा। दमनक ने पिंगलक के पास जाकर उसे प्रणाम किया और बैठ गया।

पिंगलक ने कहा, "क्यों आपने उस प्राणी को देखा ?" दमनक ने उत्तर दिया, " स्वामी की कृपा से देखा।" पिंगलक ने फिर कहा, "क्या सचमुच देखा ?"

दमनक बोला, "क्या महाराज से झूठ कहा जा सकता है? कहा भी है—

"राजाओं और देवताओं के सामने जो थोड़ा भी झूठ बोलता है वह बड़ा आदमी होने पर जल्दी ही नष्ट हो जाता है।

उसी प्रकार

"मनु का कहना है कि राजा सर्वदेवमय है, इसलिए कभी भी उसकी कपट से सेवा नहीं करनी चाहिए।

"सर्वदेवमय राजा की विशेषता यह है कि उसके पास से शुभ और अशुभ का फल तुरन्त ही मिल जाता है और देवता के पास से दूसरे जन्म में।"

पिंगलक ने कहा, "तुमने उसे जरूर देखा होगा। बड़े लोग गरीबों पर नाराज नहीं होते, इसलिए उसने तुम्हें मारा नहीं। कारण,

"कोमल और नीचे झुके हुए तिनकों को बवंडर उखाड़ नहीं फेंकता ; उन्नतचेता व्यक्तियों का यह स्वभाव ही है, बड़े बड़ों पर ही अपना पराक्रम दिखलाते हैं।

और भी

"मद जलयुक्त गंडस्थल पर प्रेम से अंधे भौंरे द्वारा लात मारने पर भी परम बलवान हाथी क्रोधित नहीं होता। बलवान अपने समान बल वाले पर ही क्रोध करता है।"

दमनक ने कहा, "जैसा आप कहें वही महात्मा और हम सब कमजोर; फिर भी अगर स्वामी कहें तो मैं उसे आपकी चाकरी में ला सकता हूँ।" पिंगलक ने लम्बी साँस भरकर कहा, "क्या ऐसा करने की तुझमें ताकत है ?" दमनक बोला,"बुद्धि के लिए कौनसी वस्तु असाध्य है ? कहा

है कि

"बुद्धि से जो काम बनता है वह शस्त्रों, बड़े हाथियों, घोड़ों, और पैदल फौज से नहीं बनता ।"

पिंगलक ने कहा, "अगर ऐसी बात है तो मैंने तुझे मंत्री बनाया । आज से अनुग्रह-निग्रह इत्यादि काम तुझे ही करने हैं, ऐसा मेरा निश्चय है । "

इसके बाद दमनक ने जल्दी से संजीवक के पास जाकर उसे फटकारते हुए कहा, "चल चल रे दुष्ट बैल, तुझे महाराज पिंगलक बुलाते हैं। निःशंक होकर क्यों वृथा हुंकारता है ?" यह सुनकर संजीवक ने कहा ,"भद्र, यह पिंगलक कौन है ?" दमनक बोला, "क्या तू स्वामी पिंगलक को नहीं जानता ? जरा ठहर, इसका फल तुझे मिलेगा । देख, सब जीवों से घिरा हुआ बरगद के नीचे स्वामी पिंगलक नामक सिंह बैठा है ।" यह सुन अपनी जिंदगी खतम समझकर संजीवक को बड़ा विषाद हुआ। उसने कहा, "भद्र, आप सही कहने वाले और वाक्य-कुशल दिखाई देते हैं, अगर आप मुझे वहां जरूर ही ले जाना चाहते हैं तो आपको मुझे स्वामी से अभयदान दिलाकर उनकी कृपा प्राप्त करानी होगी।" दमनक ने कहा, " अजी तुमने ठीक ही कहा । यही नीति है । क्योंकि

"भूमि , समुद्र और पर्वत की सीमा पाई जा सकती है, पर राजा के मन की थाह कोई कभी नहीं जान सकता ।

तू तब तक यहीं खड़ा रह,जबतक मैं ठीक ठाक करके उनसे मिलकर फिर तुझे वहां ले जाऊं ।"

इस प्रकार व्यवस्था करने के बाद दमनक ने पिंगलक से जाकर इस तरह कहा,"स्वामी, वह कोई साधारण जीव नहीं है। वह भगवान शिव का वाहन वृषभ है । मेरे पूछने पर उसने कहा, "प्रसन्न होकर भगवान शिव ने मुझे यमुना किनारे घास की टोंगियां चरने की आज्ञा दी है । बहुत कहने से क्या फायदा , भगवान ने मुझे खेलने के लिए यह वन दिया है ।" पिंगलक ने डर से कहा,"अब मैंने जाना कि पशुओं से भरे वन में घास चरने वाले पशु बिना देवता की कृपा के इस तरह निःशंक होकर हुंकारते हुए कभी घूम नहीं

सकते । फिर उसने क्या कहा ?" दमनक ने उत्तर दिया, "मैंने उससे कहा—यह वन दुर्गा के वाहन पिंगलक के अधिकार में है, इसलिए तुम उनके प्रिय अतिथि हो । तुम्हें पिंगलक के पास जाकर भाई-चारे के साथ एक साथ खाना-पीना व्यवहार वगैरह करते हुए रहकर समय बिताना चाहिए । उसने भी यह सब बात मानकर कहा है कि महाराज से तुझे मुझे अभयदान दिलवाना होगा । इस विषय में आपको जो अच्छा लगे कीजिए ।" यह सुनकर पिंगलक ने कहा, "साधु, पंडित मंत्री साधु ! तूने मेरे दिल से सलाह लेकर ही ऐसी बात उससे कही है तो मैं उसे अभयदान देता हूँ, पर मेरे लिए उससे भी अभयदान माँगकर तू उसे जल्दी यहां ला । यह बात ठीक ही कही है ,

"अन्दरूनी बल वाले , सीधे ,अछिद्र तथा अच्छी तरह से परीक्षा किए हुए मंत्री, जिस प्रकार खम्भे महल को खड़े रखते हैं, उसी तरह राज्य को खड़ा रखते हैं ।

और भी

"जिसके साथ लड़ाई हो गई हो उसी के साथ सुलह करने में मंत्रियों की बुद्धि प्रकट होती है और सन्निपात ज्वर के इलाज में वैद्य की बुद्धि प्रकट होती है ; बाकी तो मामूली हालत में कौन अपनी बुद्धिमत्ता नहीं दिखाता ?"

दमनक ने उसे प्रणाम किया और संजीवक के पास जाते हुए खुशी से सोचा, "अहा ! स्वामी मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मेरी वाणी से वश में हो गए हैं। इसलिए मुझसे बढ़कर धन्य कोई दूसरा नहीं हो सकता । कहा भी है—

"जाड़े में आग अमृत के समान है, प्रियजनों का दर्शन भी अमृत के समान है , राज-सम्मान भी अमृत के समान है तथा खीर का भोजन भी अमृत के समान है ।"

बाद में संजीवक के पास पहुँचकर दमनक ने विनयपूर्वक कहा, "हे मित्र ! तेरे लिए मैंने महाराज से अभयदान माँग लिया है। इसलिए

तू विश्वासपूर्वक चल, पर राजा की कृपा प्राप्त कर चुकने के बाद तुझे मेरे साथ शर्त के अनुसार व्यवहार करना होगा। शेखी में आकर अपने बड़प्पन में न भूल जाना। मैं भी मंत्री बनकर तेरे साथ सलाह मशविरे के साथ राज-काज चलाऊंगा। ऐसा करने से हम दोनों राज्य-लक्ष्मी भोग सकेंगे। क्योंकि

"शिकारी की तरकीब से मनुष्यों के वश में वैभव आता है। एक राजाओं को हंकाता है और दूसरा उसे पशुओं की तरह मारता है।

और भी

"राजा के पास के उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों का जो शेखी के मारे सम्मान नहीं करता, वह राजा का प्रिय पात्र होने पर भी दन्तिल की तरह पदच्युत हो जाता है।"

संजीवक ने कहा, "यह किस तरह ?" दमनक कहने लगा—

दंतिल, और गोरंभ की कथा

"इस पृथ्वी पर वर्द्धमान नाम का एक नगर है। वहां तरह-तरह के मालों का मालिक, और पूरे शहर का अगुवा (नगर सेठ) दंतिल नाम का सेठ रहता था। उसने नगर-राज्य का काम करते हुए नगरवासियों और प्रजा को प्रसन्न किया। बहुत क्या कहें, उसके समान चतुर न तो कोई देखा गया, न सुना गया। अथवा ठीक ही कहा है—

"राजा का हित करने वाला लोगों का द्वेष-पात्र बन जाता है, तथा जनपद का हित करने वाला राजा द्वारा त्याग दिया जाता है। इस तरह इन दोनों महाविरोध की स्थिति होने पर, राजा और प्रजा दोनों का काम करने वाला दुर्लभ होता है।"

इस तरह कुछ समय बीतने पर दंतिल की लड़की का विवाह हुआ। उस समय उसने नगर के रहने वालों तथा राजा के सन्निवर्तियों को सम्मान के साथ बुलाया और उन्हें भोजन कराके तथा वस्त्रादि देकर उनका सत्कार

किया। विवाह के बाद उसने अन्तःपुर के लोगों के साथ राजा को भी अपने घर बुलाकर उनकी सेवा की। उस दिन राजा के घर में झाड़ू देने वाला गोरंभ नाम का राज-सेवक भी उसके घर आया था, पर उसे अनुचित स्थान पर बैठा हुआ देखकर दंतिल ने उसे गरदनिया देकर बाहर निकाल दिया।

उस दिन गोरंभ आहें भरता रहा और रात में भी अपने अपमान के कारण न सो सका। 'कैसे मैं उस व्यापारी के ऊपर से राजा की कृपा-दृष्टि दूर करूं,' यही विचार करता रहता था। फिर उसने सोचा, इस प्रकार वृथा शरीर सुखाने से क्या फायदा! मैं दंतिल का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अथवा ठीक ही कहा है

"जो नुकसान पहुँचाने में असमर्थ है, ऐसे बेशर्म मनुष्य के क्रोध करने से क्या लाभ? भूनते समय फड़फड़ाता चना क्या भांड़ फोड़ सकता है?"

एक समय सवेरे के पहर जब राजा अर्ध-निद्रा में पड़े थे, उसी समय खाट के पास सफाई करते हुए गोरंभ बोला, "अरे! दंतिल की बदमाशी तो देखो कि वह महारानी का आलिंगन करता है।" यह सुनते ही राजा उतावली के साथ उठ बैठा और उससे पूछा, "गोरंभ, दंतिल ने देवी का आलिंगन किया, क्या यह सच है?" गोरंभ ने कहा, "जुए के प्रेम से रतजगा करने से मुझे जबरदस्त नींद आ गई थी, इसलिए मैं नहीं जानता कि मैंने क्या कहा?" डाह के मारे राजा ने अपने से कहा, "गोरंभ मेरे घर में निःसंकोच घूमता रहता है, उसी प्रकार दंतिल भी। तो शायद गोरंभ ने उसे देवी को आलिंगन करते हुए देखा हो और यह देखकर उसके मुंह से ऐसी बात निकली हो।

कहा है कि

"मनुष्य दिन में जिसकी इच्छा करता है, देखता है या करता है वही बात परिचय के कारण वह स्वप्न में बोलता है अथवा करता है।

और भी

"मनुष्यों के मन में जो भी शुभ और अशुभ अथवा पाप होता है

वह वहुत छिपा होने पर भी स्वप्न की वर्राहट से अथवा नशे की वजह से प्रकट हो जाता है।

अथवा स्त्रियों के विपय में संदेह ही क्या है ?

"वे एक के साथ बात करती हैं, दूसरे को नखरे से देखती हैं, तीसरे को मन में धारती हैं, फिर स्त्रियों का कौन प्रिय है ?

और भी

"वे मुस्कराते, लाल ओंठों से एक के साथ लड़-मिलाती हैं, खिली कोईं के समान आँखों वाली स्त्रियां दूसरे को देर तक देखती हैं ; कुछ मालदार को मन में चिंता करती हैं ; वामलोचना स्त्रियों का सचमुच प्रेम असली किसके ऊपर है ?

और भी

"आग लकड़ियों से कभी अघाती नहीं, समुद्र नदियों से नहीं अघाता, काल सब प्राणियों से भी तृप्त नहीं होता और वामलोचनाएं पुरुषों से नहीं अघातीं।

"एकांत जगह नहीं है, उत्सव का समय नहीं और प्रार्थनाकारी पुरुष नहीं है, इन कारणों से हे नारद, स्त्रियों का सतीत्व होता है।

"जो मूर्ख मोहवश होकर, यह स्त्री मेरे वश में है, यह मानने लगता है, वह उसके वश पालतू चिड़िया की तरह जाता है।

"जो पुरुष स्त्रियों का छोटा या बड़ा कहना अथवा काम करता है, वह ऐसा करने के बाद लोक में छोटा समझा जाता है।

"जो पुरुष स्त्री की प्रार्थना करता है, उसके संसर्ग में आता है तथा उसकी थोड़ी सेवा करता है, उस पुरुष की स्त्री इच्छा करती है।

"प्रार्थना करने वाले मनुष्यों के न होने पर तथा परिजनों के भय के कारण उच्छृंखल स्त्रियां मर्यादा के अन्दर रहती हैं।

"स्त्रियों के लिए कोई अगम्य नहीं है, उमर की मर्यादा का उन्हें

विचार नहीं होता। बदसूरत हो अथवा खूबसूरत, केवल पुरुष मान कर ही भोग वे करती हैं।"

"छोर से नीचे लटकती तथा नितम्बों के ऊपर पड़ी हुई लाल साड़ी की तरह आसक्त पुरुष स्त्रियों के भोग योग्य बनता है।

"रक्त (लाल) आलते की तरह रक्त (कामासक्त) पुरुष को स्त्रियां बलपूर्वक मारकर अपने पैरों में लगाती हैं; आलता को अपने पैरों में लगाती हैं और पुरुष को अपने पैरों में झुकाती हैं।"

इस प्रकार बहुत विलाप करने के बाद राजा ने उस दिन से दंतिल पर कृपा दिखाना बन्द कर दिया। बहुत क्या, उसकी ड्योढ़ी भी रोक दी। दंतिल ने राजा की नाखुशी देखकर सोचा—"अहो, ठीक ही कहा है—

"धन मिलने से कौन अभिमान नहीं करता? क्या विषयी मनुष्यों की आपत्ति कभी समाप्त होती है? पृथ्वी पर किसका मन स्त्रियों ने नहीं तोड़ा? राजा का कौन प्रिय होता है? काल की मर्यादा में कौन नहीं आता? कौन याचक गौरव पाता है? दुर्जन के जाल में फँसा हुआ कौनसा पुरुष बच गया है?

और भी

"कौए में पवित्रता, जुआरी में सचाई, सर्प में क्षमा, स्त्रियों में काम की शांति, नपुंसक में धैर्य, शराबी में तत्व-चिंता, और राजा का मित्र किसने देखा या सुना?

मैंने इस राजा का अथवा उसके किसी दूसरे संबंधी का स्वप्न में भी नुकसान नहीं किया है, फिर क्यों यह राजा विमुख है?" इस प्रकार कभी दंतिल को राज-द्वार पर रुके हुए देखकर झाड़ू देने वाले गोरंभ ने हँसकर द्वारपालों से यह कहा, "हे द्वारपालो! राजा का कृपापात्र यह दंतिल स्वयं निग्रह और अनुग्रह करने वाला है, इसलिए इसके रोकने से तुम्हें भी वैसे ही गरदनिया मिलेगी जैसे मुझे।" यह सुनकर दंतिल ने सोचा, अवश्य ही यह सब गोरंभ की हरकत है। अथवा ठीक ही कहा है—

"राजा की सेवा करने वाला मनुष्य अकुलीन, मूर्ख और सम्मान-हीन हो तब भी सब जगह उसका सत्कार होता है।
"कायर और डरपोक मनुष्य भी यदि राजा का सेवक हो तो लोगों से वह बेइज्ज़त नहीं होता।"

इस प्रकार बहुत रो-कलपकर अपमान और उद्वेग से प्रभाव-रहित बना दंतिल अपने घर वापस लौटा। संध्या समय उसने गोरंभ को बुलाया तथा कपड़े का जोड़ा देकर उसका बड़ा सत्कार करते हुए कहा, "भद्र, उस दिन मैंने तुझे गुस्से से नहीं निकाला था। तुझे ब्राह्मणों के आगे अनुचित स्थान पर बैठे देखकर मैंने तेरा अपमान किया। मुझे क्षमा कर।" गोरंभ ने भी स्वर्ग के राज्य के समान धोती-दुपट्टे के मिलने से अत्यन्त संतोष पाकर उससे कहा, "सेठजी! आपके उस कृत्य की मैं माफी देता हूँ। आपने मेरा सत्कार किया है तो अब मेरी बुद्धि का प्रभाव तथा (अपने ऊपर होने वाली) राजा की कृपा देखना।" ऐसा कहकर संतोष के साथ वह बाहर निकला। ठीक ही कहा है कि

"अहो! तराजू की डाँडी और खल पुरुष की चेष्टा समान है। थोड़े में वह ऊपर उठती है और थोड़े में ही वह नीचे जाती है।"

गोरंभ राज-महल में जाकर अर्ध-निद्रा में सोते हुए राजा के पास झाड़ू देता हुआ बोला, "अरे हमारे राजा की बेवकूफी तो देखो कि पाखाना जाते हुए वह ककड़ी खा रहा है।" यह सुनकर राजा ने विस्मित होकर उससे कहा, "क्यों रे गोरंभ, क्यों फजूल की बकवाद करता है? तुझे घर का चाकर जानकर मैं तुझे मार नहीं डालता।" क्या तूने मुझे ऐसा काम करते देखा था? गोरंभ ने जवाब दिया, "देव, जुए के प्रेम में रतजगा करने से झाड़ू देते समय मुझे जबरदस्ती नींद आ गई और उसके आ जाने पर मैं नहीं जानता कि मैंने क्या कहा। इसलिए निद्रा से बेबस मुझे स्वामी क्षमा करें।" यह सुनकर राजा ने सोचा, "अपने जीवन-भर मैंने पाखाना जाते समय कभी ककड़ी नहीं खाई, इसलिए फिर

जैसी अंड-वंड और असंभव वात मेरे वारे में इस मूढ़ ने कही है, वैसी ही दंतिल के वारे में भी कही होगी ; यह निश्चित है। मैंने उस वेचारे का जो अपमान किया, वह ठीक नहीं था। उसके जैसे मनुष्यों से ऐसा आचरण संभव नहीं है। उसके विना राज-कार्य, नगर-कार्य, सवमें शिथिलता आ गई है।" इस तरह वहुत विचार करने के वाद राजा ने दंतिल को वुलाकर और उसे अपने गहनों और वस्त्रों से सजाकर फिर उसे उसके पद पर नियुक्त कर दिया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि

"राजा के पास के उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य का जो शेखी के मारे सम्मान नहीं करता वह राजा का प्रिय पात्र होने पर भी दंतिल की तरह पद-च्युत हो जाता है।"

संजीवक ने कहा, "भद्र ! यह तो ठीक है, जैसा आपने कहा है, मैं वैसा ही करूँगा।" उसके ऐसा कहने पर उसे लेकर दमनक पिंगलक के पास आया। और कहा, "देव, मैं उस संजीवक को लाया हूँ। अव आपको जैसा लगे करिए।" संजीवक पिंगलक को प्रणाम करके विनय के साथ आगे खड़ा रहा। पिंगलक ने भी उसके पुष्ट और वड़े जूए पर अपने वज्र रूपी नख से अलंकृत दाहिने हाथ को रखकर उसका आदर करते हुए कहा, "आप कुशल से तो हैं ? इस निर्जन वन में आप किस तरह आए ?" उसने भी अपना सव हाल कहा। किस तरह वर्द्धमान के साथ वियोग हुआ तथा और भी वातें कहीं। यह सुनकर पिंगलक ने और भी आदर के साथ उससे कहा, "मित्र! डरो मत। मेरी भुजाओं से तुम रक्षित होकर रहो। फिर भी तुम्हें हमेशा मेरे पास रहना चाहिए, क्योंकि अनेक विघ्नों से भरा हुआ और भयंकर पशुओं से सेवित यह वन वड़े प्राणियों के भी रहने लायक नहीं है, फिर घास खाने वालों की तो वात ही क्या है !" यह कहकर सव पशुओं से घिरे हुए पिंगलक ने यमुना के किनारे उतरकर पानी पिया और अपनी इच्छा से वन में घुस गया। उसी समय से वह करटक और दमनक के ऊपर राज्य-भार छोड़कर संजीवक के साथ सुन्दर वातचीत में समय विताता हुआ रहने लगा। अथवा सच ही कहा है—

"दैव-इच्छा से यदि सत्पुरुषों के साथ एक बार भी समागम हो जाय तो वह अत्यन्त मजबूत बन जाता है; उसके लिए फिर नित्य परिचय की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अनेक शास्त्रों के पढ़ने से ठोस बुद्धि वाले संजीवक ने थोड़े ही दिनों में मूर्ख पिंगलक को बुद्धिमान बना दिया और उसे जंगलीपन से अलग करके ग्राम्य-धर्म में लगा दिया। बहुत कहने से क्या, रोज पिंगलक और संजीवक अलग में सलाह करते थे और दूसरे जीव दूर ही रहते थे। करटक और दमनक का भी वहाँ प्रवेश न था। सिंह के शिकार न करने से भूखे पशु एक ओर जाने लगे।

कहा भी है —

"पेड़ ऊँचा अथवा पुराना भी हो, लेकिन अगर सूख जाय और फल-हीन हो जाय तो पंछी उसे छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं। उसी प्रकार सेवकजन कुलीन और उन्नत होते हुए भी सेवाका फल न देने वाले राजा को छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं।

और भी

"सम्मानयुक्त, कुलीन और भक्ति-परायण सेवक भी रोजी टूट जाने पर राजा को छोड़ देते हैं।

और भी,

"जो राजा सेवकों की तनख्वाह देने में देर नहीं करता उससे तिरस्कृत होने पर भी सेवक उसे कभी नहीं छोड़ते हैं।

केवल सेवक ही ऐसे नहीं होते, पर सारे संसार में प्राणि-मात्र आजीविका के लिए साम आदि उपायों द्वारा प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। जैसे कि

"जलचर जिस तरह दूसरे जलचरों पर जीते हैं। उसी प्रकार देशों पर राजा, रोगियों पर वैद्य, ग्राहकों पर व्यापारी, मूर्खों पर पंडित, प्रमादी मनुष्यों पर चोर, गृहस्थों पर भिक्षु, कामीजनों पर वेश्याएं, और सब लोगों पर

कारीगर । साम इत्यादि उपायों द्वारा सजे जाल लेकर रात-दिन वे उनकी राह देखते हैं।

अथवा ठीक ही कहा है कि

"सर्पों का, खल पुरुषों का और दूसरों का धन चोरी करने वालों के मतलब नहीं गँठते, इसीलिए तो दुनिया बनी है।

"भूख से व्याकुल महादेव का सर्प गणेश के चूहे को खा जाने की इच्छा करता है, उस सर्प को कार्तिकेय का मोर खाना चाहता है, और सर्प के खाने वाले उस मोर को पार्वती का सिंह खा जाना चाहता है। अगर शिव के घर में ही परिजनों की यह हालत है तो दूसरे के यहाँ ऐसा क्यों न हो? जगत् का स्वरूप ही ऐसा है।"

भूख से व्याकुल और स्वामी की दया से रहित करटक और दमनक आपस में विचार करने लगे। दमनक ने कहा," आर्य करटक! हमारी तो अब कोई हैसियत ही नहीं रह गई। संजीवक में अनुरक्त होकर पिंगलक ने अपने कामों से मुंह फेर लिया है। सब नौकर भी भाग गए हैं, अब क्या करना चाहिए?" करटक ने कहा, "अगर स्वामी तेरी बात न भी माने, तो भी तुझे उससे अपने दोष दूर करने के लिए कहना चाहिए।

कहा भी है—

"विदुर ने जिस प्रकार धृतराष्ट्र को शिक्षा दी थी उसी प्रकार राजा अगर न भी सुने तो भी उसके दोष दूर करने के लिए मंत्रियों को उसे सलाह देनी चाहिए।

और भी

"घमंडी राजा और मतवाला हाथी अगर टेढ़े रास्ते जायं तो उनके पास रहने वाले महामात्र (महावत और मंत्री) निन्दा के पात्र होते हैं।

तू ही इस घासखोर को स्वामी के पास लाया, इसलिए तूने अपने हाथों ही जलते अंगारे खींचे।" दमनक ने कहा, "हाँ, ठीक है, यह मेरा ही दोष है,

स्वामी का नहीं। कहा भी है—

"मेढ़ों की लड़ाई में सियार ने आपाढ़भूति से हमने, और दूसरे के काम करने से दूती नाइन ने (इन तीनों ने दुःख पाया), इन तीनों के इनमें अपने ही दोप थे।"

करटक ने कहा, "यह कैसे?" दमनक कहने लगा —

आषाढ़भूति, सियार और दूती आदि की कथा

"किसी एकांत प्रदेश में एक मठ था। वहाँ देवशर्मा नाम का एक परिव्राजक रहता था। अनेक साहूकारों द्वारा दिये गए महीन वस्त्रों के वेचने से उसके पास काफी धन इकट्ठा हो गया, इसीलिए वह किसी का विश्वास नहीं करता था। रात और दिन वह धन की थैली अपनी वगल में ही रखता था। अथवा ठीक ही कहा है कि

"धन पैदा करने में दुःख है, पैदा किये हुए धन की रक्षा करने में भी दुःख है, आमदनी में भी दुःख है, खर्च में भी दुःख है, इसलिए तकलीफ देने वाले धन को ही धिक्कार है।"

उसी बीच दूसरे का धन चुराने वाला आपाढ़भूति नाम का एक धूर्त उसकी वगल में पड़ी हुई रुपये की थैली देखकर विचारने लगा कि "मैं इस परिव्राजक के धन को किस तरह चुराऊँ। इस मठ की दीवारें मजबूत पत्थर की वनी होने से उनमें सेंध भी नहीं लग सकती। दरवाजा खूब ऊँचा होने से उसे डाँककर भीतर घुसना भी मुश्किल है। इसलिए कपट की वातों से उसका विश्वास प्राप्त करके उसका शिष्य हो जाऊँ जिससे भूलकर क़दाचित् वह मेरा विश्वास करने लगे। कहा भी है—

"असंस्कारी मनुष्य मीठे वचन नहीं वोलता, ठग खुली वातें नहीं करता, निस्पृह मनुष्य किसी का अधिकार नहीं मांगता और काम-रहित मनुष्य गहनों की चाह नहीं करता।"

इस प्रकार निश्चय करके उसने देवशर्मा के पास जाकर 'ओं नमः शिवाय' ललकारते हुए उससे विनयपूर्वक कहा, "भगवन्! यह संसार

असार है, पहाड़ी नदी की तेजी की तरह यह जवानी जल्दी ही वह जाने वाली है, फूस की आग के समान यह जीवन है, जाड़े के बादलों की छाया के समान भोग अस्थायी हैं, और मित्र, पुत्र, पत्नी और सेवकगणों का साथ सपने की तरह है। इन सबका मैंने पूरी तरह से अनुभव किया है, फिर मैं क्या करने से संसार-सागर से पार उतर सकता हूँ?" यह सुनकर देवशर्मा ने आदर पूर्वक कहा, "वत्स, तू धन्य है कि युवावस्था में ही तुझे वैराग्य हुआ है। कहा भी है कि

"जवानी में ही जो शांत होता है वही मेरी राय में शांत है।
शरीर की धातुओं के छीजने पर तो किसे शांति नहीं होती।

"भलेमानसों को पहले मन में और फिर शरीर में बुढ़ापा आता है।
दुष्टों को तो केवल शरीर में ही बुढ़ापा आता है, चित्त में तो वह आता ही नहीं।

यदि संसार-सागर को पार करने का उपाय तू मुझसे पूछता है, तो सुन—

"शूद्र अथवा दूसरा कोई, अथवा चांडाल भी शिव-मंत्र से दीक्षित होकर जटा धारण करे तथा शरीर में भस्म लगाए तो वह शिव-रूप होता है।

"छ: अक्षरों के मंत्र से जो मनुष्य स्वयं शिव-लिंग के ऊपर एक फूल भी चढ़ाता है उसका फिर से जन्म नहीं होता।"

यह सुनकर आषाढ़भूति ने संन्यासी के पाँव पकड़कर विनयपूर्वक उससे कहा, "भगवन्! मुझे दीक्षा देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए।" देवशर्मा ने कहा," मैं तेरे ऊपर अनुग्रह करूँगा, परन्तु रात में तुझे मठ के अन्दर घुसना नहीं होगा, क्योंकि यतियों के लिए अकेलापन प्रशंसनीय है, मेरे और तेरे दोनों ही के लिए।

कहा भी है—

"खोटी सलाह से राजा, दूसरों के साथ से संन्यासी, लाड-चाव से पुत्र, न पढ़ने से ब्राह्मण, बदमाश लड़के से कुल, खल के साथ से शील, प्रेम के अभाव से मैत्री, अनीति से समृद्धि, विदेश में

तरह के हैं। ऐसी स्थिति में अगर पर-पुरुष अपने अधीन हो तो जवानी का फल भोगने वाली स्त्रियों का जन्म धन्य-है।

और भी

"दैव योग से अगर वदसूरत आदमी भी मिल जाय तो छिनाल अकेले में उसके साथ मजे लेती है, पर मुश्किल से भी वह अपने सुन्दर पति का सहवास नहीं करती।"

वह वोली, "वात तो ठीक है पर तुम्हीं वताओ कि कठिन वंधनों से जकड़ी हुई मैं वहाँ कैसे जा सकती हूँ? और मेरा पापी पति पास में ही पड़ा है।" नाइन ने कहा, "सखी! नशे में वेहोश यह सूर्य की किरणों के छूने के वाद ही जागेगा, इसलिए मैं तुझे छुड़ा देती हूँ। मझे तू अपनी जगह वाँधकर देवदत्त की खातिर करके जल्दी से वापस आ जा।" उसने कहा, "ठीक! ऐसा ही होगा।" वाद में उस नाइन ने अपनी सखी का वंधन खोलकर तथा उसके स्थान में उसी तरह अपने को वाँधकर उसे देवदत्त के पास संकेत-स्थल पर भेजा। इसके वाद नशा उतर जाने पर तथा गुस्सा कुछ कम हो जाने पर बुनकर थोड़ी देर वाद उठा और वोला, "अरे कठोरभाषिणी, यदि आज से तू घर के वाहर न जाय, न कठोर वातें कहे तो मैं तेरे वंधन खोल दूंगा।" नाइन ने अपनी आवाज पहचाने जाने के डर से कुछ नहीं कहा। फिर भी बुनकर ने वही वात वार-वार दोहराई। जव उसने कोई जवाव नहीं दिया तव उसने गुस्से से तेज हथियार लेकर उसकी नाक काट दी और कहा," ले छिनाल! ऐसी ही रह, मैं फिर तुझे मनाने वाला नहीं।" यहीं वड़वड़ाता हुआ वह फिर सो गया। धन-नाश और भूख से पीड़ित तथा जागते हुए देवशर्मा ने यह सव तिरिया-चरित देखा। बुनकर की स्त्री ने भी देवदत्त के साथ भरपूर मजे उड़ाकर उसी के कुछ देर वाद अपने घर वापस आकर नाइन से कहा," ओ-ओ, तू मजे में तो है? मेरे जाने के वाद यह पापी जागा तो नहीं था?" नाइन ने जवाव दिया, "सिवाय नाक के वाकी सव शरीर की कुशल है। जल्दी से मेरे वंधन खोल जिससे

उसके देखने के पहले ही मैं अपने घर पहुँच जाऊँ।" यह सब होने के बाद बुनकर ने पुनः उठकर कहा, "छिनाल, अब भी क्यों नहीं बोलती ! क्या मैं फिर इससे भी कठोर कान काटने की सजा तुझे दूं ?" गुस्से और झिड़की के साथ उसकी स्त्री ने जवाब दिया, "अरे महामूर्ख, तुझे धिक्कार है। मुझ-जैसी महासती के अंग काटने वाला और उसे ताने मारने वाला कौन समर्थ है ? इसलिए हे सब लोकपालो सुनो !

"सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, रात्रि, दिवस, दोनों संध्याएं (सवेरा और संध्या) तथा धर्म, ये सब मनुष्य का आचरण जानते हैं।

इसलिए अगर मेरा सतीत्व है, और मन से भी मैंने दूसरे आदमी की इच्छा नहीं की है तो देवगण पुनः मेरी नाक को पहले की तरह सुन्दर और पूरा बना दें। पर यदि मेरे चित्त में पर-पुरुष का झूठा खयाल भी है तो वे मुझे जला डालें।" यह कहकर वह फिर उससे बोली, "ओ पापी, देख मेरे सतीत्व के प्रभाव से मेरी नाक पहले-जैसी ही हो गई है।" इस पर बुनकर ने लुआठी की रोशनी में उसकी ज्यों-की-त्यों नाक और जमीन पर गहरा खून बहते देखा। बड़े अचंभे में पड़कर उसने उसका बंधन खोलकर उसे खाट पर लिटाकर खुशामद की बातों से उसकी मिन्नत की। देवशर्मा ने भी यह सब हाल देखकर विस्मित मन से कहा —

"शंबरासुर की जो माया है, नमुचि की जो माया है, तथा बलि और कुंभीनसि की जो माया है, वह सब माया स्त्रियाँ जानती हैं।

"स्त्रियाँ हँसते पुरुष के साथ समय देखकर हँसती हैं, रोने वाले के साथ रोती हैं, तथा अप्रिय को मीठी बातों से वश में करती हैं।

"शुक्राचार्य जो शास्त्र जानते हैं और बृहस्पति जो शास्त्र जानते हैं, ये शास्त्र स्त्री-बुद्धि से बढ़कर नहीं हैं। इसलिए ऐसी स्त्रियों की किस तरह रक्षा करनी चाहिए ?

"जो स्त्रियाँ झूठ को सच और सच को झूठ कहती हैं उनकी इस

दुनियाँ में वीर पुरुष कैसे रक्षा कर सकते हैं?

दूसरी जगह भी कहा गया है—

"स्त्रियों का बहुत साथ नहीं करना चाहिए, स्त्रियों का बल बढ़े, ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि वे पर-कटे पक्षियों के समान प्रेमी पुरुषों के साथ खेल करती हैं।

जवान स्त्रियाँ सुन्दर मुख से मीठी बातें करती हैं, और कठोर चित्त से वार करती हैं। स्त्रियों की बात में शहद रहता है, पर दिल में हलाहल महा-विष।

"इसी से अल्प-सुख के लिए ठगे हुए कामी पुरुष, मिठास के लालच में भौंरे जैसे कमल का रस लेते हैं, वैसे ही उनके ओंठ चूमते हैं, और बाद में मूठ से अपनी छाती कूटते हैं।

और भी

"संशयों का भँवर, अविनयों का घर, साहसों का नगर, दोषों का निवास-स्थान, सैंकड़ों कपटों से भरे हुए अविश्वासों का क्षेत्र, बड़े नर-पुंगवों के लिए भी मुश्किल से ग्रहण करने योग्य तथा सब तरह की माया की टोकरी-स्वरूप अमृत से मिश्रित विष के समान स्त्री-रूपी यंत्र धर्म के नाश करने के लिए इस लोक में किसने बनाया है?

"जिनके दोनों स्तनों में कड़ाई, आँखों में तरलता, मुख में झूठ, केश-भार में कुटिलता, वाणी में ढीलापन, जाँघों में स्थूलता, हृदय में भीरुता, प्रियजनों के प्रति कपट-भाव हो, ऐसी मृगाक्षी स्त्रियों के दोष-समूह ही गुण गिने जाते हैं, वे मनुष्यों को प्रिय हैं?

"ये स्त्रियाँ अपना काम बनाने के लिए हँसती हैं, रोती हैं दूसरों, का अपने ऊपर विश्वास जमाती हैं, पर स्वयं दूसरों का विश्वास नहीं करतीं, इसीलिए कुलीन और शीलवान पुरुष स्त्रियों का सदा मसान के घड़े की तरह त्याग करते हैं।

"लहराते अयाल से विकट मुख वाले सिंह, अविक मद-राशि से सुशोभित हाथी, बुद्धिमान पुरुष, और लड़ाइयों में वीर सिपाही, स्त्रियों के पास परम कापुरुष वन जाते हैं।

"पुरुष आशिक नहीं है, जब तक स्त्रियाँ यह जानती हैं, तव तक वे पुरुष की मनचाही वात करती हैं। पर उन्हें काम के जाल में फँसा देखकर माँस निगले हुई मछली की तरह उसे वाहर निकाल फेंकती हैं।

"समुद्र की लहरों-जैसी चंचल स्वभाव वाली, तथा संध्या-काल के वादलों की तरह क्षणिक ललाई वाली स्त्रियाँ अपना काम हो जाने के वाद वे-काम मनुष्य को निचोड़े गए रस-रहित अलते की तरह फेंक देतीं हैं।

"झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लालच, अपवित्रता तथा निर्दयता—ये स्त्रियों के स्वभावगत दोष होते हैं।

"मोहती हैं, मद उत्पन्न करती हैं, हँसी करती हैं, तिरस्कार करती हैं, खेलती हैं, दुःख करती हैं, ऐसी टेढ़ी नजरों वाली स्त्रियाँ मनुष्यों के भोले हृदय में घुसकर क्या-क्या नहीं करतीं?

"भीतर तो जहरीले होते हैं, लेकिन वाहर से सुन्दर दीखते हैं, ऐसे गुंज-फलों के समान स्त्रियों की किसने रचना की है?"

इस तरह सोचते हुए उस संन्यासी की रात वड़ी मुश्किल से कटी। नकटी दूतिका ने भी अपने घर जाकर सोचा, "अव क्या करना चाहिए, और इस वड़े भेद को किस तरह ढकना चाहिए।" वह इसी तरह सोच रही थी कि उसका पति, जो काम के लिए रात में राज-महल गया था, सवेरे ही अपने घर लौटकर नागरिकों की हजामत वनाने के लिए जाने की उतावली से देहली पर ही खड़ा होकर उससे कहने लगा, "भद्रे! जल्दी से छुरे की पेटी ला, जिससे मैं हजामत वनाने जाऊँ।" नकटी नाइन ने, जो अपना काम वनाने की ताक में घर में ही वैठी थी, छुरे की पेटी में से एक छुरा निकालकर नाई की तरफ फेंका।

नाई ने भी उत्सुकता से केवल एक छुरा देख कर गुस्से से उसकी ओर वह छुरा फेंका। इसके बाद वह दुष्टा हाथ उठाए हुए रोती चिल्लाती घर से बाहर निकल आई। 'अरे देखो, इस पापी ने मेरी-ऐसी सतवंती की नाक काट डाली। इससे मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' इसके बाद राज-पुरुषों ने आकर उस नाई को डंडों से पीटा और मजबूती से बांधकर उस नकटी के साथ धर्माधिकरण-स्थान (अदालत) में ले जाकर न्यायाधीशों से कहा, "हे सभासद ! सुनिए, इस नाई ने बिना-कसूर अपनी स्त्री का अंगच्छेद कर दिया है। इस बारे में जो ठीक हो वह कीजिए।" ऐसा कहने पर न्यायधीशों ने कहा, "अरे नाई, किसलिए तूने अपनी स्त्री का अंग-भंग कर दिया ? क्या वह पर-पुरुष को चाहती थी, अथवा वह किसी को जानती थी अथवा चोरी की थी, उसका अपराध कहो।" नाई मार खाने के भय से बोल न सका। उसे चुप रहते देखकर न्यायाधीशों ने पुनः कहा, "इन राज-पुरुषों की बात ठीक है, यह पापी है, जिसने इस बेचारी स्त्री को दूषित किया है। कहा भी है—

"पाप-कर्म के बाद मनुष्य अपने कर्म से ही डर जाता है, उसके मुख का रंग और आवाज बदल जाती है, दृष्टि शंकित हो जाती है और तेज उड़ जाता है।

और भी

"जिसके मुंह का रंग फीका पड़ गया है, ललाट पर पसीना आ गया है, ऐसा आदमी डगमगाता हुआ अदालत में आता है और भर्राई हुई आवाज में बोलता है। पाप करके अदालत में आया मनुष्य आंखें नीची करके बोलता है, इसलिए चतुर पुरुषों को यत्नपूर्वक इन चिन्हों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

और भी

"निर्दोष मनुष्य प्रसन्न-वदन, खुश, साफ बोलने वाला, गुस्से से भरा

आँखों वाला होता है और सभा में गुस्से और कड़ाई के साथ बोलता है।

इसमें बदमाशी के लक्षण दीखते हैं; स्त्री का अंग-भंग करने से यह मृत्यु-दंड का भागी है। इसलिए इसे शूली पर चढ़ा दो।"

उसे वध-स्थान पर ले जाते देखकर देवशर्मा ने धर्माधिकारियों के पास जाकर कहा, "न्यायाधीशो! यह गरीब नाई अन्याय से मारा जा रहा है। यह तो सदाचारी है। मेरी बात सुनिए, 'मेढ़ों के युद्ध में सियार का अपना ही दोष था।' तब न्यायाधीशों ने कहा, "भगवन्, यह किस तरह?" इसके बाद देवशर्मा ने तीनों का ब्यौरेवार हाल-चाल कहा। उसे सुनकर ताज्जुब में आकर उन्होंने नाई को छोड़ दिया और स्वतः कहने लगे, "अहो,

"ब्राह्मण, बालक, स्त्री, तपस्वी और रोगी अवध्य हैं, बड़े अपराध करने पर भी अंगच्छेद ही उनका दंड है।

इसकी नाक काटना उसके कर्म का ही फल है। इसलिए राज-दंडस्वरूप इस स्त्री के कान काट लेने चाहिएं।" ऐसा हो जाने पर धन-नाश के दुःख से रहित होकर देवशर्मा भी पुनः अपने मठ चले आए।

करटक ने कहा, "ऐसी हालत में हम दोनों को क्या करना चाहिए?" दमनक ने कहा, "ऐसे समय भी मेरी बुद्धि ऐसा फड़केगी, जिसमें मैं स्वामी से संजीवक को अलग कर सकूंगा।" कहा भी है—

"धनुर्धारी के तीर से एक के मरने या न मरने से क्या होता है? बुद्धिमानों की तरतीब से नायक के साथ सारा राष्ट्र मर जाता है।

इसलिए मैं छिपी चाल से उसे तोड़ डालूंगा।" करटक ने कहा, "भद्र! यदि किसी तरह तेरी चाल का पिंगलक को पता लग गया तो संजीवक के बदले तेरी मौत होगी।" उसने कहा, "तात! ऐसा मत कह; आपत्ति-काल में दैव के प्रतिकूल होने पर भी; चालबाजियों का प्रयोग उचित है, कोशिश नहीं छोड़नी चाहिए। कदाचित् घुणाक्षर-न्याय से बुद्धि का राज होता है। कहा भी है—

"दैव के प्रतिकूल होने पर भी धीरज नहीं छोड़ना चाहिए। धैर्य से

कदाचित वह स्थिति पर अधिकार पाता है। समुद्र-यात्रा में जहाज टूट जाने पर भी कर्णधार केवल काम की ही आशा रखता है।

और भी

"हमेशा उद्योग करने वाले के पास लक्ष्मी आती है, 'दैव ! दैव !' केवल का पुरुष पुकारते हैं। भाग्य को एक तरफ करके अपनी ताकत से काम करो। यत्न करने से भी काम सिद्ध न हो तो उसमें क्या दोष है ?"

यह जानकर बारीक बुद्धि के प्रभाव से वे दोनों न जानने पाएं, ऐसी छिपी चाल में चलूंगा। कहा भी है—

"अच्छी तरह से साधे हुए दंभ का पार ब्रह्मा भी नहीं पा सकते। बुनकर ने भी विष्णु का रूप धारण करके राजकन्या के साथ रमण किया।"

करटक ने कहा, "सो कैसे ?" उसने कहा—

विष्णु का रूप धारण करने वाले बुनकर और राज-कन्या की कथा

किसी नगर में एक बुनकर और रथकार मित्र होकर रहते थे। बचपन से ही एक साथ रहने से उन दोनों में इतना स्नेह हो गया था कि वे सब जगहों में एक साथ विहार करते हुए समय बिताते थे। एक समय उस नगर के किसी मंदिर में यात्रोत्सव हुआ। वहां अनेक चारणों और भिन्न-भिन्न देशों से आए हुए लोगों से भरे स्थान में घूमते हुए दोनों मित्रों ने हथिनी पर सवार सब लक्षणों से युक्त कंचुकियों और वर्षधरों (ख्वाजा सराते) से घिरी हुई तथा देवता-दर्शन को आई हुई किसी राज-कन्या को देखा। उसे देखकर काम-बाणों की मार से वह बुनकर, विष से पीड़ित के समान अथवा दुष्ट-ग्रह से ग्रसित होने वाले के समान एकाएक जमीन पर गिर पड़ा। उसे इस हालत में देखकर उसके दुःख से दुखी रथकार विश्वासी मनुष्यों द्वारा उसे उठाकर अपने घर ले आया। वहां चिकित्सकों के बताए अनेक तरह के ठंडे उपचारों तथा ओझाओं के मंत्रों से इलाज करने पर बहुत

देर के बाद मुश्किल से उसे होश आया। इसके बाद रथकार ने उससे पूछा, "मित्र ! तुम एकाएक किसलिए बेहोश हो गए ? तुम अपने मन की बात मुझसे कहो।" बुनकर बोला, "मित्र ! अगर ऐसी बात है तो मेरा भेद सुन और मेरी सब तकलीफों को जान। अगर तू मुझे अपना मित्र मानता हो, तो तू मुझे लकड़ी देकर (चिता बनाकर) मेरे ऊपर कृपा कर। यदि प्रेम के वेग से मैंने कुछ अनुचित बात भी की हो तो तू मुझे क्षमा कर।" यह सुनकर आँसुओं से डबडबाई आँखों वाले रथकार ने भर्राई आवाज से कहा, "अपने दुःख का कारण मुझसे कह, जिससे अगर वह दूर हो सकता हो तो उसकी कोशिश की जाय। कहा भी है—

"इस संसार में कोई भी बात दवा, धन और अच्छी सलाह तथा बड़ों की बुद्धि से असाध्य नहीं है।

इन चारों उपायों से यदि काम सधता होगा तो मैं साधूंगा।" बुनकर ने कहा, "मित्र, इन साधनों से तथा दूसरे हजारों उपायों से भी मेरा दुःख असाध्य है। इसलिए मेरे मारने में अब तू देरी मत कर।" रथकार बोला, "मित्र! यदि तेरा दुःख असाध्य भी है तो मुझे बतला, जिससे मैं उसे असाध्य जानकर तेरे साथ अग्नि में प्रवेश करूँ, क्योंकि तुझसे एक क्षण का भी वियोग मैं सह न सकूंगा, यह मेरा निश्चय है।" बुनकर ने कहा, "मित्र ! हाथी पर चढ़ी उस उत्सव में जिस राज-कन्या को मैंने देखा, उसके देखने के बाद ही काम ने मेरी यह अवस्था कर डाली। मैं अब इस पीड़ा को नहीं सह सकता। कहा भी है—

"मतवाले हाथी के कुंभों के समान आकार वाले, केसर से गीले उसके स्तनों पर रति खेल से खिन्न होकर, वक्षस्थल पर बाहुओं के बीच में उसे लेकर उसके साथ किस क्षण सो सकूंगा ?

"उसके बिंबा के समान लाल अधर हैं, कलश के समान उसके स्तन-युगल हैं, चढ़ती हुई जवानी का उसे अभिमान है, उसकी नीची नाभि है, स्वभाव से ही घुंघराली अलकें हैं तथा पतली कमर है। इन सब बातों के सोचने से मेरे मन में खेद होता है, उसके दोनों स्वच्छ

कपोल मुझे धीरे-धीरे जलाते हैं, यह ठीक नहीं है।"

रथकार भी उसकी घबराई बातें सुनकर मुस्कराता हुआ बोला, "मित्र ! यदि यही बात है तो अपना मतलब सिद्ध हो गया समझ। आज ही तू राज-कन्या के साथ विहार कर।" बुनकर ने कहा, "मित्र ! रक्षकों से घिरे हुए राजकुमारी के महल में, जहाँ हवा को छोड़कर और किसी का प्रवेश नहीं है, वहाँ उसके साथ मेरी भेंट कैसे हो सकती है ? झूठ बोलकर क्यों तू मेरा मजाक उड़ाता है ? " रथकार ने कहा; "मित्र! मेरी बुद्धि का बल देख।" यह कहकर उसने उसी क्षण पुराने अर्जुन के पेड़ की लकड़ी से कील-कांटे से लैस उड़ने वाला गरुड़ बनाया तथा शंख-चक्र और गदा-पद्म से युक्त बाहु-युगल तथा किरीट और कौस्तुभ मणि भी तैयार की। बाद में उस बुनकर को उसने गरुड़ पर बिठाया और उसे विष्णु के लक्षणों से सजाया, तथा उसे कल-पुरजा चलाने की बात बताकर कहा, "मित्र! इस प्रकार विष्णु का रूप धारण करके राजकुमारी के सत-खंडे महल के सबसे ऊपरी खंड में, जहाँ वह अकेली ही रहती है, तू आधी रात में जाना तथा भोली-भाली तुझे विष्णु मानती हुई उस कन्या को तू अपनी झूठी बातों से प्रसन्न करके वात्स्यायन की कही हुई विधि के अनुसार उसके साथ रति करना।" विष्णु का रूप धारण किए हुए बुनकर ने यह सुनकर और वहाँ पहुँचकर एकांत में राज-कन्या से कहा, "राज-पुत्रि! तू सोती है अथवा जागती है ? मैं तेरे प्रेम में फँसकर लक्ष्मी को छोड़कर समुद्र से यहाँ चला आ रहा हूँ, इसलिए तू मेरे साथ समागम कर।" वह राज-कन्या भी गरुड़ पर सवार चतुर्भुज, आयुधों तथा कौस्तुभ मणि से युक्त उसे देखकर आश्चर्य करती हुई खाट से उठ बैठी और कहा, "भगवन्! मैं मानवी अपवित्र कीड़ी के समान हूँ और भगवान् त्रैलोक्य-पावन और वंदनीय हैं, फिर कैसे यह जोड़ पटेगा।" बुनकर ने कहा, "तूने सच ही कहा सुभगे ! तूने सच ही कहा; किंतु जिस राधा नाम की मेरी स्त्री का पहले गोप-कुल में जन्म हुआ था, वही तुझमें आज पैदा हुई है। इसलिए मैं आज यहाँ आया हूँ।" ऐसा कहने पर उसने जवाब दिया, "भगवन् ! यदि यही बात है

तो आप मेरे पिता से मुझे माँगें। वे विधिपूर्वक संकल्प के साथ मुझे आपको दे देंगे।" बुनकर ने कहा, "सुभगे ! मैं मनुष्यों की आँखों के रास्ते तक नहीं जाता फिर उनसे बात करने की तो बात ही क्या है ? इसलिए तू गांधर्व-विधि से अपने को मुझे समर्पण कर, नहीं तो शाप देकर वंशसहित तेरे पिता को मैं भस्म कर दूंगा।" यह कहकर गरुड़ के ऊपर से नीचे उतरकर वह दोनों हाथ से उसका हाथ पकड़कर उस भयभीत लजीली और कांपती हुई कन्या को शय्या के पास लाया। इसके बाद बाकी रात में वात्स्यायन की कही हुई विधि के अनुसार उसका उपभोग करके दिन फटते फटते बिना किसी के जाने वह वहाँ से चला गया। इस प्रकार नित्य राज-कन्या का सेवन करते हुए उसका समय बीतने लगा।

एक समय कंचुकियों ने राज-कन्या के मूंगे के समान ओंठों को कटा हुआ देखकर एकांत में कहा, "अरे, देखो तो इस राजकन्या के शरीर के अंग पुरुष द्वारा भोगे जाते-जैसे दीख पड़ते हैं। इस सुरक्षित भवन में इस प्रकार की घटना कैसे घटी होगी। इसलिए हमें राजा को इसकी खबर दे देनी चाहिए।" इस प्रकार निश्चय करके सब एक-साथ होकर राजा से कहने लगे, "देव, हम नहीं जानते परन्तु राजकुमारी के सुरक्षित महल में कोई आदमी आता है, इस बात में आपकी आज्ञा ही प्रमाण है।" यह सुनकर अत्यन्त व्याकुल चित्त होकर राजा सोचने लगा;

"पुत्री पैदा हुई है इसी की बड़ी चिंता है। उसे किसे दिया जाय इसमें बड़ी बहस उठती है। दिए जाने पर उसे सुख मिलेगा या नहीं, यह भी नहीं जाना जाता। कष्ट का नाम ही कन्या का पिता होना है।

"नदियों और स्त्रियों में कूल (किनारा) और कुल समान होते हैं। नदियाँ पानी से किनारे गिरा देती हैं और स्त्रियाँ अपने दोषों से कुल को गिरा देती हैं।

और भी

"पैदा होते ही वह माता का मन हर लेती है, सम्बन्धी

> पविग्नता के साथ उसका लालन-पालन करते हैं । दूसरे को देने पर भी वे यश मलीन करती हैं; इसलिए लड़कियां पार न पाने लायक आफत का कारण बनती हैं।"

इस प्रकार बहुत चिंता करके अकेले में उसने रानी से कहा, "देवी ! कंचुकीगण क्या कहते हैं, उसकी खोज करो । जिस मनुष्य ने ऐसा किया है, उस पर काल कुपित है।" यह सुनकर व्याकुल होकर रानी ने जल्दी से राजकुमारी के महल में जाकर खंडित अधरों वाली तथा नाखून के निशान लगे अंगों वाली अपनी लड़की को देखा और कहा, "अरे पापिनी, कुल-कलंकिनी ! किसलिए तूने अपनी चाल खराब की ? जिसकी काल बाट जोह रहा है, ऐसा कौन पुरुष तेरे पास आता है ? होना था, सो तो हो गया, पर तू मुझसे अब ठीक-ठीक बात बता।" यह सुनकर शर्म से झुके मुख से राज-कन्या ने विष्णु-रूपी बुनकर का हाल बताया। यह सुनकर हँसते चेहरे तथा पुलकित अंगों वाली रानी ने जल्दी से जाकर राजा से कहा, "देव ! तुम्हें बधाई है। नित्य आधी रात को भगवान् नारायण कन्या के पास आते हैं । उन्होंने गांधर्व-विधि से उसके साथ विवाह किया है । इसलिए मैं और तुम रात्रि में खिड़की पर खड़े होकर उनका दर्शन करेंगे, क्योंकि वे मनुष्यों के साथ बातचीत नहीं करते।" यह सुनकर प्रसन्न-वदन राजा ने वह दिन, जैसे सौ वर्ष का हो, बड़ी मुश्किल से बिताया।

रात में रानी के साथ राजा आकाश की ओर आँखें गड़ाकर गुप्त रूप से खिड़की में खड़े हुए गरुड़ पर चढ़े शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में लिए तथा विष्णु के यथोक्त चिन्हों से युक्त उस बुनकर को आकाश से उतरते देखा। उस समय मानो अमृत के पूर में अपने को नहाता हुआ जानकर राजा अपनी रानी से कहने लगा, "प्रिये ! तुमसे और मुझसे बढ़कर कोई दूसरा धन्य नहीं है जिसकी संतति का भोग स्वयं नारायण करते हैं। इसलिए हमारे सब मनोरथ सिद्ध हो गए। अब जामाता के प्रभाव से सारी दुनिया हमारे वश में होगी।" इस प्रकार निश्चय करके वह सब सीमावर्ती राजाओं

के संबंध की मर्यादा तोड़ने लगा। इस तरह उसे मर्यादा उल्लंघन करते हुए देखकर सब राजाओं ने एक होकर उसके साथ लड़ाई छेड़ दी। ऐसे समय राजा ने रानी के मुंह से अपनी पुत्री को कहलवाया, "पुत्री! तेरी-ऐसी लड़की होते हुए भी सब राजे हमारे साथ लड़ाई करते हैं, यह क्या ठीक है? इसलिए तुझे अपने पति से कहना चाहिए, जिससे वह मेरे शत्रुओं का नाश करे।" इसके बाद राज-कन्या ने उस बुनकर से रात्रि में विनयपूर्वक कहा, "भगवन्, आपके दामाद होते हुए भी मेरे पिता शत्रुओं द्वारा हराये जायं, यह ठीक नहीं है। इसलिए कृपा करके आप सब शत्रुओं का नाश करिए।" बुनकर ने कहा, "तेरे पिता के ये शत्रु किस गिनती में हैं—तू भरोसा रख, क्षण-भर में सुदर्शन चक्र द्वारा सबको तिल-जैसे टुकड़े काटकर फेंक दूंगा।"

कुछ समय बीत जाने पर शत्रुओं ने सारा देश घेर लिया और राजा के कब्जे में केवल शहरपनाह बच गई। फिर भी विष्णु का रूप धारण करने वाला बुनकर है, यह न जानते हुए राजा रोज कपूर, अगर, कस्तूरी आदि विशिष्ट सुगंधित पदार्थों तथा अनेक प्रकार के वस्त्र, भोजन और पेय अपनी पुत्री द्वारा भेजकर उससे कहलाता था कि "भगवन्, सवेरे अवश्य ही किला टूट जायगा, क्योंकि घास और लकड़ी ख़त्म हो गई है तथा सब आदमी मार से घायल होकर लड़ाई लड़ने के काबिल नहीं रह गए हैं, और बहुत-से तो मर भी चुके हैं। यह जानकर अब जो आपको उचित लगे वैसा करिए।" यह सुनकर बुनकर भी सोचने लगा कि "किला अगर टूट गया तो इस राज-कन्या से मेरा वियोग हो जायगा। इसलिए गरुड़ के ऊपर चढ़ कर आयुधों सहित अगर मैं अपने को आकाश में दिखलाऊँ तो शायद मुझे वासुदेव मानकर शंका में पड़े शत्रुगण राजा के योद्धाओं द्वारा मारे जायं। कहा है कि

"बिना जहर के साँप को बड़ा फन फैलाना चाहिए, विष हो अथवा न हो, पर फन भयंकर जरूर लगता है।"

इस स्थान की रक्षा करते हुए अगर मेरी मृत्यु हो गई तो वह भी बहुत अच्छा ही होगा। कहा है कि

"गाय के लिए, ब्राह्मण के लिए, स्वामी के लिए, स्त्री के लिए अथवा अपनी जगह के लिए जो प्राण त्याग करता है उसे अक्षय-लोक प्राप्त होता है।

"चन्द्र-मंडल में स्थित सूर्य का राहु द्वारा ग्रहण होता है, शरणागत के साथ तेजस्वियों को विपत्ति भी श्लाघनीय होती है।"

इस प्रकार निश्चय करके सवेरे दातुन करने के बाद उसने राज-कुमारी से कहा, "सब शत्रुओं को खत्म करने के बाद ही मैं अन्न-जल ग्रहण करूँगा। बहुत क्या कहूँ, तेरा भोग भी मैं तभी करूँगा। तू अपने पिता से कहना कि सवेरे उसे अपनी सब सेना के साथ नगर के बाहर निकलकर युद्ध करना चाहिए, मैं आकाश में रहकर शत्रुओं को निस्तेज कर दूंगा। बाद में सुख से तुम उनका नाश करना। अगर मैं स्वयं ही उनका नाश करूँगा तो उन पापियों को स्वर्गीय गति मिलेगी, इसलिए तुम्हें ऐसा करना चाहिए कि वे भागते हुए मारे जायं और इससे स्वर्ग न जा सकें।" राज-कन्या ने यह सुन पिता के पास जाकर सब बातें कह दीं। उसकी बात में श्रद्धा करते हुए राजा भी सवेरे सुसज्जित सेना के साथ नगर के बाहर निकला। अपना मरण निश्चय करके बुनकर भी हाथ में धनुष लेकर और आकाशचारी गरुड़ पर चढ़कर युद्ध के लिए चल पड़ा।

उस समय भूत, भविष्य और वर्तमान के जानने वाले भगवान् नारायण ने जैसे ही गरुड़ का ध्यान किया कि वह फौरन आ पहुँचे। नारायण ने उससे हँसकर कहा कि "हे गरुड़! क्या तू जानता है कि लकड़ी के गरुड़ पर चढ़कर मेरा रूप धारण करके बुनकर राज-कन्या के साथ विहार करता है?" गरुड़ ने कहा, "मैं उसकी चालबाजी जानता हूँ। तो अब हमें क्या करना चाहिए।" भगवान् ने कहा, "मरने का निश्चय करके तथा प्रण करके आज वह बुनकर युद्ध के लिए निकला है। श्रेष्ठ क्षत्रियों के बाणों से घायल होकर उसे अवश्य

मौत मिलेगी। उसके मरने पर सब लोग कहेंगे कि वहुत-से क्षत्रियों ने मिलकर वासुदेव और गरुड़ को मार डाला। इसके बाद लोग हमारी-तुम्हारी पूजा न करेंगे। इसलिए तू जल्दी से लकड़ी के गरुड़ में घुस जा। मैं भी बुनकर के शरीर में प्रवेश करता हूं जिससे वह शत्रुओं का नाश करेगा। पीछे शत्रुओं का वध करने से हमारा माहात्म्य बढ़ेगा।" गरुड़ ने 'ऐसा ही हो' कहकर भगवान् की आज्ञा मान ली। इसके बाद भगवान् नारायण ने बुनकर के शरीर में प्रवेश किया। पीछे आकाश में स्थित तथा शंख, चक्र, गदा और धनुष से युक्त उस बुनकर ने भगवान् की कृपा से क्षण-भर में ही सब क्षत्रियों को निस्तेज बना दिया। बाद में सेना से घिरे हुए राजा ने सब शत्रुओं को हराकर उन्हें मार डाला। लोगों में यह प्रवाद चल निकला कि उस राजा ने अपने दामाद विष्णु के प्रभाव से सब क्षत्रियों को मार डाला है। उन क्षत्रियों को मरा देखकर प्रसन्न-चित्त बुनकर को आकाश से नीचे उतरते हुए राजा, आमात्य और नागरिकों ने नगरवासी बुनकर के रूप में देखा, और पूछा कि "यह क्या" उसने भी शुरू से लेकर पहले का सब हाल-चाल कहा। बाद में बुनकर के साहस से प्रसन्न तथा शत्रुओं के वध से प्रतापवान् राजा ने सब लोगों के सामने बुनकर को राज-कन्या विवाह-विधि से दे दी और कुछ देश भी दे दिया। बुनकर भी राज-कन्या के साथ मनुष्य-लोक में सारभूत पाँच प्रकार के विषय-सुखों का अनुभव करता हुआ समय बिताने लगा।

इसलिए कहने में आता है कि अच्छी रीति से नियोजित दंभ का पार ब्रह्मा भी नहीं पा सकते। बुनकर ने विष्णु का रूप धारण करके राज-कन्या का उपभोग किया।"

यह सुनकर करटक ने कहा, "यह ठीक है, पर मुझे इस बात का बड़ा डर है कि संजीवक बुद्धिमान है और सिंह भयंकर है। यद्यपि तुझमें बुद्धि की तीव्रता है फिर भी तू पिंगलक से संजीवक को अलग करने में असमर्थ है।" दमनक ने कहा, "भाई! मैं असमर्थ होते हुए भी समर्थ ही हूं।

कहा भी है —

"उपाय से जो काम हो सकता है, वह पराक्रम से नहीं किया जा सकता। कौई ने भी सोने की सिकड़ी से काले नाग का नाश करा दिया।

करटक ने कहा, "यह किस तरह ?" दमनक कहने लगा—

कौओं के जोड़े और काले नाग की कथा

किसी देश में एक बरगद के पेड़ पर कौए का एक जोड़ा रहता था। कौई के बच्चे देने के समय पेड़ के खोखले से निकलकर एक काला साँप हमेशा उसके बच्चों को खा जाया करता था। इससे दुखित होकर कौए और कौई ने एक दूसरे वृक्ष के नीचे रहने वाले अपने प्रिय मित्र सियार से कहा, "भद्र ! इस प्रकार की स्थिति में हमें क्या करना चाहिए ? यह दुष्टात्मा काला साँप वृक्ष के खोखले से निकलकर हमारे बच्चों को खा जाता है। उनको बचाने का कोई उपाय कीजिए।

"जिसका खेत नदी किनारे हो, जिसकी पत्नी दूसरे का साथ करती हो, और जिसका रहना सर्प वाले घर में हो. उसको सुख कैसे मिल सकता है ?

और भी

"सर्प वाले घर में रहने से मृत्यु में शक नहीं है। जिस गाँव के छोर पर सर्प रहता है, उस गाँव के रहने वालों को भी प्राणों का डर होता है।

इस तरह वहाँ रहते हुए प्रतिदिन हमारे प्राण का डर बना रहता है।" सियार ने कहा, "इस विषय में जरा भी विषाद न करो। यह बात ठीक है कि इस दुष्ट का वध बिना तरकीब के नहीं हो सकता।

"तरकीब से शत्रु पर जैसी जीत मिल सकती है, वैसी हथियारों से नहीं। उपाय जानने वाला अगर छोटा भी हो तो उसे शूरवीर हरा नहीं सकते।

और भी

"वड़ी, छोटी और मझले कद की मछलियां खाने के बाद अत्यन्त लालच से केकड़े को पकड़ने के कारण कोई वगला मारा गया।"

कौई ने कहा, "यह कैसे ?" सियार कहने लगा—

बगले और केकड़े की कथा

किसी देश में तरह-तरह के जलचरों से भरा हुआ एक वड़ा तालाव था। वहाँ रहने वाला एक वगला वूढ़ा हो जाने से मछलियाँ मारने में असमर्थ हो गया। इससे भूख के मारे रुँधे गले से तालाव के किनारे वैठकर वह जार-जार रोते हुए मोती की तरह अपने आँसुओं से जमीन भिगोने लगा। इतने में एक केकड़ा अनेक जलचरों के साथ उसके पास आकर और उसके दुःख से दुखी होकर कहने लगा, "मामा! आज तुम खाते क्यों नहीं? आँखों में आँसू भरकर साँस लेते हुए वैठे क्यों हो?" उसने कहा, "वत्स! तूने खूब भांपा। मैंने मछली खाने से वैराग्य के कारण आमरण अनशन किया है। इसीलिए मैं पास आई मछलियां नहीं खाता।" यह सुनकर केकड़े ने कहा, "आपके इस वैराग्य का क्या कारण है?" उसने कहा, "वत्स! मैं इसी तालाव में वड़ा हुआ। मैंने यह सुना है कि करीव वारह वर्ष यहाँ पानी नहीं वरसेगा।" केकड़े ने कहा, "तुमने यह कहां सुना?" वगला वोला, "ज्योतिषी के मुख से। शकट शनी, रोहिणी को भेदकर शुक्र और मंडाल के आगे वढ़ने वाले हैं। वराह मिहिर ने कहा है कि

"यदि शनीचर आकाश में रोहिणी शकट को भेद दे तो वारह वर्ष तक पृथ्वी पर इन्द्र पानी नहीं वरसाते।

और भी

"रोहिणी शकट के भेदे जाने के वाद, पृथ्वी मानों पाप करने के वाद भस्म और हड्डी के टुकड़ों से व्याप्त कापालिक व्रत धारण करती हुई लगती है।

और भी

"शनी, मंगल अथवा चन्द्र अगर रोहिणी शकट को भेद डालें तो

> अधिक क्या कहूँ, सारा जगत् अनिष्ट के समुद्र में छीजने लगता है।
> "रोहिणी को शकट में स्थित चन्द्रमा की शरण में जाने वाले मनुष्य अपने बच्चे पकाकर खाने वाले होते हैं और सूर्य की किरणों को पानी की तरह पीते हैं।

इस तालाब में थोड़ा ही पानी है, इसलिए यह जल्दी ही सूख जायगा। तालाब के सूख जाने पर जिनके साथ मैं बड़ा, सदा खेला, वे सब पानी के बिना मर जायंगे। उनका वियोग देखने में मैं असमर्थ हूँ, इसलिए मैंने यह प्रायोपवेशन (मृत्यु तक बिना भोजन का तप) किया है। आज छोटे तालाबों के सब जलचरों को उनके स्वजन बड़े जलाशयों में ले जा रहे हैं और मगर, गोह, शिशुमार, जलहाथी, इत्यादि प्राणी तो खुद चले जा रहे हैं। पर इस तालाब के जलचर तो पूरे निश्चित हैं, इस वजह से मैं और विशेष रूप से रो रहा हूँ, क्योंकि उनमें से एक का भी नाम-निशान न बचेगा।"

उसकी बातें सुनकर केकड़े ने दूसरे जलचरों से भी उसकी बात कही। वे सब मछली-कछुवे इत्यादि भयभीत होकर बगले के पास आकर पूछने लगे, "मामा, क्या कोई उपाय है जिससे हमारी रक्षा हो सकती है?" बगले ने कहा, "इस तालाब से थोड़ी दूर कमलों से सुशोभित और गहरे पानी से भरा हुआ एक तालाब है। वह चौबीस वर्ष पानी न बरसने पर भी नहीं सूख सकता। जो कोई मेरी पीठ पर चढ़ जाय मैं उसे वहां ले जाऊँगा।" उन सबका उस पर विश्वास हो गया "पिता, मामा, भाई" "पहले मैं" "पहले मैं" ऐसा चिल्लाते हुए उसे चारों ओर से जानवरों ने घेर लिया। बदनीयत बगला बारी-बारी से उन्हें पीठ पर चढ़ाकर, तालाब के पास ही एक चट्टान पर ले जाकर और उस पर उन्हें पटककर भर-पेट खाकर फिर तालाब में वापस आकर, तथा जलचरों को झूठी-सच्ची बातें सुनाकर उनका मनोरंजन करते हुए नित्य अपना आहार जारी रखने लगा। एक दिन केकड़े ने उससे कहा, "मामा! मेरे साथ तेरी पहले-पहले प्रेम-भरी बातें हुई, फिर तू मुझे छोड़कर क्यों दूसरे को ले जाता है? इसलिए, तू अभी मेरी जान बचा।" यह सुनकर उस बदनीयत बगले ने

सोचा, "मछली के मांस खाने से मैं बीमार हो गया हूं इसलिए इस केकड़े को पकवान की तरह काम में लाऊंगा।" यह सोचकर उस केकड़े को पीठपर चढ़ाकर वह उस जानमारू चट्टान की ओर चल पड़ा। केकड़े ने दूरसे ही चट्टान पर लगे हुए हड्डियों का पहाड़ देखकर और उन्हें मछलियों की हड्डियां जानकर उससे पूछा, "मामा! वह तालाव कितनी दूर है। मेरे बोझ से तुम वहुत थक गए हो, इसलिए वताओ।" यह भी मूर्ख जलचर है, यह मानकर तथा जमीन पर इसका प्रभाव नहीं चल सकता, यह जानकर वह हंसकर बोला, "अरे केकड़े! दूसरा तालाव नहीं है। यह तो मेरी रोजी है। इसलिए अपने इष्ट-देवता का स्मरण कर। तुझे भी मैं इस चट्टान पर पटककर खा जाऊंगा।" वगला यह कह ही रहा था कि इतने में केकड़े ने अपने दोनों आरों से कमल-ककड़े की तरह सफेद उसकी मुलायम गरदन पकड़ ली और वह मर गया। वाद में वह केकड़ा वगले की गरदन लेकर धीरे-धीरे उस तालाव पर आ पहुंचा। सव जलचरों ने उससे पूछा, "अरे केकड़े! तू कैसे लौट आया? मामा क्यों नहीं लौटे? तू जवाव देने में देर क्यों करता है? हम सारे उत्सुकतापूर्वक तेरी राह जोहते वैठे हैं।" इस तरह उनके कहने पर केकड़े ने भी हंसकर कहा, "अरे मूर्खो! वह झूठा सव जलचरों को धोखा देकर यहाँ से थोड़ी दूर चट्टान पर पटककर खा गया। मेरी जिंदगी वाकी थी इसलिए मैं उस दगावाज का मतलव जानकर उसकी यह गरदन लाया हूं। अव तुम्हें घवराने की जरूरत नहीं रही। आज से सव जलचरों का कल्याण होगा।"

इससे मैं कहता हूं कि वड़ी, मझली और छोटी वहुतसी मछलियों को खाने के वाद वड़े लालच से केकड़े को पकड़ने की वजह से एक वगला मारा गया। यह सुनने के वाद कौआ और कौई अपनी इच्छानुसार उड़ चले। उड़ते-उड़ते कौई एक तालाव के पास पहुंचकर देखती है कि किसी राजा की रानियां तट पर सोने की सिकड़ी, मोती के हार और गहने-कपड़े रखकर तालाव में जल-क्रीड़ा कर रही हैं। वह कौई सोने की एक सिकड़ी लेकर अपने घोंसले की तरफ उड़ी। उसे सिकड़ी ले जाते देख

कर कंचुकी और महल के रखवाले हाथ में डंडे लेकर जल्दी से उसके पीछे दौड़े। कौई साँप के खोल में सिकड़ी डालकर दूर उड़ गई। इतने में राज-कर्मचारियों ने पेड़ के ऊपर चढ़कर खोखले में देखा तो एक काला नाग अपना फन फैलाकर बैठा था। उसे डंडे की चोटों से मारकर सोने की सिकड़ी लेकर वे अपने गंतव्य स्थान पर चले गए। कौओं का जोड़ा भी उसके बाद सुख से रहने लगा।

इसलिए मैं कहता हूँ कि तरकीब से जो काम हो सकता है वह बहादुरी से नहीं हो सकता। कौई ने सोने की सिकड़ी से काले नाग को मरवाया।"

इसलिए बुद्धिमानों के लिए इस दुनिया में कोई चीज असाध्य नहीं है। कहा है कि

> "जिसके पास बुद्धि है उसीके पास बल है। बुद्धिहीन को बल कहाँ से हो सकता है ? वन में मतवाले सिंह का नाश खरगोश ने किया।"

करटक ने कहा, "यह किस तरह ?" दमनक कहने लगा—

सिंह और खरगोश की कथा

"किसी वन में भासुरक नाम का सिंह रहता था। बल की अति-शयता से वह प्रतिदिन हिरनों, खरगोशों इत्यादि को मारने में नहीं चूकता था। एक दिन उस वन के हिरन, सूअर, भैंसे, खरगोश इत्यादि सब पशुओं ने इकट्ठे होकर सिंह के पास जाकर कहा, "स्वामी ! हम सब जानवरों को रोज रोज मारने से क्या लाभ ? आपकी तृप्ति तो एक ही प्राणी से हो जाती है। इसलिए हमारे साथ आप एक ठहराव कीजिए। आज से यहीं बैठे-बैठे अपने पारी से हर जाति के पशु प्रतिदिन आपके खाने के लिए आ जायंगे। ऐसा करने से बिना किसी तकलीफ के आपकी रोजी चलती रहेगी और हमारा भी सर्वनाश नहीं होगा। इसलिए आप राज-धर्म का पालन कीजिए।

कहा भी है—

"जो राजा अपने बल के अनुसार दवा की तरह धीरे-धीरे राज्य का

भोग करता है वह खूब बलवान होता है।
"सूखी अरणी भी मंत्रयुक्त विधि से मथी जाय तो उसमें से आग निकलती है, उसी तरह जमीन रूखी होने पर भी राज्य-मंत्र से उसका मंथन किया जाय तो वह फल देने लगती है।
"प्रजा-पालन, यह प्रशंसनीय काम स्वर्ग देने वाला है और खजाना बढ़ाने वाला होता है। उसी तरह प्रजा-पीड़न धन का नाश करने वाला तथा पाप और अपयश देने वाला होता है।
"ग्वालों की तरह पृथ्वी-पालन करनेवाले राजाओं को, प्रजा-रूपी गाय का पालन-पोषण करके उसके धन-रूपी दूध को धीरे-धीरे दुहना चाहिए और उन्हें न्याय की वृत्ति सदा बरतनी चाहिए।
"जो राजा मोहवश होकर प्रजा को बकरी की तरह मारता है, उसकी एक ही बार तृप्ति होती है, दूसरी बार नहीं।
"जिस तरह माली अंकुरों की सेवा करता है, उसी प्रकार फल चाहने वाले राजा को दान, मान, पानी आदि से प्रयत्नपूर्वक प्रजा का पालन करना चाहिए।
"राजा-रूपी दीपक अपने अन्दर के उज्ज्वल गुणों (गुण, बत्ती) द्वारा प्रजा के पास धन-रूपी तेल ग्रहण करता है। पर यह बात किसी के नजर नहीं आती।
"जिस तरह गाय पहले पाली जाती है तथा समय आने पर दुही जाती है तथा फूल-फल देने वाली लता जैसे सींची जाती है और यथासमय चुनी जाती है, उसी प्रकार प्रजा के बारे में भी समझना चाहिए।
"यत्नपूर्वक रक्षित सूक्ष्म बीजांकुर भी जैसे यथासमय फल देता है, उसी प्रकार सुरक्षित प्रजा भी फल देती है।
"राजा के पास सोना, अनाज तथा रत्न, तरह-तरह की सवारियाँ तथा और भी जो कोई वस्तु होती है, वह प्रजा से मिली होती है।
"प्रजा के ऊपर अनुग्रह करने वाले राजे बढ़ते हैं और प्रजा को

छिजाने वाले राजे छीजते हैं, इसमें कोई शक नहीं।"

उन पशुओं की बातें सुनकर भासुरक ने कहा, "तुम सच कहते हो। पर अगर मेरे यहाँ बैठे रहते रोज मेरे पास एक जानवर नहीं आया तो निश्चय ही मैं सबको मार खाऊँगा।" सब पशु 'यही होगा' यह प्रतिज्ञा करके और बे-फिक्र होकर वे वन में निडर होकर फिरने लगे। हर दिन अपनी बारी पर एक जानवर सिंह के पास जाता था। इनमें से अगर कोई बूढ़ा, वैरागी, शोक-मग्न अथवा पुत्र और स्त्री के नाश से डरा होता था, तो वह दोपहर को सिंह के पास उसका भोजन बनकर हाजिर होता था।

एक समय जाति की बारी के अनुसार एक खरगोश की बारी आई। सब पशुओं के जोर देने पर भी व्याकुल हृदय से धीरे-धीरे चलते-चलते सिंह के मारने का उपाय सोचते हुए उसने एक कुआँ देखा। कुएँ पर जाकर उसने पानी में अपनी परछाईं देखी। उसे देखकर उसने सोचा, 'यह बड़ी अच्छी तरकीब है। मैं अपनी बुद्धि से भासुरक को गुस्सा दिलाकर इस कुएँ में गिरा दूंगा।' इसके बाद थोड़े दिन रहते वह भासुरक के पास जा पहुँचा। समय बीत जाने पर भूख से तड़पते गले वाले क्रोधित सिंह ने जीभ से अपने होठों के कोनों को चाटते हुए सोचा, 'ठीक सवेरे मैं भोजन के लिए वन को निर्जीव बना दूंगा।' उसके इतना सोचते-सोचते ही धीरे-धीरे खरगोश जाकर उसे प्रणाम करके आगे खड़ा हो गया। क्रोधित भासुरक ने उसको झिड़कते हुए कहा, "अरे नीच खरगोश! एक तो तू छोटे शरीर वाला है और दूसरे देर करके आया है, इसलिए तेरे इस अपराध के कारण तुझे मारकर सवेरे सब पशुओं को मार डालूंगा।" खरगोश ने विनय के साथ जवाब दिया, "इसमें न तो मेरा अपराध है, न दूसरे जीवों का; देर होने की वजह तो आप सुनिए।" सिंह ने कहा, "जल्दी से कह, इसके पहले कि तू मेरे दाँतों के बीच न समा जाय।" खरगोश ने कहा, "स्वामी! जाति की बारी से मुझे छोटा निवाला जानकर सब पशुओं ने मिलकर मुझे पाँच खरगोशों के साथ भेजा था। बाद में जब मैं आ रहा था तो बीच में एक दूसरे सिंह ने अपनी माँद से निकलकर हमसे कहा, "क्यों रे! तुम

सब कहाँ जा रहे हो ? अब अपने इष्ट देवता को याद करो !" इस पर मैंने उससे कहा, "हम सब अपने मालिक भासुरक सिंह के पास वायदे के अनुसार निवाले बनकर जा रहे हैं।" इस पर उसने कहा, "अगर ऐसी बात है तो मेरा यह सारा जंगल है, इसलिए सब जानवरों को मेरे साथ ही ठहराव करना चाहिए। भासुरक तो चोर है। अगर वह राजा है तो दिलजमई के लिए चार खरगोशों को यहाँ धरकर भासुरक को बुलाकर जल्दी यहाँ आ, जिससे हम दोनों में ताकत से जो राजा होगा, वह इन सबको खा सकेगा।" इसलिए उसकी आज्ञा पाने पर मैं आप के पास आया हूँ। देर होने का यही सबब है। इस बारे में आप की आज्ञा ही प्रधान है।" यह सुनकर भासुरक ने कहा, "भद्र, अगर यह बात है तो जल्दी से मुझे तू उस चोर सिंह को दिखला जिससे पशुओं पर का गुस्सा मैं उस पर उतारकर चंगा बन जाऊँ।" कहा है कि

"जमीन, दोस्त और सोना, लड़ाई के ये तीन कारण हैं, इन तीनों में से एक के न होने पर कोई लड़ाई नहीं करता।

"जहाँ बड़े फल की आशा नहीं है, पर जहाँ हार है, ऐसी जगह बुद्धिमान उभारकर लड़ाई-झगड़ा मोल नहीं लेते।"

खरगोश ने कहा, "स्वामी! यह बात सत्य है। अपनी जमीन के लिए अथवा अपनी बे-इज्जती होने पर क्षत्रिय लड़ाई लड़ते हैं। पर वह किले में रहने वाला है, वहीं से निकलकर उसने मुझे छेंका था। किले में रहने वाला कष्ट-साध्य हो जाता है।

कहा है कि

"हजार हाथियों से और लाख घोड़ों से लड़ाई में राजाओं का जो काम ठीक नहीं उतरता, वह केवल एक किले से सिद्ध हो जाता है।

"शहरपनाह पर खड़ा एक तीरंदाज सौ आदमियों को रोक सकता है। इसलिए नीति-शास्त्र भी कुशल किले की प्रशंसा करते हैं।

"पूर्वकाल में हिरण्यकशिपु के डर से, बृहस्पति की आज्ञा से, विश्वकर्मा के प्रभाव से इन्द्र ने किला बाँधा था ।

"और उन्होंने ही कह दिया कि जिस राजा के पास किला होगा, वह राजा विजयी होगा । इसलिए दुनिया में हजारों किले बन गए ।

"दाँत के बिना सर्प, मद के बिना हाथी जैसे सबके वश में हो जाता है, उसी तरह किले के बिना राजा को भी समझना चाहिए ।"

यह सुनकर भासुरक ने कहा, "किले में रहते हुए भी उस चोर सिंह को तू मुझे दिखा, जिससे मैं उसे मार डालूं । कहा है कि

"जो मनुष्य शत्रु और रोग को जनमते ही दबा नहीं देता, तो उसके महा बलवान होने पर भी वही शत्रु और रोग बढ़कर उसका नाश कर देते हैं ।

उसी तरह

"अपना भला चाहने वाला उभड़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करता; शिष्ट पुरुष बढ़ते रोग और बढ़ते शत्रु को एक समान मानते हैं । बेपरवाही से अहमन्य पुरुषों द्वारा उपेक्षित कमजोर दुश्मन भी पहले साध्य होते हुए भी बीमारी की तरह बाद में असाध्य हो जाता है ।

और भी

"अपना बल ध्यान में रखकर जो मान और उत्साह बढ़ाता है वह अकेला होने पर भी, परशुराम की तरह, शत्रुओं का नाश करता है ।"

खरगोश ने कहा, "ऐसा होने पर भी मैंने उस बलवान को देखा है । इसलिए स्वामी को बिना उसका बल जाने जाना ठीक नहीं है । कहा भी है —

"अपना तथा अपने शत्रु का बल बिना जाने जो लड़ाई में सामने आता है, वह आग में पतिंगे की तरह नष्ट हो जाता है ।

"जो अपने ही वल से उन्नत शत्रु को मारने उत्साह से जाता है,
वह वलवान होने पर भी मदरहित होकर, टूटे दांत वाले हाथी
की तरह पीछे भागता है।"

भासुरक ने कहा, "तुझे इन वातों से क्या काम ? उस किले-वन्द को तू मुझे दिखा।" खरगोश वोला, "अगर ऐसी वात है तो आप मेरे साथ चलिए।" यह कहकर वह आगे हो लिया। वाद में आते समय उसने जो कुंआ देखा था, उसके पास पहुँचकर उसने भासुरक से कहा, "स्वामी ! आपका तेज सहने में कौन समर्थ है ? आपको दूर से ही देखकर वह चोर सिंह अपने किले में घुस गया है। आप आइए तो मैं दिखलाऊँ।" भासुरक ने कहा, "मुझे किला दिखला।" उसने उसे कुंआ दिखला दिया। कुंए के पानी में अपनी परछाईं देखकर मूर्ख सिंह गरजा, जिसकी गूंज से कुंए के वीच से दुगुनी आवाज उठी। उसे अपना शत्रु मानकर स्वयं उसके ऊपर कूदकर उसने अपने प्राण गंवा दिए।

इसीलिए मैं कहता हूँ —"जिसकी वुद्धि है उसका वल है। तो जो तू कहे तो मैं वहाँ जाकर अपनी चतुराई से दोनों की मित्रता तोड़ दूँ।" करटक ने कहा, "भद्र ! अगर ऐसी वात है तो तू जा। तेरा रास्ता सुख से कटे। तू अपनी इच्छानुसार कर।"

वाद में संजीवक से अलग पिंगलक को अकेले में पाकर दमनक उसे प्रणाम करके आगे वैठ गया। पिंगलक ने उससे कहा, "भद्र ! क्यों वहुत दिनों से तू दीख नहीं पड़ा ?" दमनक ने कहा, "महाराज को हमारी कोई जरूरत नहीं है, इसीलिए हम नहीं आते। फिर भी राज-काज खराव होते देखकर जलते दिल से व्याकुल होकर मैं स्वयं यहाँ कहने आया हूँ।

कहा भी है —

"जिसकी हार न चाही जाय उससे शुभ या अशुभ, प्रिय
अथवा अप्रिय वात विना पूछे भी कहनी चाहिए।"

उसकी यह मतलव-भरी वात सुनकर पिंगलक ने कहा, "तुझे क्या कहना है ? जो कहना हो कह।" दमनक ने कहा, "देव! संजीवक आपसे

दुश्मनी रखता है। मुझे अपना विश्वासपात्र समझकर उसने मुझसे अकेले में कहा, "मैंने इस पिंगलक की मजबूती और कमजोरी देख ली है, इसलिए मैं उसे मारकर सब पशुओं का राजा बनकर तुझे मंत्री का पद दूंगा।" वज्राघात समान भयंकर बात सुनकर पिंगलक के होश उड़ गए और वह कुछ बोला नहीं। दमनक भी उसकी सूरत देखकर सोचने लगा, "इसका संजीवक के ऊपर गहरा प्रेम है। इस मंत्री से राजा का अवश्य विनाश होगा।"

कहा भी है—

"राजा अगर एक ही मंत्री को राज्य में प्रमाणभूत मानता है तो वह शान के मारे मदमत्त हो जाता है, और उस मद के कारण वह सेवा-भाव छोड़ देता है। ऐसी विरक्ति से स्वतंत्र होने की इच्छा अपने पैर फैलाने लगती है, और स्वतंत्रता का नतीजा यह होता है कि वह राजा की प्राणपण से बुराई करता है।"

"तो यहां क्या करना चाहिए?" पिंगलक ने भी धीरे-धीरे होश में आकर उससे कहा, "संजीवक तो मेरी जान के समान सेवक है। वह मेरे प्रति द्रोह-बुद्धि कैसे कर सकता है?" दमनक ने कहा, "इस बारे में सेवक और असेवक का कोई एकांत नियम नहीं है। कहा भी है —

"ऐसा कोई आदमी नहीं है जो राजलक्ष्मी न चाहता हो। केवल कमजोर ही हर जगह राजा की सेवा करते हैं।"

पिंगलक ने कहा, "भद्र! फिर भी मेरा मन उसके संबंध में शक नहीं करता। अथवा ठीक ही कहा है कि

"अपनी देह अनेक दोषों से दूषित होते हुए भी किसे प्रिय नहीं लगती? जो प्रिय है वह अप्रिय काम करते हुए भी प्रिय ही रहता है।"

दमनक ने कहा, "यही तो दोष है। कहा है कि

"जिसके ऊपर राजा अपनी अधिक नजर रखते हैं, वह पुरुष कुलवान् न होने पर भी धन पाने का हकदार होता है।

किस विशेष गुण से स्वामी निर्गुण संजीवक को अपने पास रखते हैं?

यदि आप ऐसा सोचते हों कि वह वड़े शरीर वाला है, इसके द्वारा मैं शत्रुओं का नाश करवाऊँगा, तो यह वात भी उससे होने की नहीं, क्योंकि वह तो घास-खोर है और महाराजा के शत्रु मांस-भोजी हैं। इसलिए इसकी सहायता से शत्रु पर विजय भी नहीं पाई जा सकती। इसे अव दोषी वनाकर मार डालिए।" पिंगलक ने कहा—

"पहले सभा में जिसके वारे में 'यह गुणवान है' ऐसी प्रशंसा की हो, उसका दोष अपनी प्रतिज्ञा-भंग से डरने वाला मनुष्य नहीं कहता।

फिर मैंने तेरी वात मानकर उसे अभयदान दिया है, फिर स्वयं मैं ही उसे किस तरह मारूँ? संजीवक मेरा पूरा मित्र है और उसके प्रति मेरा कोई रोष नहीं है। कहा है कि

"अगर मुझसे दैत्य ने भी सम्पत्ति प्राप्त की हो तो मेरे द्वारा वह मारे जाने योग्य नहीं है। विषैले पेड़ का भी पालन करने के वाद उसे अपने हाथ से काट डालना ठीक नहीं है।

"पहले तो धन चाहने वालों के प्रति कृपा नहीं करनी चाहिए, पर ऐसा करने पर तो हरदम उनकी परवरिश करनी चाहिए।

"एक वार ऊंचे चढ़ाकर फिर नीचे गिराने वाली वस्तु मनुष्य के लिए लज्जाजनक होती है, पर जमीन पर रहने वालों को तो गिरने का भय ही नहीं है।

"उपकारियों के प्रति जो सावुता दिखलाता है, उसकी साधुता में कौनसा गुण है। अपकारियों के प्रति जो साधु है, भले आदमी उसे ही सावु कहते हैं।

फिर संजीवक अगर मेरे प्रति द्रोह-वुद्धि रखता है तो भी उसके विरुद्ध मुझे कुछ न करना चाहिए।" दमनक ने कहा, "दुश्मन को माफ करना, यह धर्म नहीं है। कहा है कि

"समान धन वाले, समान वल वाले, मर्म स्थान जानने वाले, उद्योगी तथा आधा राज हरण करने वाले को कोई मारता नहीं, उसका

स्वयं मारा जाता है।

फिर आपने तो उसकी मित्रता में सब राज-धर्म छोड़ दिया है और उसके अभाव में सेवक-गण उदास हो गए हैं। वह संजीवक घास-खोर है तथा आप और आपके सेवक मांस-खोर। अगर आपने अहिंसा का व्रत ले लिया है तो उन्हें मांस खाने को कहाँ मिलेगा? मांसाहार के अभाव में वे आपको छोड़कर भाग जायंगे और इससे आप भी नष्ट हो जाएंगे। फिर संजीवक की मित्रता से आपको कभी भी शिकार खेलने का विचार न होगा। कहा भी है—

"जैसे भृत्य सेवा करते हैं वैसा ही मनुष्य हो जाता है, इसमें कोई शक नहीं।

और भी

"तपे लोहे पर पड़े पानी का नाम भी नहीं रह जाता। वही पानी कमल के पत्ते के ऊपर पड़कर मोती जैसा आकार धारण कर शोभा पाता है। वही पानी स्वाति नक्षत्र में समुद्र में पड़ी सीपियों के कोख में पड़कर मोती बनता है; प्रायः उत्तम मध्यम और अधम सहवास से पैदा होते हैं।

और भी

"दुष्टों के संग-दोष से साधु भी दूषित होते हैं। दुर्योधन के साथ भीष्म भी गाय चुराने गए थे, इसीलिए अच्छे आदमी नीचों का संग नहीं करते।

अतएव अच्छे लोग नीचों का संग करना मना करते हैं। कहा भी है—अज्ञात शील वाले को आश्रय नहीं देना चाहिए। खटमल के दोष से मंदविसर्पिणी जूं मारी गई।" पिंगलक ने कहा, "यह कैसे?" दमनक कहने लगा —

जूं और खटमल की कथा

"किसी देश में एक राजा के पास एक सुन्दर सोने का कमरा था।

वहां दो सफेद रेशमी कपड़ों के बीच में पड़ी हुई मन्दविसर्पिणी नाम की एक सफेद जूं रहती थी। वह उस राजा का खून चूसती हुई सुख से अपना समय विताती थी। एक दिन उस सोने के कमरे में कहीं से घूमता हुआ अग्निमुख नामका एक खटमल आ गया। उसे देखकर दुखी होकर उस जूं ने कहा, "हे अग्निमुख, तुम इस अनुचित जगह में कैसे आ गए, इसके पहले कि कोई जाने-कहे, तुम फौरन यहाँ से भाग जाओ।" उसने कहा, "अगर वदमाश भी अपने घर आया हो तो उससे ऐसा नहीं कहना चाहिए।

कहा भी है—

'आइए', 'पधारिए', 'आराम कीजिए', 'यह वैठनें की जगह है' 'वहुत-वहुत दिनों के वाद क्यों दिखायी दिए ?' 'क्या हाल है ?' 'आप वहुत कम दीख पड़ते हैं,' 'कुशल तो है न ?' 'आपके दर्शन से मैं प्रसन्न हूं'—अपने घर नीच के आने पर भी उसको भले आदमी हमेशा इस भांति आवभगत करते हैं। गृहस्थी के इस धर्म को स्मृतिकार थोड़ें में स्वर्ग ले जाने वाला कहते हैं।

मैंने खाने की खरावी से तीखे, कड़वे, और कसैले और खट्टे, अनेक तरह के खूनों को चखा है। पर मीठा लहू आज तक मैंने नहीं चखा। अगर तू मेरे ऊपर कृपा करे तो तरह-तरह के अन्न-पान, चूसने और चाटने वाले पदार्थ तथा जायकेदार खाने से जो इस राजा के शरीर में मीठा लहू पैदा हुआ है, उसे चखकर अपनी जीभ का आनन्द पाऊं। कहा भी है—

"गरीव तथा राजा दोनों के लिए ही जीभ का सुख एक-सा है। इसी को तत्व की वात कहा गया है, और इसी के लिए सारी दुनिया कोशिश करती है।

"अगर इस संसार में जीभ को संतोष देनें का काम न होता तो कोई किसी का सेवक, और कोई किसी के वश का न होता।

"मनुष्य झूठ वोलता है, अथवा असेव्य की सेवा करता है तथा विदेश जाता है, यह सव काम पेट के लिए ही है।

तो फिर तेरे घर आये हुए भूख से पीड़ित मुझे तुझसे भोजन

मिलना चाहिए। तू अकेली इस जगह राजा का खून चूसे, यह ठीक नहीं है।" यह सुनकर मंदविसर्पिणी ने कहा, "अरे खटमल! यह राजा जब सो जाता है तो मैं इसका खून चूसती हूं। पर तू तो अगियाने वाला और चपल है। अगर तू मेरे साथ खून पीना चाहता है तो ठहर और मनचाहा लहू चूस।" खटमल बोला, "भगवति! मैं ऐसा ही करूंगा, जब तक तू राजा का लहू न चख लेगी, तब तक अगर मैं उसे चखूं तो मुझे देवता और गुरु की कसम है।"

वे इस तरह बात कर रहे थे कि राजा अपनी खाट में आकर सो गया। बाद में उस खटमल ने जीभ के लालच से राजा के जागते रहने पर भी उसे काटा। अथवा ठीक ही कहा है कि

"उपदेश देने पर भी स्वभाव बदला नहीं जा सकता, अच्छी तरह गरम किया हुआ पानी भी फिर ठंडा हो जाता है। आग अगर ठंडी हो जाय और चन्द्रमा गरम हो जाय, फिर भी इस दुनिया में मनुष्यों का स्वभाव बदला नहीं जा सकता।"

इस पर वह राजा, मानो सुई की नोक से बिंधने के समान अपनी खाट छोड़कर फौरन उठ खड़ा हुआ। 'अरे, इसका पता लगाओ कि इस चादर में खटमल है या जूं है, जिसने मुझे काटा है।' जो कंचुकी वहां थे, उन्होंने जल्दी से चादर लेकर उसकी बड़ी बारीकी से जांच-पड़ताल शुरू कर दी। उसी समय फुर्तीला होने से खटमल खाट के संध में घुस गया, पर मन्द-विसर्पिणी कपड़े के जोड़ में दिखलाई दे गई और मार दी गई। इसीलिए मैं कहता हूं कि अज्ञात शील वाले को आश्रय नहीं देना चाहिए; खटमल के दोष से मन्दविसर्पिणी जूं मारी गई।

यह जानकर आप संजीवक को मार डालिए, नहीं तो वह आपको मार डालेगा। कहा भी है—

"जो अपने भीतरियों को बाहर निकाल देता है और बाहरियों को विश्वासी बनाता है, वह राजा ककुद्रुम की तरह मृत्यु पाता है।"

पिंगलक ने कहा, "वह कैसे ?" दमनक ने कहा—

नील के बरतन में गिरे हुए सियार की कथा

"किसी जंगली प्रदेश में चंडरव नाम का सियार रहता था। एक समय भूख से व्याकुल होकर वह जीभ के लालच से नगर में घुस गया। उसे देखकर चारों ओर से कुत्ते दौड़कर भोंकते हुए उसके शरीर में दांत गड़ाकर उसे काटने लगे। उनसे काटे जाने पर वह सियार अपनी जान बचाने के लिए पास ही में एक रंगरेज के घर में घुस गया। वहां नील के रंग से भरा हुआ एक बड़ा भारी बरतन तैयार था। कुत्तों से पिछियाए जाने पर वह उसी बरतन में गिर पड़ा। जब वह उसके बाहर निकला तो वह नीले रंग का हो गया था। दूसरे कुत्ते जो वहां पर थे,उसे सियार न मानकर अपनी मनचाही दिशा को चले गए। चंडरव भी दूर देश में जाकर फिर वहां से जंगल की तरफ चल दिया।

नील अपना रंग कभी नहीं छोड़ती। कहा भी है—

"सहरेस की, मूर्ख की, स्त्रियों की, केकड़े की, मछलियों की, नील की और शराब पीने वाले की पकड़ एक ही होती है।"

महादेव के कंठ में विष जैसे रंग वाले तथा तमाल वृक्ष जैसी कांति वाले उस जीव को देखकर सिंह, बाघ तथा भेड़िये इत्यादि वनचर डर से घबरा कर फौरन इधर-उधर भागने लगे और कहने लगे, "इसका स्वभाव और बल क्या है, इसका हमें पता नहीं, इसलिए हमें दूर भागना चाहिए।"

कहा भी है—

"जिसकी चेष्टा, कुल तथा बल जानने में न आया हो उसका विश्वास अपना कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान को नहीं करना चाहिए।"

चंडरव ने भी इन जानवरों को घबराया जानकर कहा, "अरे जानवरो तुम सब क्यों मुझे देखते ही डरकर भाग रहे हो ? डरो मत। ब्रह्मा ने खुद मुझे बनाकर कहा है, 'जानवरों के बीच कोई राजा नहीं है, इसलिए

मैंने आज तेरा सब वन-पशुओं के राजा की तरह अभिषेक किया। इसलिए तू जाकर सबको पाल-पोस।' इसलिए मैं यहां आया हूं। सब पशुओं को मेरी छत्र-छाया में रहना चाहिए। तीनों लोक के पशुओं का मैं ककुद्रुम नाम का राजा हुआ हूं।" यह सुनकर सिंह, बाघ आदि वन-पशु 'स्वामी', 'प्रभो,' 'आज्ञा दीजिए', यह कहते हुए उसे चारों ओर से घेरकर बैठ गए। उसने सिंह को मंत्री, बाघ को सेजपाल, और चीते को राजा की पान-सुपारी का अधिकारी और भेड़िए को दरबान बनाया। उसके जितने सगे सियार थे, उनके साथ वह बातचीत भी नहीं करता था। गरदनिया देकर सब सियार बाहर निकाल दिये गए। इस तरह राज-काज चलाते हुए उसके सामने सिंह इत्यादि हिंस्रक पशु दूसरे पशुओं को लाते थे और वह भी राज-धर्म के अनुसार उन्हें सबमें बांट देता था।

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर एक बार ककुद्रुम ने दूर से भोंकते हुए सियारों को सुना। उनकी आवाज सुनकर उसके शरीर के रोएं खड़े हो गए, आंख में आनन्द के आंसू भर आये और वह ऊंचे स्वर से रोने लगा। इतने में सिंह वगैरह ने उसका ऊंचा स्वर सुनकर, और वह सियार है, यह जानकर शरम से थोड़ी देर नीचा मुंह करके पीछे कहा कि 'अरे! इसने हम सबको ठगा है। यह तो एक छोटा सियार है, इसे मारो।' ऐसा सुनते ही वह भागना ही चाहता था कि इतने में सिंह वगैरह ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और वह मर गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि भीतरियों को जो बाहर निकाल देता है और अजनबियों को विश्वासी बनाता है, वह राजा ककुद्रुम की तरह मृत्यु पाता है।"

यह सुनकर पिंगलक ने कहा, "यदि यह संजीवक मेरे प्रति बुरी नीयत रखता है तो इसकी खातिरी मुझे कैसे हो?" दमनक ने कहा, "आज ही मेरे सामने उसने निश्चय किया है कि 'सबेरे मैं पिंगलक को मारूंगा।' यही इस बात की खातिरी है।" सबेरे सभा में समय लाल आंखें और फड़कते होंठों के साथ चारों ओर देखते हुए अनुचित जगह पर बैठकर

आपकी तरफ कड़ी निगाह से देखेगा। यह जानकर जैसा उचित हो आप करिएगा।"

यह कहकर दमनक संजीवक के पास पहुंचा और उसे प्रणाम करके बैठ गया। संजीवक ने भी उसे अनमने और धीरे-धीरे आते हुए देखकर कहा, "मित्र ! तुम्हारा स्वागत है। बहुत दिनों के बाद तुम दिखलाई दिए। तुम कुशल से तो हो ? अगर तुम कहो तो जो न देने लायक वस्तु भी होगी उसे भी तुम्हें मैं अपने घर आने की वजह से दूंगा। कहा भी है—

"जिनके घर काम के लिए मित्रजन आते हैं वे इस पृथ्वी में धन्य हैं, बुद्धिमान हैं और प्रशंसा के पात्र हैं।"

दमनक ने कहा, "अरे, नौकरों की कुशल ही क्या ?

"जो राजा के नौकर हैं उनकी दौलत पराधीन होती है, उनका मन हमेशा चितातुर होता है और उनको अपने जीने के बारे में भी विश्वास नहीं होता।

और भी

"धन चाहने वाले सेवकों ने जो किया है उसे तो देखो। शरीर की जो स्वतंत्रता है वह भी इन मूर्खों ने गँवा दी है।

"पहले तो पैदा होना ही बड़ा तकलीफदेह है, फिर उसमें सदा की गरीबी भी दुःख देने वाली है। और उसमें भी सेवा की रोजी, यह भी दुःखकारक है। अहो ! संसार में यह दुःख की परम्परा है।

"गरीब, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और नित्य सेवा करने वाला, ये पांचों महाभारत में जीते हुए भी मरे कहे गए हैं।

"वह अपने मन से भोजन नहीं कर सकता है, चिंता के कारण उसकी नींद उड़ गई है, ऐसे को उठाने की जरूरत नहीं पड़ती, वह बेधड़क होकर बातें नहीं कर सकता ; ऐसा सेवक भी संसार में जीता है।

"'सेवा कुत्तों की वृत्ति है', जिसने यह कहा है उसने झूठ कहा है क्योंकि कुत्ता अपनी तबीयत से घूमता है जब कि सेवक दूसरे

की आज्ञा से चलता है।

"जमीन पर सोना, ब्रह्मचर्य, पतलापन और हल्का खाना, ये वस्तुएं सेवक और यति के लिए समान हैं।

"पर इन दोनों के बीच में फर्क पाप और धन का है (अर्थात् सेवक के लिए ये वस्तुएं पाप-स्वरूप हैं और यति के लिए धर्मस्वरूप)।

"ठंड, धूप, इत्यादि जिन तकलीफों को सेवक धन के लिए सहता है, अगर यह कष्ट वह थोड़ी मात्रा में भी सहे तो उसे मोक्ष मिल सकता है।

"मुलायम, सुडौल, मीठा और ललचौवा लड्डू भी अगर सेवा से मिला हो तो उसकी क्या खूबी!"

संजीवक ने कहा, "तू कहना क्या चाहता है?" दमनक ने कहा, "स्वामी का भेद बतलाना मंत्रियों के लिए ठीक नहीं। कहा है कि

"मंत्रिपद पर प्रतिष्ठित जो मनुष्य स्वामी का भेद खोलता है, वह राजा का काम खराब करके स्वयं नरक में पड़ता है।

नारद ने कहा है कि 'जो मंत्री अपने राजा का भेद खोलता है उसे बिना हथियार के ही मार डालना चाहिए।'

फिर भी मैंने तुम्हारे स्नेह-बंधन में बंधकर भेद खोल दिया है, क्योंकि तुम मेरी ही बात से राजकुल में घुसे हो और विश्वसनीय हुए हो। कहा भी है—

"विश्वास करने से जो आदमी किसी तरह से मारा जाता है उसकी हत्या उस विश्वास से ही पैदा होती है।' (अर्थात् जिस मनुष्य का विश्वास किया गया हो उसे ही वह पाप लगता है) ऐसा मनु ने कहा है।

पिंगलक की तुम्हारे ऊपर बुरी नीयत है। आज उसने मुझसे अकेले में कहा था कि सवेरे संजीवक को मारकर मैं सब पशुओं को तृप्त करूंगा। मैंने उससे कहा, "स्वामी, मित्र-द्रोह करके अपनी रोजी चलानी, यह ठीक

नहीं है।

कहा है कि

"ब्राह्मण के मारने पर भी प्रायश्चित्त करके शुद्धि हो जाती है पर मित्र का द्रोह करने वाले मनुष्य की कभी शुद्धि नहीं होती।

इस पर उसने क्रोधित होकर मुझसे कहा, 'अरे दुष्ट-बुद्धि! संजीवक तो घास-खोर है और हम सब मांस-खोर हैं, इसलिए हमारे बीच तो स्वाभाविक वैर है। शत्रु की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? इसलिए साम आदि उपायों से उसका नाश करना चाहिए। उसके मारने का दोष नहीं लगेगा। कहा भी है—

"दूसरे उपायों से अगर शत्रु को मारना मुश्किल हो तो बुद्धिमान मनुष्य को अपनी कन्या देकर उसे मारना चाहिए। शत्रु-वध में कोई दोष नहीं।

"बुद्धिमान क्षत्रिय युद्ध में बुरा-भला नहीं मानते। प्राचीन काल में द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने ऊंघते हुए धृष्टद्युम्न को मारा था।"

पिंगलक का यह निश्चय जानकर मैं तुम्हारे पास आया हूं। इसलिए मुझे धोखा देने का पाप नहीं लग सकता। मैंने तुम्हें भेद की बात बतला दी। अब तुम्हें जैसे अच्छा लगे करो।" संजीवक उस बिजली गिरने जैसी बात को सुनकर बेहोश हो गया। होश आने पर वैराग्य के साथ उसने कहा, "अरे ठीक ही कहा है कि

"स्त्रियां अधिकतर बदमाशों का साथ करती हैं; राजा अधिकतर बिना प्रेम के होता है; धन प्रायः कंजूस को मिलता है तथा बादल पहाड़ तथा दुर्गम स्थानों में ही अधिक बरसता है।

"जो बेवकूफ 'मैं राजा का मान्य हूं', ऐसा मानता है, उसे बिना सींग का बैल जानना चाहिए।

"मनुष्य के लिए जंगल में रहना ठीक है, भीख मांगना भी ठीक है, बोझ ढोकर रोजी चलाना भी ठीक है, व्याधि भी ठीक है पर राज्याधिकार से सम्पत्ति मिलना ठीक नहीं है।

मैंने जो इस पिंगलक के साथ मित्रता की वह मैंने ठीक नहीं किया। कहा है कि

"समान धन और समान कुल वालों के बीच मित्रता और विवाह ठीक लगता है ; मजबूतों और कमजोरों के बीच ये बातें ठीक नहीं ।

और भी

"पशुओं की पशुओं के साथ, बैलों की बैलों के साथ, घोड़ों की घोड़ों के साथ, मूर्खों की मूर्खों के साथ और बुद्धिमानों की बुद्धिमानों के साथ मित्रता होती है; समान शील और रुचि वाले मनुष्यों के ही बीच मित्रता संभव है ।

मैं जाकर पिंगलक को खुश करने की कोशिश तो करूंगा, पर वह प्रसन्न नहीं होगा। कहा भी है कि

"किसी कारण को लेकर जो क्रोधित होता है, वह कारण दूर होते ही अवश्य प्रसन्न हो जाता है, पर जो अकारण वैर ठानता है ऐसा मनुष्य कैसे प्रसन्न किया जा सकता है ?

अरे! यह ठीक ही कहा है कि

"भक्त, उपकारी, दूसरे के हितों में अपने को लगाने वाला, सेवा के व्यवहार-तत्वों को जानने वाला और द्रोह से परे, ऐसे राज-सेवक को अपने कार्य में सफलता मिले या न मिले, पर काम करते में अगर भूल हो जाय तो उसका नाश निश्चित है, क्योंकि समुद्र यात्रा की तरह राजा की सेवा भी हमेशा धोखों से भरी रहती है।

और भी

'सेवक प्रेम-भाव से भी अगर उपकार करे तो भी लोग उससे डाह करने लगते हैं। दूसरे बदमाशी से भी बुराई करें तो भी प्रीति-पात्र होते हैं। अनेक भावों का सहारा लेने वाले राजा का मन जानना मुश्किल है, परम गहन सेवा-धर्म योगियों के लिए अगम्य है।

मैंने यह जान लिया कि मुझ पर पिंगलक की कृपा-दृष्टि न सहने वाले निकटवर्तियों ने उसे मुझसे नाराज कर दिया है। मैं निर्दोष हूँ, फिर भी वह मेरे लिए ऐसा कहता है। कहा भी है —

"सौतों के ऊपर नाराज होती हुई सौतों के समान इस संसार में सेवक-गण भी दूसरे सेवकों के ऊपर स्वामी की कृपा सहन नहीं कर सकते।

ऐसा भी होता है कि पास में रहने वाले गुणवान के गुणों की वजह से दूसरों के ऊपर स्वामी की कृपा नहीं होती। कहा है कि

"गुणी-जनों का गुण उनसे अधिक गुण वाले मनुष्यों के गुणों से ठंडा पड़ जाता है; रात में दीये की लौ की शोभा होती है सूरज के उगने पर नहीं।"

दमनक ने कहा, "मित्र! अगर यही बात है तो तुझे डर नहीं। दुर्जनों ने अगर पिंगलक को गुस्सा दिलाया है तो भी वह तेरी बातों से प्रसन्न होगा।" संजीवक ने कहा, "अरे! तूने यह ठीक बात नहीं कही। अगर बदमाश छोटे भी हों तो भी उनके बीच रहा नहीं जा सकता। वे कोई दूसरा उपाय रचकर रहने वाले को मार देते हैं। कहा है कि

"चालबाजी से अपनी रोजी चलाने वाले छोटे पंडित ऊंट के बारे में जो कुछ कौए इत्यादि ने किया, उसी प्रकार भला या बुरा करते हैं।"

दमनक ने कहा, "यह कैसे ?" संजीवक कहने लगा—

सिंह, ऊँट, सियार और कौए की कथा

"किसी वन में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था। उसके नौकर चीता, कौआ, सियार और दूसरे पशु थे। उन्होंने एक बार इधर-उधर भटकते हुए कारवां से अलग पड़ गए एक ऊंट को देखा। इस पर सिंह ने कहा, "अहो! यह कोई अजीब प्राणी है। इस बात का पता लगाओ कि यह जीव गाँव का है या शहर का।" यह सुनकर कौआ बोला, "स्वामी! यह तो गांव

में रहने वाला ऊंट नाम का जानवर है और यह आपका भोजन है, इसलिए इसे मारिए।" सिंह ने कहा, "घर आने वाले को मैं नहीं मारूंगा; कहा है कि

"विश्वास करके तथा बिना किसी भय के घर आये हुए शत्रु को भी
जो मारता है, उसे ब्राह्मण के मारने जैसा ही पाप लगता है।

इसलिए तुम उसे अभयदान देकर मेरे पास लाओ, जिससे मैं उसके आने का कारण पूछूं।" इस पर वे सब ऊंट को भरोसा और अभयदान देकर मदोत्कट के पास लाए और वह प्रणाम करके बैठ गया। बाद में सिंह के पूछने पर कारवां से अपने अलग होने से लेकर उसने अपना सब हाल कहा। इस पर सिंह ने कहा, "अरे ऊँट! अब तू गांव में जाकर बोझ ढोने की तकलीफ न उठा। इस जंगल की पन्ने की तरह हरी घास के टूंगों को चरते हुए तू हमेशा मेरे पास रह।" ऊँट भी 'ठीक' यह कहकर तथा 'अब कहीं से भय नहीं है' यह जानकर उनके बीच में घूमता हुआ खुशी-खुशी रहने लगा।

एक दिन एक जंगली हाथी के साथ मदोत्कट की लड़ाई हुई और उसे हाथी के दांतों से चोट पहुंची। घायल होते हुए भी वह मरा नहीं, पर शरीर की कमजोरी के कारण वह एक कदम भी नहीं चल सकता था। कौआ वगैरह उसके सब नौकर भी भूख से पीड़ित होकर अपने मालिक की कमजोरी से बड़ी तकलीफ पाने लगे। इस पर सिंह ने उनसे कहा, "अरे, कहीं से कोई ऐसा जीव खोज लाओ जिसे मैं ऐसी हालत में होते हुए भी मार कर तुम्हारे खाने का प्रबंध करूं।"

इस पर वे चारों ओर घूमने लगे, पर कोई ऐसा जानवर नहीं दीख पड़ा। इस पर कौआ और सियार आपस में सलाह करने लगे। सियार बोला, "अरे कौए! इस भाग-दौड़ से क्या मतलब? यह ऊँट मालिक का विश्वासी होकर रह रहा है, उसे मारकर अपनी गुजर बसर करनी चाहिए।" कौआ बोला, "तूने ठीक कहा, पर मालिक ने उसे अभयदान दिया है, इसलिए वह मारने लायक नहीं है।" सियार बोला, "अरे कौए! मैं मालिक को ऐसा पाठ पढ़ाऊंगा जिससे वह उसे मार डालेगा। तू तब तक यहीं ठहर, जब तक

कि मैं मालिक की आज्ञा लेकर लौट न आऊं।" यह कहकर वह जल्दी से सिंह के पास जा पहुंचा और उसके पास जाकर कहा, "मालिक! हम सारा वन घूम आये पर कोई जानवर न मिला, अब हम क्या करें? अब तो हम एक कदम भी आगे चलने में असमर्थ हैं। आप भी पथ्य पर हैं, इसलिए यदि आपकी आज्ञा हो तो ऊंट के मांस से ही आज पथ्य बने।" उसकी ऐसी कठोर बात को सुनकर सिंह ने गुस्से से कहा, 'अरे पापी तुझे धिक्कार है। अगर तूने फिर ऐसा कहा तो उसी वक्त तुझे मैं मार डालूंगा। क्योंकि मैंने उसे अभयदान दिया है, मैं उसे कैसे मार सकता हूं? कहा है कि

"विद्वान पुरुष इस लोक में सब दानों में अभयदान को मुख्य दान कहते हैं; गोदान तथा भूमिदान तथा अन्नदान को नहीं।"

यह सुनकर सियार बोला, "स्वामी! अभयदान देकर मारने से यह दोष लगता है। पर यदि महाराज की सेवा में वह अपनी जान स्वयं दे दे तो फिर दोष नहीं लगेगा। इसलिए यदि वह स्वयं अपने को मरवाने के लिए हाजिर कर दे तब आप उसे मारिएगा, नहीं तो हममें से किसी एक को मारिएगा, क्योंकि आप पथ्य पर हैं, इसलिए अगर भूख के जोर को रोकेंगे तो आप मर जायंगे। हमारी छोटी जान से क्या जो स्वामी के लिए न दी जा सके। अगर स्वामी का कुछ बुरा हो गया तो हम सब को जल मरना होगा। कहा भी है—

"किसी कुल में जो खास आदमी होता है उसकी सब तरह से रक्षा करनी चाहिए। कुल-पुरुष के नाश हो जाने पर कुल भी नष्ट हो जाता है, जैसे धुरी के टूटने पर केवल आरे गाड़ी का भार नहीं उठा सकते।"

यह सुनकर मदोत्कट ने कहा, "वही करो जो तुम्हें जंचे।" यह सुनकर सियार दूसरे सेवकों के पास जाकर कहने लगा, "अरे, स्वामी बहुत बीमार हैं, इसलिए यहां चक्कर लगाने से क्या मतलब। उनके बिना हमें कौन बचायेगा? इसलिए हमें वहां जाकर भूख से परलोक जाते हुए उन्हें शरीर अर्पण कर देना चाहिए, जिससे उनकी कृपा से हम उऋण हो जायं।

कहा भी है—

"अगर सेवक के देखते हुए और जान रहते हुए भी स्वामी पर मुसीबत पड़े तो वह सेवक नरक में जाता है।"

इसके वाद वे सव आँखों में आँसू भरकर मदोत्कट को प्रणाम करके वैठ गए। उन्हें देखकर मदोत्कट ने कहा, "अरे, क्या तुम्हें कोई जीव मिला या दिखलाई दिया? उस पर उनके वीच से कौआ वोला, "स्वामी! सव जगह घूमे, पर न तो कोई जानवर दिखलाई दिया न मिला; इसलिए हे स्वामी! आप मुझे खाकर अपनी जान वचाइये। इससे आप की तृप्ति होगी और मुझे स्वर्ग-प्राप्ति। कहा भी है—

"भक्ति के साथ जो सेवक स्वामी के लिए अपनी जान देता है, उसे वुढ़ापा और मृत्यु से रहित परम पद प्राप्त होता है।"

यह सुनकर सियार वोला, "अरे! तुम्हारा तो छोटा-सा शरीर है, तुम्हें खाकर भी स्वामी की देह नहीं चल सकती और उन्हें दोप भी लगेगा।

कहा है कि

"थोड़े-थोड़े और वल न देने वाले कौए का मांस और कुत्ते का जूठा खाने से क्या लाभ कि जिससे तृप्ति न हो?

पर तूने जो अपनी स्वामी-भक्ति दिखलाई है उससे तू स्वामी के भोजन के ऋण से उऋण होगया और दोनों लोक में तेरी प्रशंसा हुई। अव तू आगे से हट, मैं स्वामी से कुछ निवेदन करूं। कौए के ऐसा करने पर सियार हाथ जोड़कर खड़ा रहा और वोला, "स्वामी! मुझे खाकर, आप अपनी जान वचाइये और मुझे यह लोक और परलोक वनाने दीजिए।

कहा है कि

"धन से खरीदे हुए सेवकों की जान हमेशा मालिक के अधीन रहती है, और उस जान को लेने से स्वामी को हत्या का दोप नहीं लगता।"

यह सुनकर चीता वोला, "अरे! तूने ठीक कहा। फिर भी तू छोटे शरीर वाला और कुत्ते की जात का है। पंजों वाला होने से तू खाने

लायक भी नहीं है। कहा भी है —

"गले तक जान आ जाने पर भी बुद्धिमान पुरुष को इस लोक और परलोक को नाश करने वाली अखाद्य वस्तु नहीं खानी चाहिए। इसमें भी विशेपकर अगर वह बहुत छोटी हो तब तो उसे बिलकुल ही नहीं खाना चाहिए।

तूने अपनी कुलीनता दिखला दी अथवा यह ठीक ही कहा है कि राजा कुलीनों को इकट्ठा करते हैं, इसकी वजह यह है कि वे आदि, मध्य और अन्त में बिगड़ते नहीं।

इसलिए तू आगे से हट जिससे मैं मालिक से कुछ कहूँ।" सियार के हटने पर चीते ने मदोत्कट को प्रणाम करके कहा, "आप मेरी जान से अपना शरीर चलाइये, मुझे अक्षय स्वर्गवास दीजिये और मेरा यश इस पृथ्वी पर फैलाइये। इस बारे में आपको आश्चर्य नहीं करना चाहिए। कहा है कि

"स्वामी के अनुकूल रहते तथा स्वामी का काम करते हुए जिन सेवकों की मृत्यु होती है उनका स्वर्ग में अक्षयवास होता है और पृथ्वी पर उनकी कीर्ति फैलती है।"

यह सुनकर ऊँट सोचने लगा, 'इन सब ने स्वामी से मीठी-मीठी बातें कहीं, पर स्वामी ने इनमें से एक को भी नहीं मारा। इसलिए मैं भी समयानुकूल बातचीत कहूँ, जिससे मेरी बात का ये तीनों समर्थन करें।' इस तरह निश्चय करके वह बोला, "अरे! तुमने ठीक कहा पर तुम भी पंजे वाले हो, फिर कैसे तुम्हें स्वामी खायंगे। कहा है,

"अपनी जाति वालों का मन में भी जो अनिष्ट सोचता है उसे इस लोक में और परलोक में अनिष्ट ही मिलता है।

इसलिए तुम आगे से हटो, जिससे मैं स्वामी से कुछ कहूँ।" ऐसा कहने पर ऊँट ने आगे बढ़ और खड़े होकर प्रणाम करके कहा, "स्वामी! यह सब आपके लिए अखाद्य हैं, इसलिए मुझे मारकर शरीर-रक्षा कीजिये, जिससे मुझे इहलोक और परलोक मिले। कहा भी है—

"स्वामी के लिए अपनी जान देने वाले सेवकों को जो गति मिलती है, वह गति यज्ञ करने वालों को और योगियों को भी नहीं मिलती।"

वह यह कह ही रहा था कि सियार और चीते ने उसकी दोनों कोखें चीर डालीं, जिससे वह मर गया। बाद में उन सब छोटे पंडितों ने उसे खा डाला। इसलिए मैं कहता हूं कि

"कपट से जीविका चलाने वाले छोटे पंडित जैसे ऊंट के बारे में कौए वगैरह ने किया वैसा कार्य अथवा अकार्य करते हैं।

इसलिए हे भद्र! मैं मानता हूँ यह राजा छोटे साथियों वाला है। कहा भी है—

"गीधों से घिरे कन्वहंस के समान आचरण करते हुए अशुद्ध मंत्रिओं वाले राज्य में जनता सुख नहीं पाती।

उसी प्रकार

"राजा अगर गीध के समान भी हो पर हंस-जैसे सभासदों वाला हो तो वह सेवा करने योग्य है, परन्तु उसके हंस-जैसे होते हुए भी उसके सभासद गीध-जैसे हों तो वह छोड़ देने लायक है।

यह निश्चित है कि किसी बदमाश ने पिंगलक को मुझसे गुस्सा करवा दिया है, जिससे वह ऐसा कहता है। अथवा कहा भी है—

"कोमल जल के थपकों से पहाड़ और जमीन घिस जाती है। फिर शिकायत करने वालों की शिकायत से, कोमल चित्त वाले मनुष्यों का क्या कहना है?

"कर्ण विष से (खोटे उपदेश सुनने से) टूटा हुआ मूर्ख कौनसा बचपन नहीं करता? वह जैन साधु बनता है और कापालिक बनकर मनुष्य की खोपड़ी से मदिरा पीता है।

अथवा ठीक ही कहा है कि

"पैर से मारे जाने पर भी अथवा मजबूत डंडे से पीटे जाने पर भी सांप जिसे डसता है उसे मार डालता है, पर चुगलीखोर का धर्म

तो अजीव ही है, क्योंकि वह एक आदमी का कान छूता है और दूसरे का समूल नाश कर देता है।

और भी

"दुष्ट और साँप द्वारा मारने के उल्टे तरीके हैं; एक तो आदमी के कान लगता है और दूसरा प्राण ले लेता है।

ऐसा होने पर मुझे क्या करना चाहिए, यह मैं तुझसे मित्रभाव से पूछता हूँ।" दमनक ने कहा, "तुम्हें विदेश चले जाना चाहिए, पर ऐसे कु-स्वामी की सेवा करना ठीक नहीं। कहा है कि

"अभिमानी, वुरे-भले काम में भेद न करने वाले और वुरे रास्ते पर चलने वाले गुरु का त्याग करना भी ठीक है।"

संजीवक ने कहा, "यह ठीक है, पर अपने ऊपर स्वामी के गुस्से होने पर दूसरी जगह नहीं जाया जा सकता और जाने पर भी शांति नहीं मिल सकती। कहा भी है—

"जो मनुष्य वड़े आदमी का अपराध करता है उसे 'मैं दूर हूँ' यह मानकर भरोसा नहीं करना चाहिए। वुद्धिमान के हाथ लम्वे होते हैं, और उनसे वह हिंसक को मार देता है।

इसलिए युद्ध के सिवाय मेरे लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

"वीर और सुशील पुरुष युद्ध में मरकर एक क्षण में जिस लोक को जाता है उस लोक में तीर्थ करने से, तप करने से और धन दान करने से स्वर्ग मिलने के इच्छुक नहीं जा सकते।

"मरने से तो स्वर्ग मिलता है और जीवित रहने से उत्तम कीर्ति; ये दोनों गुण वीर-पुरुषों के लिए दुर्लभ नहीं हैं। जिस वीर के माथे से वहता हुआ खून मुंह में गिरता है, वह खून युद्ध रूपी यज्ञ में विधिवत् सोमपान के समान पुण्यमय होता है।

और भी

"होम करने से, अनेक प्रकार की दान-विधियों से, उत्तम ब्राह्मण की पूजा करने से, खूब दक्षिणा वाले यज्ञों को ठीक तरह से करने

से, अच्छे तीर्थों और आश्रमों में रहने से, होम और नियम से तथा चन्द्रायण आदि व्रत करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल युद्ध में मरने वाले वीरों को उसी क्षण मिल जाता है।"

यह सुनकर दमनक सोचने लगा, 'यह दुष्ट तो युद्ध के लिए तैयार मालूम होता है। कदाचित वह अपने तीखे सींगों से स्वामी पर वार करेगा तो बड़ा अनर्थ होगा। तो फिर एक वार में इसे समझाऊँ जिससे वह देश के वाहर चला जाय, फिर दमनक वोला," मित्र ! तूने ठीक कहा, लेकिन स्वामी और सेवक की लड़ाई कैसी ? कहा है कि

"वलवान शत्रु को देखकर कमजोर को छिप जाना चाहिए और वलवानों को निर्वल शत्रु को देखकर शरद् ऋतु के चन्द्रमा की तरह प्रकट हो जाना चाहिए ।

और भी

"शत्रु का वल जाने विना जो शत्रुता करता है वह, जैसे समुद्र टिटिहरी से हार गया, उसी प्रकार हार जाता है।"

संजीवक ने कहा, "यह कैसे ?" दमनक कहने लगा—

टिटिहरी और समुद्र की कहानी

"किसी देश में समुद्र के किनारे टिटिहरी का एक जोड़ा रहता था। समयांतर में ऋतुमती होकर मादा टिटिहरी ने गर्भ धारण किया। अपने प्रसव काल को आया जानकर मादा ने नर से कहा, "मेरे प्यारे ! मेरा प्रसव काल आ गया है, इसलिए आप किसी उपद्रवरहित स्थान की खोज कीजिये, जहाँ मैं अंडे दे सकूं।"नर ने कहा,"भद्रे ! यह समुद्र प्रदेश बहुत सुन्दर है, यहीं पर तुम अंडे दो।"मादा ने कहा,"यहां पूनों के दिन ज्वार आती है, जो मतवाले हाथी को भी खींच ले जाती है, इसलिए यहां से दूर कोई जगह खोजिये।" यह सुनकर नर ने हँसकर कहा, "तेरा कहना ठीक नहीं है। मेरे वच्चे को नुकसान पहुँचाने की समुद्र की क्या ताकत है ? कहा है कि

"पक्षियों का रास्ता रोकने वाली, डरावनी और धूलरहित

आग में वह कौन मूर्ख मनुष्य है, जो अपनी इच्छा से घुसेगा ?
"मतवाले हाथियों के वक्षस्थल को फाड़ने की थकान से थका हुआ, यम की मूर्ति के समान सिंह को यमलोक के दर्शन की इच्छा रख कर कौन जगा सकता है ?
"कौन निडर यम के घर जाकर स्वयं यम से कहता है 'अगर तुझ में कुछ ताकत है तो ले मेरी जान।' कुहरे से मिली हवा ठंडे काल में बहती है। गुण-दोष जानने वाले पुरुष को ठंडे जल से कौन ठंडा कर सकता है ?
इसलिए निःशंक होकर तू यहाँ अंडे दे। कहा भी है—
जो आदमी हार मानकर अपनी जगह छोड़ देता है, अगर उससे माता पुत्रवती कहलाये तो फिर बाँझ किससे कहलाये ?"

यह सुनकर समुद्र सोचने लगा, "अरे देखो तो इस कीड़े की तरह छोटे पक्षी का गर्व ! अथवा ठीक ही कहा है कि
"टिटिहरा आकाश टूटने के डर से अपने पैर ऊपर करके बैठता है। अपने मन में ख्याली घमंड किसे नहीं होता ?

इसलिए मुझे कुतूहल से ही उसकी ताकत आजमानी चाहिए। अगर मैं इसके अंडे वहा ले जाऊँ तो यह क्या कर सकता है ?" समुद्र ऐसा सोच-विचार करने लगा। अंडे देने के बाद खाना इकट्ठा करने जब टिटिहरी का जोड़ा बाहर गया हुआ था, तब समुद्र ने लहर के जरिये उसके अंडे खींच लिए। टिटिहरी ने आने पर अपने अंडे देने की जगह को खाली पाकर रोते हुए टिटिहरे से कहा, "अरे मूर्ख ! मैंने तुझसे कहा था कि समुद्र के ज्वार से अंडे नष्ट हो जायँगे, इसलिए हमें दूर जाना चाहिए, पर मूर्खता से अहंकार के वश होकर तूने मेरा कहना न माना। अथवा कहा है कि
"इस लोक में हितैषी मित्रों की जो बात नहीं मानता वह लकड़ी के ऊपर से गिरे हुए कछुए की तरह नष्ट हो जाता है।"

टिटिहरे ने कहा, "यह कैसे ?" उसने कहा—

काठ से गिरे हुए कछुए की कहानी

"किसी तालाब में कम्बुग्रीव नामक कछुवा रहता था। उसके संकट और विकट नाम के परम-स्नेही दो मित्र हंस नित्य तालाब के किनारे आकर उसके साथ अनेक देव महर्षियों की कथा कहकर सायंकाल अपने घोंसलों को चले जाते थे। कुछ दिन बीतने पर बरसात न होने से तालाब धीरे-धीरे सूख गए। कछुए के दुख से दुखी दोनों हंसों ने कहा, "अरे मित्र! इस तालाब में केवल कीचड़ बच गया है। तुम्हारा क्या होगा, यह सोचकर हमारा हृदय व्याकुल हो रहा है।" यह सुनकर कम्बुग्रीव ने कहा, "अरे, पानी के बिना अब मेरा जीवन टिक नहीं रहा है। इसलिए कोई उपाय सोचो। कहा भी है—

"दुख के समय भी धीरज नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि धैर्य से कदाचित् मनुष्य को चाल मिलती है; जैसे कि समुद्र में जहाज टूट जाने पर उस पर सफर करने वाले केवल तैरना ही चाहते हैं।

और भी

"मनु का यह कहना है कि आफतें पैदा होने पर बुद्धिमान मनुष्य सदा मित्रों और बंधुओं के लिए मेहनत करता है।

इसलिए कोई मजबूत रस्सी अथवा छोटा काठ लाओ और भरे पानी वाले किसी तालाब की तलाश करो। मैं अपने दांतों से लकड़ी का बीच का हिस्सा पकड़ लूंगा और तुम दोनों उसके दोनों छोर पकड़कर मुझे उस तालाब में ले चलोगे।" उन दोनों ने कहा, "हम यही करेंगे, पर कृपा करके आप चुप रहियेगा, नहीं तो आप काठ से नीचे गिर जायंगे।" इस तरह का इन्तजाम होने के बाद आकाश में उड़ते हुए कम्बुग्रीव ने नीचे कोई शहर देखा और वहां के नागरिक उसे इस प्रकार ले जाते हुए देखकर आपस में विस्मय से कहने लगे, "अरे! ये पक्षी कोई चमत्कार वस्तु लिये जा रहे हैं, देखो, देखो।' इस प्रकार उनका कोलाहल सुनकर कम्बुग्रीव ने कहा, "अरे! यह कैसा शोरगुल है।"

पर इस तरह वोलते हुए वह पूरी वात भी न कह सका और नीचे आ गिरा। नगरवासियों ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

इसलिए मैं कहती हूँ कि

"इस लोक में हितैषी मित्रों की जो वात नहीं मानता वह लकड़ी के ऊपर से गिरे हुए कछुए की तरह नष्ट हो जाता है।

"संकट आने के पहले उपाय करने वाला, और संकट आने के समयानुसार उसके उपाय करने वाला, इन दोनों को सुख मिलता है। पर भाग्य पर भरोसा रखने वाले का नाश होता है।"

टिटहरे ने कहा—"यह कैसे?" टिटिहरी कहने लगी—

तीन मछलियों की कथा

किसी तालाव में अनागत-विघाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्‌भविष्य नाम के तीन मच्छ रहते थे। एक वार उस तरफ से जाते हुए मछली मारों ने उस तालाव को देख कर कहा, "मछलियों से भरे इस तालाव को हमने कभी भी इसके पहिले नहीं देखा था। आज तो हमें अपना भोजन मिला। अभी तो संध्या हो गई है। इसलिए सवेरे हम यहां जरूर आवेंगे।" विजली गिरने के समान उनकी यह वात सुनकर अनागत-विघाता ने सव मछलियों को वुलाकर यह कहा, "अरे, क्या आप लोगों ने मच्छीमारों की वात सुनी? इसलिए आप सव किसी निकट के तालाव में चले जांय।

कहा है कि

"कमजोर मनुष्यों को वलवान शत्रुओं से दूर भागना चाहिए, या किले में चले जाना चाहिए। इसके सिवा उनकी कोई गति नहीं है।

जरूर ही सवेरे मछली मार आकर मछलियों को मारेंगे, यह मेरा विश्वास है। इसलिए क्षण भर भी आप का यहां रहना ठीक नहीं।

कहा है कि

"जो मनुष्य सुख के साथ दूसरी जगह जा सकता है ऐसा विद्वान

अपने देश की हार और कुल का क्षय नहीं देखता।"

यह सुनकर प्रत्युत्पन्नमति बोला, "आपने ठीक कहा। मुझे भी यह बात मंजूर है, इसलिए हमें दूसरी जगह चले जाना चाहिए।

कहा है कि

"परदेश जाने से डरने वाले कपटी, नपुंसक, कौए, पागल और मृग अपने ही देश में मरते हैं।

"जो सब जगह जा सकता है वह आदमी अपने स्वदेश-प्रेम से क्यों नष्ट हो। 'यह तो मेरे बाप का कुंआ है' यह कह कर उसका खारा पानी केवल कापुरुष ही पीते हैं।"

यह सुनकर जोरों से हंसता हुआ यद्भविश्य बोला, "आपने यह ठीक बात नहीं कही, केवल मछलीमारों की बात से ही अपने बाप दादों का यह तालाब छोड़ देना ठीक नहीं। अगर हमारी जिन्दगी पूरी हो गयी है तो दूसरी जगह जाने पर भी मरना ही पड़ेगा।

कहा है कि

"अरक्षित भी अगर दैव से रक्षित है तो वह बचता है; और सुरक्षित भी भाग्य का मारा हुआ है तो उसका नाश होता है। वन में छोड़ा हुआ अनाथ भी जीवित रहता है, और घर में यत्नपूर्वक रक्षित का भी नाश हो जाता है।

इसलिए मैं तो नहीं जाऊंगा। आप लोगों को जैसा सूझे, कीजिये।" उसका यह निश्चय जानकर अनागत-विधाता और प्रत्युत्पन्नमति अपने परिवारों के साथ चले गये। सवेरे उन मछलीमारों ने जालों से तालाब को हिलोरकर यद्भविष्य के साथ ही साथ उस तालाब को बिना मछलियों का बना दिया।

इसलिए मैं कहती हूं कि 'संकट आने के पहले उपाय करने वाला और संकट आने के समयानुसार उसका उपाय करने वाला, इन दोनों को सुख मिलता है। पर भाग्य के ऊपर भरोसा करने वाले का नाश होता है।'

यह सुनकर टिटिहरे ने कहा, "क्या तू मुझे यद्भविष्य की तरह मानती है? देख मेरी बुद्धि का प्रभाव जिससे मैं इस दुष्ट समुद्र को सुखा दूंगा।" टिटि-

हरी बोली, "अरे, समुद्र के साथ तेरी कैसी लड़ाई ? तेरा समुद्र के ऊपर गुस्सा करना ठीक नहीं। कहा भी है कि

"कमजोर आदमी का गुस्सा उसी के लिए तकलीफदेह होता है।
वहुत जलता हुआ-मिट्टी का वर्तन अपने वगलों को ही जलाता है।

और भी

"अपनी तथा शत्रु की ताकत जाने विना जो केवल उत्सुक होकर
सामने जाता है वह आग में पतिंगे की तरह नष्ट हो जाता है।"

टिटिहरे ने कहा, "प्रिये ! ऐसा न कह। उत्साह और साहस से भरे छोटे भी वड़ों को हरा देते हैं। कहा है कि

"असंहनशील पुरुष विशेष कर के भरे-पूरे शत्रु का सामना करते
हैं—उसी तरह जिस तरह राहु पूर्ण चन्द्र का सामना करता है।

और भी

"अपने शरीर से प्रमाण में कहीं अविक तथा जिसके गंडस्थल से
काला मद गिर रहा है ऐसे मस्त हाथी के सिर के ऊपर सिंह
अपने पैर रखता है।

और भी

"वाल सूर्य का पाद (किरण अथवा पैर) पर्वत (अथवा राजा) के ऊपर
पड़ता है। जो तेजस्वी ही होकर जन्मा है उसकी उमर से क्या
काम ?

"खूव मोटा-ताजा हाथी भी अंकुश के वश में हो जाता है; फिर क्या
अंकुश हाथी के वरावर होता है ? जलते हुए दीपक से अंधेरा
हट जाता है ; फिर क्या दीप अंधेरा जितना वड़ा होता है ?
विजली गिरने से पहाड़ गिर जाते हैं ; फिर क्या विजली
पहाड़ जितनी वड़ी होती है ? जिसमें तेज विराजता है, वही
वलवान है। इसलिए वड़े होने पर ही कोई विश्वास नहीं करता।

इसलिए मैं अपनी चोंच से समुद्र का सारा पानी सोखकर उसे सुखा डालूंगा।" टिटिहरी बोली, "मेरे प्रिय ! जिसमें गंगा और

सिंध नित्य नौ-नौ सौ नदियां लेकर प्रवेश करती हैं, ऐसे अठारह सौ नदियों से भरे जाने वाले समुद्र को केवल एक बूंद भरने वाली तेरी चोंच किस तरह सोख सकेगी ? ऐसी गप्प उड़ाने से क्या फायदा ?" टिटिहरे ने कहा,

"प्रिये ! उत्साह ही लक्ष्मी की जड़ है। मेरी चोंच लोहे जैसी है और रात-दिन काफी बड़े हैं, फिर समुद्र कैसे नहीं सूखेगा ?

"जब तक पुरुष पुरुषार्थ नहीं करता तब तक उसे बड़ाई नहीं मिल सकती। सूर्य तुला में आरूढ़ होता है, (तुला राशि का होता है अथवा शत्रु पक्ष की तुलना में उसकी बढ़ती होती है) तब बादलों के ऊपर उसकी विजय होती है।"

टिटिहरी ने कहा, "यदि तुझे समुद्र के साथ वैर करना है तो दूसरे पक्षियों को बुलाकर मित्रों को साथ लेकर करो।" कहा है कि

"निःसार वस्तुओं का समूह भी अजेय बन जाता है। तिनकों से बटे रस्से से हाथी भी बंध जाता है।

उसी प्रकार

"चकली, कठफोड़वा, मक्खी और मेढ़क इत्यादि बहुतों के साथ लड़ाई करने से हाथी की मृत्यु हुई।"

टिटिहरे ने कहा, "यह कैसे ?" टिटिहरी ने कहा—

गौरय्या और हाथी की कथा

"किसी वन में गौरय्ये का जोड़ा तमाल के वृक्ष में घोंसला बनाकर रहता था। समयांतर में उन्हें बच्चे हुए। एक दिन एक मतवाला हाथी गरमी से परेशान होकर छाया में बैठने के लिए तमाल वृक्ष के नीचे आया। बाद में उसने, जिस शाखा पर गौरय्ये का जोड़ा रहता था, उसे अपनी मस्ती में सूंड से तोड़ डाला। उसके टूटने से गौरय्ये के अंडे टूट-फूट गए। जान रहने से ही गौरय्या किसी तरह बच गई। पर अंडे टूट जाने से दुखित वह रोने से किसी तरह चुप ही नहीं होती थी। उसका रोना-कल्पना सुनकर उसका परम मित्र और उसके दुख से दुखी कठफोड़वा ने आकर उससे कहा,

"भगवति! वृथा रोने से क्या फायदा ? कहा भी है—

"नष्ट हुए, मर गए तथा बीत गए लोगों का शोक पंडित नहीं करते, क्योंकि पंडितों और मूर्खों में यही विशेपता कही गई है।

इसी प्रकार

"इस संसार में जीव अशोचनीय हैं। जो मूर्ख उनका शोक करता है वह एक दुख में दूसरा दुख पाता है, और इस तरह दो अनर्थों का सेवन करता है। सम्वन्धियों द्वारा गिराये गए आंसुओं और खखार भरा हुआ जीव परवश होकर खाता है। इसलिए रोनां नहीं चाहिए, पर यत्नपूर्वक उसका क्रिया-कर्म करना चाहिए।"

गौरय्या ने कहा, "यह वात ठीक है, पर इस दुष्ट हाथी ने मेरे वच्चों को मारा है, इसलिए अगर तू मेरा सच्चा मित्र है तो उस हाथी के मारने की तरकीव सोच कि जिससे वच्चों के मारने से पैदा हुआ मेरा दुख दूर हो। कहा है कि

"आपत्ति के समय जिसने अपना उपकार किया हो उसका उपकार करने वाला और टेढ़े समय में जो अपने ऊपर हँसा हो उसका अपकार करने वाला, ऐसे व्यक्ति को मैं वड़ा मानती हूँ।"

कठफोड़वे ने कहा, "भगवति ! आपने ठीक कहा। कहा भी है—

"विपत्ति काल में जो दूसरी जाति का होते हुए भी मदद करे, वही मित्र है। रईसी में तो प्राणियों के सव मित्र ही होते हैं।

"वही मित्र है जो तकलीफ में भी वना रहता है; वही पुत्र है जो आज्ञाकारी है; वही सेवक है जो काम करके वताता है; और वही पत्नी है जिससे शांति मिले।

तो आप अव मेरी वुद्धि का प्रभाव देखिये। वीणाखी नाम की एक मक्खी मेरी दोस्त है, उसे वुलाकर मैं लाता हूँ, जिससे वह दुष्ट हाथी मारा जा सके।" वाद में गौरय्या को साथ लेकर वह मक्खी के पास जाकर वोला, "भद्रे ! यह गौरय्या मेरी मित्र है। किसी दुष्ट हाथी ने इसके अंडे फोड़कर इसे वड़ा दुख दिया है। इसलिए उसको मारने के लिए तैयार

में तेरी सहायता चाहता हूं।" मक्खी ने कहा, "भद्र! इस बारे में क्या कोई कहने की बात है? कहा है कि

"उपकार का बदला देने के लिए मित्रों का भला किया जाता है,
पर मित्र का कौनसा हितकार्य मित्रों ने नहीं किया है?

यह सच है, मेरा भी मेघनाद नामक मेढ़क मित्र है। उसे भी बुलाकर जैसा होगा वैसा करना चाहिए। कहा भी है—

"भलाई चाहने वाले सदाचारी, शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान विद्वानों
द्वारा विचारे गए उपाय कभी निष्फल नहीं जाते।"

बाद में तीनों मेघनाद के पास जाकर और उससे पहले की हालत कहकर खड़े रहे। इस पर वह मेढ़क बोला, "बड़े लोगों के क्रुद्ध होने पर उस बेचारे हाथी की क्या गिनती? इसलिए तुम्हें मेरी सलाह से काम करना चाहिए। मक्खी! तू दोपहर के समय जाकर उस मतवाले हाथी के कान में वीणा की झंकार के ऐसा गुनगुना, जिससे सुनने की लालच से उसकी आंखें बन्द हो जावें। बाद में कठफोड़वे की चोंच से आंखें फोड़ी जाकर अंधा बना हुआ वह हाथी प्यास से परेशान होकर एक गढ़े के पास परिवार के सहित बैठे हुए मेरी आवाज सुनकर आयेगा और उस गढ़े में गिरकर मर जायगा। हमें इस प्रकार योजना बनानी चाहिए कि जिससे वैर का बदला मिल सके।" बाद में यही किया गया और दोपहर में मक्खी का गाना सुनते हुए कान के सुख से जिसकी आंखें बन्द हो गई थीं, ऐसे हाथी की आंखें कठफोड़वे ने पीछे से आकर फोड़ डालीं, और बाद में मेढ़क की आवाज के पीछे जाता हुआ वह एक बड़े गढ़े में गिर गया। इसलिए मैं कहता हूं कि 'चकली, कठफोड़वा, मक्खी, मेढ़क आदि बहुतों के साथ लड़ाई करने से हाथी की मृत्यु हुई।'

टिटिहरे ने कहा, "यही हो। अपने मित्रों के साथ मैं समुद्र सोखूंगा।" इस प्रकार निश्चय करके बगला, सारस, मोर वगैरह पक्षियों को बुलाकर उसने कहा, "अरे, समुद्र ने मेरे अंडों को चुराकर मेरी बेइज्जती की है, इसलिए उसके सोखने का उपाय विचारो।" उन्होंने आपस में विचार

करके कहा, " हम सब समुद्र को सोखने के लायक नहीं हैं, फिर फिजूल कोशिश करने से क्या लाभ ? कहा है कि

"जो कमजोर आदमी घमंड में आकर अपने से बड़े आदमी के साथ लड़ाई लड़ने जाता है वह दांत टूट गए हाथी के समान पीछे लौटता है ।

हमारे स्वामी गरुड़ हैं, इसलिए इस सारे अपमान का हाल उनसे कहना चाहिए, जिससे अपनी जाति के अपमान से क्रोधित होकर वें बदला ले सकेंगे। अगर वे घमंड में आकर हम सब की बातें नहीं सुनें तो भी हम सबको दुख नहीं होगा । कहा भी है कि

"एक-दिल मित्र के पास, गुणी नौकर के पास, अनुकूल स्त्री के पास, ताकतवर स्वामी के पास दुख निवेदन करके मनुष्य सुखी होता है ।

इसलिए हम सब को गरुड़ के पास जाना चाहिए, क्योंकि वह हमारे स्वामी हैं ।" यह निश्चय करके, फीके वदन और आंखों में आंसू भरे हुए पक्षियों ने गरुड़ के पास जाकर करुण स्वर में फरियाद करना शुरू किया । "अहो अब्रह्मण्यम्! अब्रह्मण्यम्! आपके हमारे स्वामी होते हुए भी इस सच्चरित्र टिटिहरे के अंडे समुद्र चुरा ले गया, जिससे इस पक्षी का कुल नाश हो गया है । इसी प्रकार समुद्र दूसरों का भी मनमानी तौर से नाश करेगा । कहा है कि

"एक आदमी का निन्दनीय काम देखकर दूसरा भी वही काम करता है । संसार तो एक-दूसरे के पीछे चलने वाला है । वह दूसरे की भलाई (सच्ची बात) को जानने वाला नहीं है ।

उसी प्रकार

"धूर्तों, चोरों, दुराचारियों और साहसिकों आदि से पीड़ित तथा कपट और प्रपंच से ठगी हुई प्रजा की रक्षा करनी चाहिए । जो राजा रक्षा करता है उसे प्रजा के धर्म में से छठा भाग मिलता है; जो राजा रक्षा नहीं करता उसे अधर्म में से छठां भाग मिलता है ।

"प्रजापीड़न के संताप से पैदा हुई आग राजा की लक्ष्मी, कुल और प्राण का नाश किये बिना शांत नहीं होती।

"जिसके बंधु नहीं होते, राजा उनका बंधु है; जिनकी आंखें नहीं होतीं उनकी आंख है, और वह कानून से चलने वालों का माता-पिता है।

"फल की इच्छा रखने वाला माली जैसे यत्नपूर्वक अंकुरों को सींचता है, उसी प्रकार फल की इच्छा रखने वाले राजा को दान-मान आदि रूपी जल से यत्नपूर्वक प्रजा-पालन करना चाहिए।

"बीज के पतले अँखुओं की भी अगर यत्नपूर्वक रखवाली की जाय तो यथासमय वे फल देते हैं। उसी प्रकार सुरक्षित प्रजा भी यथासमय फल देने वाली होती है।

"राजा के पास जो सोना, गल्ला, जवाहरात और अनेक तरह की सवारियां तथा और भी जो कुछ होता है वह प्रजा से ही मिला होता है।"

यह सुनकर पक्षियों के दुख से दुखी और क्रुद्ध होकर गरुड़ सोचने लगे, "इन पक्षियों ने ठीक ही कहा है। अब मैं तुरन्त जाकर उस समुद्र को सोखता हूं।" वह यह सोच ही रहे थे कि इतने में ही विष्णु के एक दूत ने आकर कहा, "अरे गरुड़! भगवान नारायण ने मुझे तेरे पास भेजा है। देवताओं के काम के लिए भगवान स्वर्ग जाने वाले हैं, इसलिए जल्दी चल।" यह सुनकर गरुड़ ने अभिमान के साथ कहा, "अरे दूत! मेरे जैसे छोटे सेवक से भगवान का क्या काम? इसलिए तू जाकर उनसे कह कि मेरी जगह सवारी में आप किसी दूसरे सेवक को रख लीजिये। भगवान से तू मेरा नमस्कार भी कहना। कहा भी है—

"जो मनुष्य किसी दूसरे का गुण नहीं जानता उसकी सेवा पंडितों को नहीं करनी चाहिए। ऊसर जमीन को अच्छी तरह जोतने पर भी जैसे उसमें कुछ पैदा नहीं होता, उसी तरह ऐसे आदमी से भी

कुछ फल नहीं मिलता ।"

दूत ने कहा, "हे गरुड़ ! भगवान के प्रति कभी भी तूने ऐसी बातें नहीं कीं । यह तो बता कि भगवान ने तेरा कौन-सा ऐसा अपमान किया है?" गरुड़ ने कहा , "भगवान के घर के समान समुद्र ने हमारे टिटिहरे के अंडे चुरा लिये । इसलिए वे अगर समुद्र को दबाते नहीं, तो मैं उनका सेवक नहीं । तू मेरा यह निश्चय भगवान से जाकर कह देना । इसलिए तुझे जल्दी से भगवान के पास जाना चाहिए ।" प्रेम से कुपित गरुड़ की बात दूत के मुंह से सुनकर भगवान सोचने लगे, "अहो! गरुड़ का क्रोध करना ठीक है । इसलिए मैं स्वयं जाकर आदर से उसे यहां ले आऊँगा । कहा भी है कि

"जो अपनी उन्नति चाहता है उसे आज्ञाकारी , जोरदार और खान-दानी सेवक की बेइज्जती नहीं करनी चाहिए, उसका पुत्र की तरह पालन करना चाहिए ।

और भी

"राजा अगर प्रसन्न हुआ तो सेवक को केवल दान देता है , पर सेवक तो केवल इज्जत मिलने से ही प्राण भी देकर उसका उपकार करता है ।"

इस प्रकार विचार करके भगवान रुक्मपुर में गरुड़ के पास जल्दी से पहुँचे । गरुड़ भी भगवान को अपने घर आया देखकर शरम से नीचा मुख कर प्रणाम कर बोले , "भगवन् ! आपका घर होने के कारण घमंड में आकर समुद्र ने मेरे सेवक के अंडे चुराकर मेरी बेइज्जती की है । पर आपकी लज्जा से मैं रुक गया हूँ, नहीं तो मैं अभी उसे जमीन बनाकर छोड़ देता, क्योंकि स्वामी के भय से उसके कुत्ते को भी नहीं मारा जाता । कहा है कि

"जिससे स्वामी के मन में छोटापन अथवा दुख हो, ऐसा काम अपनी जान जोखिम में रहते हुए भी खानदानी सेवक नहीं करता ।"

यह सुनकर भगवान बोले, "हे गरुड़! तेरी बात सच्ची है । कहा है कि

"सेवक के कसूर की वजह से यदि उसे दंड मिले तो वह दंड स्वामी को ही मिला मानना चाहिए, क्योंकि दंड से पैदा शरम जितनी स्वामी

को लगती है उतनी सेवक को नहीं।

इसलिए तू चल, जिससे समुद्र के पास से अंडे लेकर टिटिहरे को हम संतोष दें और इसके बाद स्वर्ग चलें।" ऐसी बात पक्की हो जाने पर भगवान समुद्र को भला-बुरा कह, उसके सामने आग्नेयास्त्र साधकर बोले, "अरे दुरात्मा! टिटिहरे के अंडे दे, नहीं तो तुझे अभी सुखा देता हूं।" इससे भय खाकर समुद्र ने टिटिहरे के अंडे लौटा दिये। टिटिहरे ने उन्हें अपनी पत्नी को दे दिये।

इसलिए मैं कहता हूं कि 'शत्रु का बल जाने बिना जो शत्रुता करता है वह जैसे समुद्र टिटिहरी से हार गया, उसी प्रकार हार जाता है।'

इसलिए पुरुष को उद्यम नहीं छोड़ना चाहिए।" यह सुनकर संजीवक दमनक से फिर पूछने लगा, "अरे मित्र, यह कैसे जाना जाय कि पिंगलक की मेरी ओर से बुरी नीयत है। इतने समय तक तो वह मेरी ओर बराबर प्रेम और कृपा की दृष्टि से देखता रहा इससे मैंने कभी भी उसकी बुरी नीयत नहीं देखी। तो तू बतला जिससे मैं अपनी रक्षा के लिए उसको मारने की तदबीर सोचूं। दमनक ने कहा, "मित्र, उसमें जानने की क्या बात है? फिर भी तेरे संतोष के लिए कहता हूं। तुझे देखकर अगर वह लाल आंखें करके और भौंहें चढ़ाकर ओंठ के इधर-उधर जीभ लपलपाने लगे तब तू उसे बुरी नीयत का समझना, अन्यथा उसे प्रसन्न मानना। अब तू मुझे आज्ञा दे कि मैं अपनी जगह लौट जाऊं। ढकी बात खुल न जाय, इसकी तुझे कोशिश करनी चाहिए। अगर सांझ तक चला जा सके तो देश छोड़ दे, क्योंकि

> "कुल के लिए एक को छोड़ देना चाहिए। गांव के लिए कुल को छोड़ देना चाहिए। जनपद के लिए ग्राम को छोड़ देना चाहिए। अपने लिए दुनिया को छोड़ देना चाहिए।
>
> "आपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए और स्त्रियों से तथा धन से अपनी रक्षा करनी चाहिए।

बलवान से नीचा देखने वाले पुरुष को या तो देश से बाहर चले

जाना चाहिए, अथवा वलवान के साथ मिलकर रहना चाहिए, यही नीति है। इसलिए तुम्हें इस देश का त्याग करना, अथवा साम आदि उपायों से अपनी रक्षा करनी चाहिए। कहा है कि

"पंडित को पुत्रों और स्त्रियों से अपने प्राण की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि ये सब जान रहने पर फिर से मनुष्यों का मिल ही जाते हैं।

और भी

"शुभ अथवा अशुभ, किसी भी उपाय से अपने असमर्थ शरीर को बचाना चाहिए, और समर्थ होने के बाद धर्म की बात करनी चाहिए।

"जिस समय प्राण संकट में हों उस समय जो मूर्ख रुपये-पैसे इत्यादि में मोह करता है उसकी जान चली जाती है, और जान चले जाने पर धन का नाश तो है ही।"

यह कहकर दमनक करटक के पास गया। करटक भी उसको आता देखकर बोला, "भद्र ! तुमने वहां जाकर क्या किया ?" दमनक ने कहा, "मैंने तो वहां नीति का बीज बो दिया है। इससे अधिक काम तो भाग्य के अधीन है। कहा भी है—

"भाग्य विरुद्ध होने पर अपने दोष दूर करने के लिए तथा अपने चित्त को स्थिर करने के लिए चतुर को काम करना चाहिए।

और भी

"उद्योगी पुरुष-सिंह के पास लक्ष्मी आती है। 'भाग्य ही ठीक है', ऐसा तो कायर कहता है। भाग्य को अलग रखकर तू अपनी शक्ति के अनुसार पुरुषार्थ कर; बाद में यत्न करते हुए यदि काम न बने तो इसमें क्या हर्ज है ?"

करटक ने कहा, "यह तो बता कि तूने नीति के बीज कैसे बोये हैं ?" दमनक ने कहा, "मैंने झूठी बातें कहकर उन दोनों के बीच में भेद डाल दिया है। तू फिर उन दोनों को एक जगह बैठकर सलाह करते हुए नहीं

देखेगा।" करटक ने कहा, "अरे! आपस में प्रेम और सुखपूर्वक रहने वाले इन दोनों को तूने क्रोध के समुद्र में डाल दिया है, यह ठीक नहीं। कहा भी है—

"अपने अविरोधी सुख से बैठे मनुष्य को जो दुख के रास्ते ले जाता है, वह पुरुष अवश्य जन्मजन्मांतर में दुखी रहता है।

अगर तू उन दोनों के बीच भेद डालने से ही संतुष्ट है, तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि नुकसान तो सब पहुंचा सकते हैं, पर सब उपकार नहीं कर सकते। कहा भी है—

"नीच आदमी दूसरे का काम खराब करना ही जानता है, वह काम बनाना नहीं जानता। हवा की तेजी पेड़ को नीचे गिरा सकती है, पर ऊपर नहीं उठा सकती।"

दमनक ने कहा, "तू नीति-शास्त्र से अनभिज्ञ है, इसलिए ऐसा कहता है। कहा है कि

"जो मनुष्य पैदा होते ही दुश्मन और बीमारी को शांत नहीं कर देता उसके बड़े मजबूत होने पर भी वे (शत्रु और बीमारी) बढ़कर उसका अन्त कर देते हैं।

हमारे मंत्रिपद को ले लेने से संजीवक हमारा शत्रु हो गया है। कहा है कि

"जो मनुष्य इस संसार में किसी का पुश्तैनी पद लेने का इच्छुक होता है, तो वह उसका सहज शत्रु हो जाता है; अगर वह मोहब्बती भी हो तो उसको मार डालना चाहिए।

मैं बेवकूफी से उसे अभयदान दिलवाकर यहां लाया फिर भी उसने मुझे ही मंत्रि-पद से हटवा दिया। अथवा ठीक ही कहा है—

"सज्जन पुरुष अगर दुर्जन को अपनी जगह घुसने दे तो उस स्थान की स्वयं कामना करता हुआ दुर्जन उसको समाप्त करने की इच्छा करता है। इसलिए विशाल बुद्धि वाले पुरुषों को अधम जनों को मौका नहीं देना चाहिए, क्योंकि एक लोकोक्ति से पता चलता है

कि 'जार घर का मालिक वन वैठा है।'

इसलिए मैंने उसे मारने का यह उपाय रचा है। इससे अगर वह मारा नहीं गया तो देश-त्याग तो होगा। तेरे सिवाय दूसरा इस तरकीव को नहीं जानेगा। अपने मतलव के लिए यह जरूरी है। कहा भी है—

"हृदय को कठोर वनाकर और वाणी को छुरे की तरह तेज़ वना कर विना सोचे-विचारे अपने अपकारी को मार डालना चाहिए।

दूसरे, मरने पर भी वह हमारा भोज्य वनेगा। एक तो वैर का वदला मिलेगा और दूसरे मंत्रिपद और भूख भी मिटेगी। इन तीन लाभों के सामने आते हुए भी तू क्यों मुझे वेवकूफी से दोष देता है? कहा है कि

"दुश्मन को पीड़ित करते हुए और अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हुए पंडित पुरुष वन में रहते हुए चतुरक की तरह चाल लक्ष्य न करे तो उसे वेवकूफ मानना चाहिए।"

करटक ने कहा, "यह कैसे?" दमनक कहने लगा—

वज्रदंष्ट्र सिंह, सियार और भेड़िए की कथा

"किसी वन में वज्रदंष्ट्र नामक सिंह रहता था। उसके चतुरक और क्रव्यमुख नामक क्रमशः एक सियार और भेड़िया नौकर सदैव उसके अनुगत होकर उसी वन में रहते थे। सिंह ने एक दिन एक ऊंटनी को, जिसका प्रसवकाल नजदीक आ गया था और जो उसकी पीड़ा के कारण अपने झुंड से अलग हो गई थी, वन में देखा। उसे मारकर सिंह उसका पेट फाड़ रहा था कि उसमें से जीता-जागता एक ऊंट का वच्चा निकल पड़ा। अपने परिवार के साथ ऊंटनी का मांस खाकर सिंह तृप्त हो गया। वाद में स्नेह के साथ ऊंट के वच्चे को अपने घर ले जाकर कहने लगा, "भद्र! तुझे मृत्यु से, मुझसे अथवा और किसी दूसरे से डर नहीं है। इसलिए तू अपनी मौज से इस वन में घूम। अकुंश की तरह कान होने से मैं तेरा नाम शंकुकर्ण रखता हूं।" यह वात तय हो जाने पर एक साथ विहार करते हुए तथा आपस में संग-साथ के सुखों को अनुभव करते हुए चारों पशु रहने लगे।

जवान शंकुकर्ण एक क्षण के लिए भी सिंह को नहीं छोड़ता था। एक बार वज्रदंष्ट्र की जंगली हाथी के साथ लड़ाई हुई। हाथी ने अपने मदबल से तथा दांतों के प्रहारों से वज्रदंष्ट्र का शरीर इतना चाल डाला कि वह चलने-फिरने में भी असमर्थ हो गया। इस प्रकार भूख से कमजोर उस सिंह ने उन तीनों से कहा, "अरे तुम सब जाकर किसी जीव को खोज लाओ जिसे मैं ऐसी हालत में रहते हुए भी मारकर अपनी तथा तुम्हारी भूख दूर करूं।" यह सुनकर वे तीनों शाम तक वन में घूमे, पर कोई प्राणी नहीं मिला। इस पर चतुरक सोचने लगा कि "अगर शंकुकर्ण मारा जाय तो कुछ दिनों तक हम लोगों की भूख मिटेगी। परन्तु मित्र और आश्रित होने से स्वामी उसे नहीं मारेंगे अथवा अपनी चालाकी से मैं ऐसे समझाऊंगा जिससे वह उसे मार डालें। कहा भी है कि

"इस लोक में बुद्धिमानों की बुद्धि से जिसका नाश न हो सके ऐसा,
जहां जाया न जा सके ऐसी जगह, जो किया न जा सके ऐसा काम,
कोई नहीं है। इसलिए अपनी बुद्धि का उपयोग करना चाहिए।"

ऐसा विचार करके वह शंकुकर्ण से इस तरह कहने लगा, "हे शंकुकर्ण! स्वामी भोजन के बिना भूख से पीड़ित हैं, (अगर वह मर गए तो) मालिक के अभाव में हमारा भी अवश्य विनाश होगा। इसलिए महाराज के लिए तुझसे मैं कुछ कहूंगा, उसे सुन।" शंकुकर्ण ने कहा, "अरे जल्दी कह जिससे बिना किसी खटके के मैं तेरी बात जल्दी ही कर दूं। फिर स्वामी का हित करने से मुझे सौ अच्छे काम करने का फल मिलेगा।" इस पर चतुरक बोला, "हे भद्र! तू अपना शरीर दूने लाभ के लिए स्वामी को अर्पित कर दे, जिससे अगले जन्म में तुझे दुगुना शरीर मिले और स्वामी की जान भी बच जाय।" यह सुनकर शंकुकर्ण ने कहा, "भद्र! अगर यही बात है तो इसके लिए मेरा जो काम है उसे कह स्वामी की आवश्यकता पूरी कर। इस बारे में धर्म मेरा जामिन है।" इस प्रकार आपस में सलाह करके वे सब सिंह के पास गये। बाद में चतुरक बोला, "देव! कोई जानवर नहीं मिला। भगवान सूर्य भी अस्त हो गए हैं, इसलिए यदि स्वामी

दुगुना शरीर दें तो यह शंकुकर्ण दूने शरीर के वदले में धर्म को साक्षी देकर अपना शरीर देने को तैयार है।" सिंह ने कहा, "अगर यह वात है तो इस व्यवहार में धर्म को साक्षी करो।" जैसे ही सिंह ने यह कहा उसी समय भेड़िये और सियार ने उसकी दोनों कोखें चीर डालीं और इस तरह शंकुकर्ण की मृत्यु हो गई।

वाद में वज्रदंष्ट्र ने चतुरक से कहा, "हे चतुरक! मैं जव तक नदी के ऊपर स्नान और देवपूजा कर आऊं तव तक तुम यहां सावधानहोकर रहना।" यह कहकर वह नदी पर चला गया। उसके जाने पर चतुरक सोचने लगा, 'किस तरह मैं अकेले ही इस ऊंट को खाऊं?' ऐसा सोचकर उसने क्रव्यमुख से कहा, "अरे क्रव्यमुख! तू भूखा है। जव तक कि स्वामी न आयें तव तक तू इस ऊंट के मांस को खा, मैं स्वामी के सामने तुझे निर्दोष सावित कर दूंगा।' यह सुनकर क्रव्यमुख ने थोड़ा सा ही मांस खाया था कि चतुरक ने कहा, "अरे क्रव्यमुख, स्वामी आते हैं, इसलिए इस ऊंट को छोड़कर दूर भाग, जिससे उसके खाए जाने की जांच पड़ताल वे न करें।" उसके ऐसा करने के वाद सिंह ने आकर देखा तो उस ऊंट का कलेजा गायव था। इस पर भौंहें चढ़ा कर वह कठोरता से वोला, "अरे, इस ऊंट को किसने जूठा किया है, मुझ से कह जिससे मैं उसको खत्म कर दूं।" ऐसा कहने पर क्रव्यमुख चतुरक के मुख की ओर देखने लगा और कहा, "तू कुछ जवाव दे जिससे मुझे शांति मिले।" इस पर चतुरक हंसकर कहने लगा, "अरे, मेरा अनादर करके मांस खाने के वाद अव तू मेरा मुंह देखता है? तू अपने अविनय रूपी वृक्ष का फल चख।" यह सुनकर अपने मरने के भय से क्रव्यमुख दूर देश को भाग गया।

उसी समय उस रास्ते वोझ से थका हुआ ऊंटों का एक काफिला आया। उसमें सवसे आगे चलते हुए ऊंट के गले में एक वड़ा घंटा वंधा हुआ था। दूर से इस घंटे की टनटनाहट सुनकर सिंह सियार से कहने लगा, "भद्र! पता तो लगा, पहले कभी न सुना गया यह भयंकर शब्द किसका है?" यह सुनकर चतुरक वन में थोड़ी दूर जाकर लौट आया और कहने लगा, "स्वामी, अगर आप भाग सकिये तो फौरन भाग जाइये।" सिंह ने कहा,

"भद्र ! क्यों तू मुझे इतना डराता है। वता तो सही कि क्या वात है ?" चतुरक ने कहा, "स्वामी, धर्मराज आप पर कुपित हैं और 'इस सिंह ने मेरे एक ऊंट को अकाल में मार डाला है,इसलिए मैं उसके पास से सौगुने ऊंट लूंगा,' इस प्रकार निश्चय करके ऊंटों का एक वड़ा झुंड लेकर सवसे आगे चलते हुए ऊंट के गले में घंटा वांधकर तथा मरे हुए ऊंट के प्यारे संवंधियों, उसके पिता , दादा इत्यादि को साथ लेकर वह वैर का वदला लेने के लिए आये हैं।" सिंह यह सुनकर चारों ओर देखकर मरे ऊंट को छोड़ कर अपनी जान वचाने के लिए भाग गया। वाद में चतुरक ने उस ऊंट के मांस को धीरे-धीरे खाया।

इसलिए मैं कहता हूं कि 'दुश्मन को पीड़ित करते हुए और अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हुए पंडित पुरुष वन में रहते हुए चतुरक की तरह लक्ष्य न करे तो उसे वेवकूफ मानना चाहिए।'

दमनक के चले जाने के वाद संजीवक विचार करने लगा, "अरे घास खाने वाला होकर मैं इस मांसखोर पिंगलक का नौकर वना। यह मैंने क्या किया ? अथवा ठीक ही कहा है कि

"जो न जाने लायक आदमियों के पास जाता है और न सेवा करने योग्य की सेवा करता है वह खच्चरी जैसे गर्भ धारण करने से मृत्यु पाती है, उसी तरह मृत्यु पाता है।

तव मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? मुझे शांति कैसे मिलेगी ? अथवा पिंगलक के पास ही जाऊं, शायद मुझे शरणागत जानकर वह मेरी रक्षा करे और मारे नहीं। कहा भी है—

"इस संसार में धर्म के लिए प्रयत्न करने वालों पर यदि विपत्ति आ पड़े तो वुद्धिमान पुरुष को उसकी शांति के लिए विशेष उपाय करना चाहिए, क्योंकि सारी दुनिया में यह कहावत प्रसिद्ध है—'आग से जले हुओं को उसी से निकली गरम सेंक फायदेमन्द होती है।'

और भी

"इस दुनिया में नित्य अपने कर्म-फल को भुगतने वालों तथा नियत क्रियाओं वाले देहधारियों से उनके अन्तर्गत भावों से उपार्जित शुभ या अशुभ काम जैसा बनना होता है वैसा बनता है, इसमें सोचने-विचारने का कोई कारण नहीं है।

अगर मैं कहीं दूसरी जगह भी जाऊँ तब भी किसी मांसाहारी जानवर से मैं मारा जाऊंगा; उससे अच्छा सिंह से मारा जाना ही होगा। कहा भी है—

"बड़ों की बराबरी करने में अगर विपत्ति आवे तब भी ठीक है, पहाड़ तोड़ने के प्रयत्न में हाथी के दांत टूट जाने पर भी वह प्रशंसनीय है। अथवा

"जैसे मदजल का लोभी भौंरा हाथी के कान से मारा जाकर भी प्रशंसनीय है, उसी प्रकार बड़ों से पराभव पाकर भी नीच प्रशंसनीय होता है।"

ऐसा निश्चय करके लड़खड़ाते हुए वह धीरे-धीरे संजीवक सिंह के घर के आगे पहुंचकर कहने लगा, "अरे, यह ठीक ही कहा है कि

"राजा का घर अनेक झूठ बोलने वाले दुष्टों और अनार्यों से घिर कर, छिपे सर्प से युक्त घर के समान, जलते हुए जंगल के समान, अथवा सुन्दर कमलों की कांति से शोभित पर ग्राहों से भरे सरोवर के समान है। भयभीत आदमी समुद्र की तरह राजा के घर में घुसते हुए डरते हैं।"

इस तरह बोलते हुए संजीवक दमनक के कहे अनुसार पिंगलक की भंगिमा देखकर डरते हुए अपने शरीर को सिकोड़कर बिना उसे प्रणाम किये हुए ही दूर जाकर बैठ गया। पिंगलक भी उसे इस प्रकार देखकर दमनक की बात पर विश्वास करते हुए उसके ऊपर क्रोध से टूट पड़ा। सिंह के कठोर नखों से अपनी पीठ चिर जाने पर भी संजीवक उसका पेट सींगों से फाड़ने के लिए किसी प्रकार उससे अलग होकर, सींग से उसे मारने के लिए तैयार होकर लड़ाई में उसके सामने डट गया। उन दोनों को फूले पलाश के वृक्ष जैसे बने और एक दूसरे को मारने पर तैयार देखकर करटक ने दमनक

से कहा, "अरे मूर्ख ! इन दोनों का विरोध वढ़ाकर तूने अच्छा नहीं किया। तू नीति-शास्त्र के तत्व भी नहीं जानता। नीति-शास्त्र के पंडितों ने कहा है कि

"जिन कामों में अतिशय दमन और साहस दिखलाना पड़ता है तथा जिन कामों में वड़ी मेहनत की आवश्यकता पड़ती है उन्हें जो नीतिज्ञ पुरुप मजे से अपनी वुद्धि से केवल डरा-धमका कर ही कर देते हैं, वे ही मंत्री कहलाते हैं; इसके विपरीत दमन से जो निःसार और छोटे नतीजे वाले काम करना चाहते हैं वे अपने मूर्खता भरे कामों से राजलक्ष्मी को तराजू पर चढ़ा देते हैं।

अगर इस लड़ाई में स्वामी मारे गए तो तेरी सलाह किस काम की? अगर संजीवक न मारा गया तो भी कुछ ठीक नहीं होगा, क्योंकि जान खतरें में होने से उसे मरना तो है ही। मूढ़! तू कैसे मंत्रिपद की उम्मीद करता है? भय दिखलाकर तू काम पूरा करना नहीं जानता। केवल दंड पर भरोसा रखने वाले तुझ जैसे का यह मनोरथ वेकार है। कहा भी है–

"ब्रह्मा ने साम से लेकर दंड तक चार नीतियां कही हैं; उनमें दंड पाप का न्याय है, इसलिए उसका प्रयोग सवके अन्त में करना चाहिए।

और भी

"जहां डराकर काम वनता हो वहां वुद्धिमान पुरुप को दंड नहीं वरतना चाहिए। यदि शक्कर से पित्त शांत हो जाता है तो परवल की क्या जरूरत ?

उसी प्रकार

"वुद्धिमान पुरुप को पहले साम का प्रयोग करना चाहिए। साम द्वारा किये हुए काम कभी नहीं विगड़ते।

'शत्रु द्वारा पैदा किया हुआ अंधेरा चन्द्रमा, सूर्य, औपधि-विशेप अथवा आग से नहीं जाता, केवल साम से ही वह मिटता है।

उसी तरह, अगर तू मंत्रिपद चाहता है, तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि

तू मंत्र (राजनीति)की चाल नहीं जानता। मंत्र पांच तरह के हैं – कार्य, साधन का उपाय, देश और काल का विभाग, आपत्ति का प्रतिकार और काम साधना। यहां तो स्वामी और मंत्री में से एक की कौन कहे दोनों का नाश होने वाला है; अगर कुछ जोर है तो इस दुर्घटना के रोकने की तदबीर सोच। झगड़े में सुलह कराने में ही तो मंत्री की अक्ल देखी जाती है। मूर्ख ! तू ऐसा करने में असमर्थ उलटी अक्ल वाला है। कहा है कि

"शत्रु के साथ संधि करने के काम में मंत्रियों की और सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में वैद्यों की बुद्धि की परीक्षा होती है; तन्दुरुस्ती में तो कौन अपने को पंडित साबित नहीं करता ?

"दूसरे का काम बिगाड़ने के लिए ही नीच पैदा होता है। चूहे को अन्न की पेटी गिराने की ताकत तो है पर उठाने की नहीं।

अथवा यह तेरा कसूर नहीं स्वामी का है, जो तेरी बात का विश्वास करता है। कहा भी है—

"नीच जनों का अनुसरण करते हुए जो राजे विद्वानों के बताये हुए रास्ते पर नहीं चलते, वे कठोर और लौटने के रास्ते के बिना, तथा सब अनर्थों के समूह रूपी पिंजरे में घुसते हैं।

तू अगर पिंगलक का मंत्री होगा तो कोई दूसरा सज्जन पुरुष उसके पास नहीं आवेगा। कहा भी है—

"दह के मीठे पानी से भरे होने पर भी अगर उसमें दुष्ट मगर रहता है तो उसके पास कोई नहीं जाता। उसी तरह अगर राजा गुणों का घर भी हो पर उसका मंत्री दुष्ट हो तो उसके पास कोई नहीं जाता।

शिष्ट मनुष्यों से अलग होकर राजा का नाश अवश्यम्भावी है। कहा भी है—

"जो राजे सेवकों की विचित्र और मीठी बातें सुनते हैं और धनुष का प्रयोग न करने वालों का साथ करते हैं उनके ऐश्वर्यों के साथ शत्रु खेल करते हैं।

पर मूर्ख को उपदेश देने से क्या लाभ ? उससे केवल हानि ही होती

है लाभ नहीं। कहा भी है—

"न झुकने वाली लकड़ी झुकती नहीं, पत्थर से छुरे का काम नहीं लिया जा सकता। इस बारे में तू सूचीमुख पक्षी का विचार कर। जो उपदेश लायक नहीं उसे उपदेश नहीं देना चाहिए।"

दमनक ने कहा, "यह कैसे?" करटक कहने लगा—

सूचीमुख और वंदर की कथा

"किसी पहाड़ी देश में वन्दरों का एक झुंड रहता था। एक वार हेमन्त ऋतु में ठंडी हवा के छूने से जिनका शरीर कांप रहा था और जिनके ऊपर मेघ की धाराएं गिर रही थीं ऐसे उस दल के वन्दरों को किसी तरह शांति नहीं मिल रही थी। ऐसे समय कुछ वन्दर अंगारों की तरह लाल घुमचियों को इकट्ठा कर आग जलाने की इच्छा से उन्हें फूंकते हुए आस-पास वैठ गए। इतने में सूचीमुख नाम के एक पक्षी ने उनके इस वृथा-श्रम को देखकर कहा, "अरे! तुम सव-के-सव मूर्ख हो। ये अंगारे नहीं घुमचियां हैं फिर इस वृथा परिश्रम से क्या लाभ? इससे ठंड से तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। तुम सव विना हवा के किसी वन-प्रदेश, गुफा अथवा पर्वत कन्दरा की खोज करो, क्योंकि अव भी वादल घिरे हुए हैं।" उनमें से एक वुड्ढे वन्दर ने कहा, "अरे मूर्ख! इसमें तेरा क्या? इसलिए तू भाग जा।

कहा है कि

"जिसके काम में वार-वार विघ्न आता हो, तथा हारे हुए जुआरी से जो अपना भला चाहता हो, ऐसे वुद्धिमान मनुष्य को वोलना नहीं चाहिए।

और भी

"फिजूल कष्ट उठाते हुए शिकारी और संकट में पड़े मूर्ख के साथ जो वातचीत करता है उसे नुकसान पहुंचता है।"

पर वह पक्षी उस वूढ़े वन्दर का अनादर करते हुए दूसरे वन्दरों से कहने लगा, "अरे, वृथा क्यों कष्ट उठाते हो?" उस पक्षी के किसी तरह

बकवक बन्द न करने पर, आग न जलने से खिसियाते हुए एक बन्दर ने उसके दोनों पंख पकड़कर उसे पत्थर के ऊपर पटक दिया जिससे वह मर गया। इससे मैं कहता हूं कि न झुकने वाली लकड़ी झुकती नहीं, पत्थर से छुरे का काम नहीं लिया जा सकता। इस बारे में तू सूचीमुख पक्षी का विचार कर। जो उपदेश लायक नहीं, उसे उपदेश नहीं देना चाहिए।

"मूर्ख को उपदेश देने से वह शांति का नहीं, वरन् कोप का कारण हो जाता है, सर्पों को दूध पिलाने से केवल उनका विष ही बढ़ता है।

और भी

"ऐरे-गैरों को उपदेश नहीं देना चाहिए, देखो मूर्ख बन्दर ने अच्छे घरवाले को बेघरवाला बना दिया।"

दमनक ने कहा, "यह कैसे?" करटक कहने लगा—

गौरय्या और बन्दर की कथा

किसी एक जंगल में शमी वृक्ष की एक डाल पर घोंसला बनाकर गौरय्ये का एक जोड़ा रहता था। एक बार वह सुखपूर्वक बैठा था कि इतने में हेमन्त ऋतु का बादल धीरे-धीरे बरसने लगा। उसी समय हवा और पानी के झपेड़ों से दुखी शरीर वाला, अपने दांतों की वीणा बजाता हुआ तथा कांपता हुआ एक बन्दर उस शमी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गया। उसको इस अवस्था में देखकर गौरय्या बोली, "हाथ पैर वाला तू आदमी की शकल जैसा दिखलाई पड़ने पर भी ठंड से दुखी है। अरे मूर्ख! तू घर क्यों नहीं बनाता?"

यह सुनकर बन्दर गुस्से से बोला, "तू चुप क्यों नहीं रहती? अरे! इस गौरय्ये की धृष्टता तो देखो, यह मेरी हंसी उड़ा रही है?

"दुराचारिणी और पंडितों जैसी बात करने वाली रांड सूचीमुखी इस प्रकार बकवाद करती हुई डरती नहीं? इसलिए मैं इसे क्यों न मारूं?"

इस प्रकार सोच-विचारकर वन्दर ने उससे कहा, "अरे मूर्ख ! तुझे मेरी चिंता करने की क्या पड़ी है ? कहा है कि

"श्रद्धावान और विशेषकर पूछने वाले से कुछ कहना, चाहिए। अश्रद्धालु से कुछ कहना वन में रोने की तरह है।"

इसलिए बहुत कहने से क्या ; उस घोंसले में रहती हुई गौरय्या को उपदेश देने के लिए वह वन्दर वृक्ष के ऊपर चढ़ गया और उसके घोंसले के सौ टुकड़े कर डाले। इसलिए मैं कहता हूं कि "ऐरे-गैरों को उपदेश नहीं देना चाहिए। देखो, मूर्ख वन्दर ने अच्छे घरवाले को वेघरवाला बना दिया।

मूर्ख ! तुझे मैंने शिक्षा दी है, फिर भी मेरी सीख तुझे लगेगी नहीं। पर इसमें तेरा दोष नहीं है,क्योंकि सीख सज्जनों को ही गुणकारी होती है दुर्जनों को नहीं। कहा है कि

"अंधकार से भरे हुए घट में रखे हुए दीपक के समान कुपात्र को दिया हुआ पांडित्य क्या कर सकता है ?

मैंने वृथा पांडित्य का आसरा लिया है। तू मेरी वात नहीं सुनता और शांत वना है। कहा भी है कि

"शास्त्र को जानने वाले जात, अनुजात, अतिजात और अपजात नाम के पुत्र इस संसार में मानते हैं। जात-पुत्र में माता के समान गुण होते हैं और अनुजात में पिता के समान। अतिजात पुत्र में उनसे वढ़कर गुण होते हैं और अपजात पुत्र निकृष्ट होता है।

"दूसरों को कष्ट पहुंचाकर प्रसन्न होता हुआ पाजी आदमी अपने विनाश की भी गिनती नहीं करता। लड़ाई में जव मस्तक कट जाता है तो प्रायः धड़ नाचता रहता है।

"अरे ! यह ठीक ही कहा है—

"धर्मवुद्धि और कुवुद्धि इन दोनों को मैं जानता हूं। पुत्र ने व्यर्थ पांडित्य के परिणामस्वरूप धुंए से अपने पिता को मार डाला।"

दमनक वोला, "यह कैसे ?" करटक कहने लगा—

धर्मबुद्धि और उसके मित्र की कथा

"किसी नगर में धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम के दो मित्र रहते थे। एक समय पापबुद्धि ने सोचा, "मैं मूर्ख और दरिद्र हूं, इसलिए इस धर्मबुद्धि को साथ लेकर परदेश में जाकर उसकी मदद से धन पैदा करके फिर उसे ठगकर सुखी होऊं।" बाद में एक दिन पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा, "मित्र, बुढ़ापे में तू अपने पहले की बातों के बारे में क्या सोचेगा? बिना देसावर देखे हुए बच्चों से तू क्या बातचीत करेगा? कहा है कि

"धरती की पीठ पर, देशांतरों में घूम-फिरकर जिसने अनेक प्रकार की भाषाओं और पहरावों को नहीं जाना उसका जन्म वृथा है।

उसी प्रकार

"जब तक मनुष्य इस पृथ्वी पर खुशी से एक देश से दूसरे देश में घूमता-फिरता नहीं तब तक वह पूरी तौर से विद्या, धन अथवा कला प्राप्त नहीं कर सकता।"

उसके वचन सुनकर प्रसन्न मन से धर्मबुद्धि बड़ों की आज्ञा लेकर अच्छी साइत में देशांतर की यात्रा पर निकल पड़ा। वहां घूमते हुए धर्म-बुद्धि के प्रभाव से पापबुद्धि ने बहुत धन कमाया। बाद में बहुत धन मिलने से प्रसन्न होते हुए दोनों उत्साहपूर्वक अपने घर लौटने के लिए निकल पड़े। कहा है कि

"देशांतर में रहने वालों को विद्या, धन और कला प्राप्त करने के बाद एक कोस जितनी दूरी सौ योजन जैसी हो जाती है।"

बाद में ये दोनों अपने स्थान के करीब आ पहुंचे। तब पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा, "भद्र! यह सब धन घर ले जाने लायक नहीं है, क्योंकि परिवार वाले और रिश्तेदार इसे मांगने लगेंगे। इसलिए इस गहरे वन में कहीं धन को गाड़कर और थोड़ा-सा लेकर हमें घर चलना चाहिए। फिर जरूरत पड़ने पर हम इस जगह से धन ले जायंगे। कहा है कि

"बुद्धिमान मनुष्य को थोड़ा सा भी धन किसी को दिखलाना नहीं

चाहिए, योंकि धन देखने से मुनि का मन भी चल जाता है।

और भी—

"जिस तरह पानी में मछलियां मांस खाती हैं, पृथ्वी पर जिस तरह हिंसक पशु मांस खाते हैं, और आकाश में जिस तरह उसका पक्षियों द्वारा भक्षण होता है उसी तरह धनवान सब जगह नोचा जाता है।"

यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा, "भद्र ! ऐसा ही करो।" इस प्रकार दोनों अपने धन की व्यवस्था करके अपने घर लौट गए और वह सुखपूर्वक रहने लगे। एक दिन पापबुद्धि आधी रात को जंगल में जाकर और सब माल-मत्ता लेकर और गढ़ा पाटकर अपने घर लौट आया। बाद में एक दिन वह धर्मबुद्धि से आकर कहने लगा, "मित्र ! अधिक परिवार होने से हम दोनों धन के बिना दुखी हैं, इसलिए उस स्थान पर जाकर हमें थोड़ा सा धन ले आना चाहिए।" धर्मबुद्धि ने कहा, "भद्र ! यही करो।" बाद में दोनों ने जाकर उस जगह को खोदा, पर धन का घड़ा खाली था। इस पर पापबुद्धि ने अपना सिर पीटते हुए कहा, "अरे धर्मबुद्धि, तेरे सिवा यह धन और किसी ने नहीं चुराया है, क्योंकि गढ़ा फिर से भरा गया है। दे मुझे आधा धन, नहीं तो मैं राज दरबार में फरियाद करूंगा।" धर्मबुद्धि ने कहा, "अरे बदमाश ! ऐसा मत कह, मैं धर्मबुद्धि हूं, मैं चोरी नहीं कर सकता। कहा भी है—

"धार्मिक पुरुष पर-स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान, और सब जीवों को अपने समान देखते हैं।"

इस प्रकार आपस में झगड़ते हुए और एक दूसरे को दोष देते हुए वे दोनों धर्माधिकारी के पास गये। बाद में अदालत के अधिकारी पुरुषों ने जब उनकी अग्नि-परीक्षा इत्यादि की तैयारी की तो पापबुद्धि ने कहा, "तुम सब यथार्थ न्याय नहीं करते। कहा है कि

"मुकदमे में वादी और प्रतिवादी में लड़ाई चलने पर लेख-पत्र की जांच होती है। लेख-पत्र न होने से गवाह से पूछा जाता है और

गवाह न होने पर दिव्य (अग्नि-परीक्षा इत्यादि) लेने में आती है, यह विद्वानों का कहना है।

इस वारे में वृक्ष देवता मेरे गवाह की तरह हैं। वे ही हम दोनों में से एक को चोर अथवा साहूकार ठहरावेंगे। इस पर उन लोगों ने कहा, "अरे, तूने ठीक ही कहा। कहा भी है—

"जिस मुकदमे मे एक अन्त्यज भी गवाह हो उसमें भी दिव्य की नहीं जरूरत पड़ती, फिर जिसमें देवता गवाह हों उसमें तो दिव्य की जरूरत ही कहाँ रही ?

इस वारे में हम सबको भी वड़ा कुतूहल है। सवेरे तुम दोनों हमारे साथ वन में चलना।"

वाद में पापवुद्धि ने अपने घर जाकर अपने पिता से कहा, "तात ! मैंने धर्मवुद्धि का वहुत-सा धन चुरा लिया है, वह आपकी वात से पच जायगा। नहीं तो मेरी जान के साथ-ही-साथ वह भी चला जायगा।" पिता ने कहा, "वत्स ! जल्दी कह जिससे मैं तेरे कहने के अनुसार तेरे धन में स्थिरता ला सकूं।" पापवुद्धि ने कहा, "तात ! उस प्रदेश में एक वड़ा शमी का वृक्ष है और उसमें एक वड़ा खोखला है। उसके अन्दर आप जल्दी जाकर घुस जाइये और जव सवेरे मैं आप से सच्ची वात कहने को कहूं तो आप कहियेगा कि 'धर्मवुद्धि चोर है।"

इस प्रकार प्रवन्ध हो जाने पर सवेरे नहा-धोकर तथा धर्मवुद्धि को आगे करके पापवुद्धि अधिकारियों के साथ शमी-वृक्ष के पास जाकर ऊंचे स्वर में वोला—

"सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, दिन और रात, दोनों संध्याएं तथा धर्म इतने तत्व मनुष्य का आचरण जानते हैं।

हे भगवति वनदेवते ! हममें से कौन चोर है उसे वताइये।" शमी के वृक्ष के खोखले में वैठे हुए पापवुद्धि के पिता ने कहा, "अरे सुनो ! धर्मवुद्धि ने यह धन चुराया है।" यह सुनकर आश्चर्य-भरी आंखों से राजपुरुष

धर्मबुद्धि को धन की चोरी के लिए शास्त्रानुसार योग्य दंड देने का विचार कर ही रहे थे इतने में धर्मबुद्धि ने शमी-वृक्ष के खोखले के आसपास सुलगने वाली चीजें इकट्ठी करके आग लगा दी। शमी के खोखले के जलने से अध-जले शरीर तथा फूटी आंखों वाला पापबुद्धि का पिता रोता-चिल्लाता बाहर निकला। बाद में सबने पूछा तो उसने पापबुद्धि का सब हाल उन्हें बतला दिया। अन्त में अधिकारियों ने पापबुद्धि को शमी-वृक्ष की शाखा से लटका दिया और धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हुए इस तरह बोले, "अरे यह ठीक कहा है—

"बुद्धिशाली मनुष्य को उपाय तथा विघ्नों का विचार करना चाहिए। मूर्ख बगला देखता ही रहा कि नेवले ने दूसरे बगलों को मार डाला।

धर्मबुद्धि ने कहा, "यह कैसे?" वे कहने लगे —

बगला, काले सांप और नेवले की कथा

"किसी वन में बहुत से बगलों से भरा हुआ एक बड़ का पेड़ था। उसके खोखले में एक काला सांप रहता था। वह बिना पंख के छोटे-छोटे बगलों के बच्चों को खाकर अपना जीवन-यापन करता था। अपने बच्चों के खाये जाने के दुःख से दुखी एक बगला तालाब के किनारे आकर आंसुओं से भरी आंखों के साथ नीचा मुंह करके खड़ा हो गया। उसका ऐसा व्यवहार देखकर एक केकड़े ने कहा, "मामा! तुम किसलिए आज इस तरह रो रहे हो?" वह बोला, "भद्र! मैं क्या करूं? वृक्ष में रहने वाला सर्प मुझ अभागे के बालक खा गया है, उसी दुःख से मैं दुखी हूं। अगर इस सांप के मारने का कोई उपाय हो तो मुझ से कहो।" यह सुनकर केकड़ा विचार करने लगा, "यह बगला तो हमारा सहज शत्रु है, इसलिए उसे ऐसा सच्चा-झूठा उपदेश दूंगा जिससे दूसरे सब बगले भी मारे जायं। कहा है कि

"मक्खन जैसी कोमल वाणी बनाकर और हृदय को निर्दय बना कर शत्रु को ऐसा उपदेश करना चाहिए कि वंशसहित उसका

नाश हो जाय।"

वाद में वह वगले से वोला, "मामा! अगर यह वात है तो नेवले के बिल से सांप के खोखले तक मछली के मांस के टुकड़े रक्खो जिससे नेवला उस रास्ते से जाकर उस दुष्ट सर्प को मार डाले।" वाद में यही किया गया और मछली के मांसवाले रास्ते से जाकर नेवले ने काले सांप को मारने के वाद उस पेड़ पर रहने वाले सव वगलों को भी धीरे-धीरे खा डाला। इसलिए मैं कहता हूं कि धर्मवुद्धि और पापवुद्धि इन दोनों को मैं जानता हूं। पुत्र ने व्यर्थ पांडित्य के परिणामस्वरूप अपने पिता को मार डाला।

इस पापवुद्धि ने उपाय का तो विचार किया पर विघ्न का नहीं, इसका उसे फल मिला। इस प्रकार अरे मूर्ख! तूने पापवुद्धि की तरह उपाय तो विचारा पर विघ्न का ख्याल नहीं किया। तूने स्वामी की जान जोखिम में डाल दी है। इससे मैं जानता हूं कि तू सज्जन नहीं है, केवल पापवुद्धि है। तूने स्वयं अपनी दुष्टता और कुटिलता प्रकट की है। अथवा ठीक ही कहा है कि

"अगर मूर्ख मोर वादल गरजने से आनन्दित होकर नाचने न लगें तो उन के मलद्वार को प्रयत्न करने पर भी कौन देख सकता है?

अगर तू स्वामी की यह हालत कर सकता है तव हमारे जैसों की क्या गिनती है! इसलिए तू मेरे पास न रह। कहा है कि

'हे राजन्! चूहे जहां हजार भर की तराजू खा जायं, वहां वाज वालक को ले उड़े इसमें कोई शक नहीं।"

दमनक ने कहा, "यह कैसे?" करटक कहने लगा—

लोहे की तराजू और वनिएं की कथा

"किसी नगर में जीर्णधन नाम का एक वनिया रहता था। धन कम हो जाने पर देसावर जाने की इच्छा से वह सोचने लगा—

"जिस देश में अथवा स्थान में अपने पुरुषार्थ से सुख भोगा हो वहां गरीवी की हालत में जो रहे उसे पुरुषाधम जानना चाहिए।

उसी प्रकार

"पहले जहां बहुत दिनों तक अभिमानपूर्वक विलास किया हो वहीं अगर मनुष्य गिड़गिड़ाये तो दूसरों के सामने वह निन्दनीय गिना जाता है।"

उसके घर में पुश्तैनी लोहे से गढ़ी एक तराजू थी। उसे किसी सेठ के घर जमा करके वह देसावर चला गया। बहुत दिनों तक मनमाने तौर से विदेशों में घूमकर वह फिर अपने शहर में लौट आया और सेठ से जाकर कहा, "अरे सेठ! हमारी जमा की हुई तराजू तो दे दो।" सेठ ने कहा, "अरे, वह नहीं है। तेरी तराजू तो मूसे खा गए।" जीर्णधन ने कहा, 'सेठ, तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है, अगर उसे मूसे खा गए। संसार ऐसा ही है इसमें कोई चीज हमेशा नहीं रहती। पर मैं नदी में नहाने जा रहा हूं, इसलिए तुम अपने धनदेव नाम के लड़के को नहाने का सामान देकर मेरे साथ कर दो।"

सेठ ने भी अपने चोरी के भय से शंकित होकर अपने लड़के से कहा, "वत्स! ये तुम्हारे चाचा हैं। नहाने के लिए नदी पर जा रहे हैं, इसलिए तुम इनके साथ नहाने का सामान लेकर जाओ।" अहो, यह ठीक ही कहा है कि

"भय, लोभ अथवा अन्य किसी कारण के बिना कोई आदमी केवल भक्ति से ही किसी दूसरे का भला नहीं करता।

और भी

"बिना काम अथवा कारण के अगर किसी की कहीं बड़ी आवभगत हो तो वहां शक करना चाहिए। ऐसी शंका का परिणाम सुखदायक होता है।"

खुशी-खुशी उस सेठ का लड़का नहाने का सामान लेकर अतिथि के साथ चला। इसके बाद जीर्णधन बनिये ने स्नान करके उस लड़के को नदी किनारे की एक गुफा में छिपा दिया और उसका दरवाजा एक बड़े पत्थर से ढांक कर जल्दी से घर लौट आया। इस पर पहले बनिये ने उससे पूछा, "हे अतिथि! मेरा पुत्र तुम्हारे साथ नदी पर गया था, वह कहां है?" उसने

कहा, "नदी के किनारे से उसे वाज झपट ले गया।" सेठ ने कहा, "अरे झूठे, कहीं वाज भी वच्चे को उठा ले जा सकता है? तू मेरे लड़के को लौटा, नहीं तो मैं राज-दरवार में फरियाद करूंगा।" उसने कहा, "अरे सत्यवादी! जैसे वाज लड़के को उठा नहीं ले सकता उसी तरह चूहे भी हजार भर लोहे की वनी तराजू नहीं खा जा सकते। इसलिए अगर तू वालक वापस चाहता है तो मेरी तराजू लौटा दे।" इस प्रकार आपस में लड़ते-झगड़ते वे दोनों राज-दरवार में पहुंचे। वहां सेठ ने ऊंची आवाज में चिल्लाकर कहा, "अब्रह्मण्यम्! अब्रह्मण्यम्! इस चोर ने मेरे लड़के को चुरा लिया है।" इस पर धर्माधिकारियों ने कहा, "अरे! इस सेठ के लड़के को तू लौटा दे।" उसने कहा, "मैं क्या करूं, मैं देख ही रहा था कि नदी के किनारे से वाज लड़के को झपट ले गया।" यह सुनकर सेठ ने कहा, "अरे! तू सच नहीं कहता, क्या वाज भी वालक को उठा ले जाने में समर्थ हो सकता है?" उसने कहा, "मेरी वात सुनिये—

"राजन्! जहां चूहे हजार भर की लोहे की तराजू खा जा सकते हैं वहां अगर वाज वालक को उठा ले जाय तो इसमें क्या शक है?"

उन लोगों ने कहा, "यह कैसे?" इस पर वनिये ने सभ्यों के सामने आदि से अन्त तक सव वातें कहीं। यह सुनकर हँसकर दोनों को उन लोगों ने समझा दिया तथा एक को तराजू तथा दूसरे को वालक दिलवा कर उन्हें संतोष दिया। इसलिए मैं कहता हूं कि हे राजन्! जहां चूहे हजार भर की लोहे की तराजू खा जा सकते हैं, वहां अगर वाज वालक को उठा ले जाय तो इसमें क्या शक है?

इसलिए हे मूर्ख! संजीवक के ऊपर मालिक की कृपा न सह सकने के कारण तूने यह किया है। ठीक ही कहा है

"इस संसार में अधिकतर छोटे कुल वाले अच्छे कुल वाले की, वदनसीव लक्ष्मी के कृपापात्र की, कंजूस दाता की, कुटिल जन भोले आदमी की, निर्धन धनिक की, वदसूरत रूपवान की, पापी

धर्मात्मा की तथा मूर्ख विविध शास्त्रों के विद्वान पुरुष की निन्दा करते हैं ।

उसी प्रकार

"मूर्खगण पंडितों से द्वेष करते हैं, निर्धन धनवानों से द्वेष करते हैं, पापी व्रत करने वालों से द्वेष करते हैं, और कुलटाएं पतिव्रताओं से द्वेष करती हैं ।

हे मूर्ख ! हित करते हुए भी तूने अहित किया है । कहा है कि

"पंडित शत्रु अच्छा है, पर मूर्ख हितैषी अच्छा नहीं है। वंदर ने राजा का नाश किया पर चोर ने ब्राह्मण की रक्षा की ।"

दमनक ने कहा, "यह कैसे ?" करटक कहने लगा —

राजा और वंदर की कथा

"एक वन्दर किसी राजा की सदा सेवा करके उस का खास चाकर वन गया और महल में विना किसी रोक-टोक के घूमता हुआ वह राजा का अत्यन्त विश्वासपात्र वन गया । एक वार जव राजा सो रहा था तो वह वन्दर पंखा लेकर हवा करने लगा । उसी समय राजा की छाती पर मक्खी वैठ गई । पंखे से वार-वार उड़ाये जाने पर भी वह फिर-फिर वहीं वैठने लगी । इसलिए चंचल-स्वभाव वाले उस मूर्ख वन्दर ने क्रोधित होकर तेज तलवार लेकर उस मक्खी पर वार किया । मक्खी तो उड़ गई पर उस तेज धार वाली तलवार से राजा के दो टुकड़े हो गए और वह मर गया । इसलिए दीर्घ जीवन चाहने वाले राजा को मूर्ख सेवक नहीं रखना चाहिए । और भी, किसी नगर में एक वड़ा विद्वान ब्राह्मण पूर्व-जन्म के भोग से चोर की तरह रहता था । उस नगर में दूसरे देश से आये हुए चार ब्राह्मणों को वहुत सा माल वेचते हुए देखकर वह सोचने लगा, "अरे ! किस उपाय से मैं इनका धन ले लूं ?" इस प्रकार विचार करके उनके सामने अनेक शास्त्रों में कही गई सदुक्तियां तथा मीठी-मीठी वातें कहकर उनके मन में विश्वास पैदा करके वह उनकी सेवा करने लगा । अथवा ठीक ही कहा है —

"व्यभिचारिणी स्त्री बनावटी लज्जा दिखलाती है, खारा पानी ठंडा होता है, दंभी मनुष्य विवेकी होता है और धूर्त्त-जन मीठे बोलने वाले होते हैं।"

इस तरह जब वह उनकी नौकरी कर रहा था उसी समय ब्राह्मणों ने अपने सब माल बेचकर कीमती जवाहरात खरीदे। उस ब्राह्मण के सामने ही उन रत्नों को जांघ में छिपाकर दूसरे ब्राह्मणों ने अपने देश जाने की तैयारी की। इस पर वह धूर्त ब्राह्मण उन ब्राह्मणों को देश जाने की तैयारी करते हुए देखकर घबड़ाया। "अरे! इस वन में से तो मुझे कुछ मिला नहीं,इसलिए इन लोगों के साथ जाऊं। रास्ते में किसी तरह इन्हें जहर देकर सब जवाहरात ले लूंगा।" इस तरह सोचकर उन लोगों के सामने वह रोते हुए कहने लगा, "मित्रो! तुम मुझे अकेला छोड़कर जाने के लिए तैयार हुए हो। मेरा मन तो तुम्हारे स्नेहपाश से बंध गया है और तुम्हारे विरह के नाम से ही मैं इतना व्याकुल हो गया हूं कि मेरा धीरज नहीं बंधता। इसलिए तुम सब कृपा करके मुझे अपने साथ सहायक की तरह ले चलो।" उसकी यह बात सुनकर करुण-चित्त ब्राह्मण उसे साथ लेकर अपने देश जाने के लिए निकल पड़े।

रास्ते में वे पांचों जन एक पल्ली (किरातों का गांव) से होकर निकले। इतने में कौए चिल्लाने लगे, "अरे किरातो! दौड़ो, दौड़ो! सवा लाख के धनी जा रहे हैं। उन्हें मारकर धन ले लो।" कौओं की बात सुन कर किरातों ने जल्दी से वहां जाकर डंडे से उन ब्राह्मणों की मरम्मत करके तथा उनके कपड़े उतरवाकर उनकी तलाशी ली, पर कुछ धन नहीं मिला। इस पर किरातों ने कहा, "हे पथिको! पहले कभी भी कौओं की बात झूठी नहीं पड़ी है, इसलिए जो कुछ भी धन तुम्हारे पास हो हमें दे दो नहीं तो सब को मारकर और चमड़ी चीरकर तुम्हारे सब अंगों की हम तलाशी लेंगे।" उनकी यह बात सुनकर चोर ब्राह्मण ने मन में विचार किया, "ये ब्राह्मणों को मारकर उनके अंगों की तलाशी लेकर रत्न ले लेंगे और मुझे भी मार डालेंगे, तो इसलिए मैं पहले ही बिना रत्न

की अपनी देह देकर इन सबको छुड़ा लूं। कहा है कि

"हे मूर्ख ! तू मृत्यु से क्यों डरता है ? डरे हुए को कहीं मृत्यु छोड़ती नहीं। आज अथवा सौ वर्ष के अन्त में प्राणियों की मृत्यु निश्चित है।

उसी प्रकार

"गौ और ब्राह्मण के लिए जो मनुष्य अपना प्राण देता है, वह सूर्य-मंडल भेदकर परम गति को प्राप्त होता है।"

इस प्रकार निश्चय करके उसने कहा, "अरे किरातो ! अगर यही बात है, तो पहले मुझे मारकर मेरी तलाशी लो।" बाद में डाकुओं ने ऐसा ही किया और उसे बिना धन का पाकर दूसरे चारों को भी छोड़ दिया। इसलिए मैं कहता हूं—

"हे मूर्ख, हित करते हुए भी तूने अहित किया है। कहा है कि पंडित शत्रु अच्छा है, पर मूर्ख हितैषी अच्छा नहीं। बन्दर ने राजा का नाश किया पर चोर ने ब्राह्मण की रक्षा की।"

इस तरह जब वे बातचीत कर रहे थे उसी बीच में संजीवक पिंगलक के साथ एक क्षण युद्ध करके उसके तेज नाखूनों की मार से घायल होकर मरकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे मरा हुआ देखकर उसके गुणों के स्मरण से द्रवित पिंगलक बोला, "अरे ! संजीवक को मारकर मैंने बड़ा पाप किया है, क्योंकि विश्वासघात से बढ़कर कोई पाप नहीं। कहा है—

"मित्र-द्रोही, कृतघ्न और विश्वासघाती मनुष्य जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे तब तक के लिए नरक में पड़ते हैं।

"भूमि के क्षय होने पर अथवा बुद्धिमान सेवक के नाश होने पर राज्य का नाश होता है। पर इन दोनों में ठीक समता नहीं, क्योंकि नष्ट हुई जमीन फिर वापस मिल जाती है, पर सेवक नहीं।

मैं सभा के बीच में हमेशा संजीवक की प्रशंसा करता रहा। अब मैं सभासदों के सामने क्या कहूंगा ? कहा है कि

"पहले जिसे सभा में गुणवान कहा हो उसका दोष अपनी प्रतिज्ञा-भंग के डर से मनुष्य को नहीं कहना चाहिए।"

इस तरह विलाप करते हुए पिंगलक के पास आकर दमनक ने खुशी से इस तरह कहा, "देव ! आप का यह न्याय कायरतापूर्ण है कि जिससे द्रोही अथवा घास खानेवाले के मारे जाने के वाद आप इस तरह शोक करते हैं। राजाओं को यह शोभा नहीं देता। कहा है कि

"पिता, भाई, पुत्र, पत्नी अथवा मित्र जो भी जान लेना चाहे उसे मारने वाले को पाप नहीं लगता।

और भी

"दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज्ज स्त्री, दुष्टबुद्धि सहायक, विरोधी सेवक और प्रमादी अधिकारी, इन सब को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वे अपने काम का पता नहीं देते।

और भी

"कितनी वार सच्ची और कितनी वार झूठ से भरी, किसी समय कठोर और किसी समय मिठ-बोली, किसी समय हिंसक तो किसी समय दयालु, किसी वार धन इकट्ठा करने वाली तो किसी वार उदार, किसी वार खूब खर्चने वाली तो किसी वार खूब संग्रह करने वाली, इस तरह राजनीति वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करती है।

और भी

"कोई वड़ा होने पर भी उपद्रव के कारण पूजा नहीं जाता। मनुष्य नागों की पूजा करते हैं, पर नाग मारने वाले गरुड़ की नहीं।

और भी—

"न सोचने लायक के वारे में तुम सोचते हो, और फिर भी भारी वातें कहते हो। पंडित मरे हुए और जीतों के वारे में नही सोचते।"

इस प्रकार उससे समझाये जाकर पिंगलक ने संजीवक का शोक छोड़ दिया और दमनक के मंत्रित्व में राज्य करने लगा।

मित्र-संप्राप्ति

अब मित्र-संप्राप्ति नामक दूसरा तंत्र आरम्भ होता है जिसका यह पहला श्लोक है–

"बुद्धिमान, बहुश्रुत और प्राज्ञ पुरुष बिना साधन के होते हुए भी कौए, चूहे, हिरन और कछुए की तरह अपना काम झटपट सिद्ध कर डालते हैं।

इस बारे में ऐसा सुनने में आता है—

दक्षिण जनपद में महिलारोप्य नामक एक नगर है। उससे थोड़ी दूर पर अनेक तरह के पक्षी जिसका फल खाते थे, अनेक तरह के कीड़े जिसके खोखलों में रहते थे और जिसकी छाया में पथिकों के समूह विश्राम पाते थे,ऐसा एक बहुत ऊंचा बरगद का पेड़ था। अथवा यह ठीक ही कहा है–

"जिसकी छाया में जानवर सोते हैं, जिसकी डालियों पर पक्षियों के झुंड विश्राम लेते हैं, कीड़ों से जिसका कोटर छाया हुआ है, जिसकी डालियों के ऊपर बन्दर आराम करते हैं तथा जिसके फूलों का रस भौंरे बेखटके पीते हैं, ऐसा अपने सब अंगों से बहुत से जीवों के समूहों को सुख देने वाला उत्तम वृक्ष सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय है। दूसरे वृक्ष तो पृथ्वी पर भारस्प हैं।"

उस पेड़ पर लघुपतनक नाम का एक कौआ रहता था। एक समय चारा

चुगने के लिए जब वह शहर की ओर जा रहा था, उसने देखा कि हाथ में जाल लिये हुए काला कलूटा, फटे पैर और खड़े बालों वाला, यम के सेवक की शकल वाला एक आदमी सामने खड़ा है। उसे देखकर वह सोचने लगा, 'यह दुरात्मा मेरे बसेरे बरगद की तरफ आ रहा है, इसलिए आज उस पर रहने वाले पक्षियों का विनाश होगा या क्या होगा यह मैं नहीं जानता।" इस तरह विचार करके बरगद के पेड़ के ऊपर जाकर उसने सब पक्षिओं से कहा, "अरे! यह दुरात्मा बहेलिया जाल और चावल लेकर आ रहा है। उसका तुम्हें बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिए। वह जाल फैलाकर चावल छींटेगा। तुम सब उन चावल के दानों को हलाहल विष मानना।" वह यह कह ही रहा था कि बहेलिये ने जड़ के नीचे आकर जाल फैला कर सिंदुवार के फूलों जैसे सफेद चावल जमीन पर छींट दिए और कुछ दूर जाकर छिपकर खड़ा हो गया। वहां जो पक्षी रहते थे वे भी लघुपतनक की बात से आगाह होकर उन चावल के दानों को हलाहल मानते हुए छिपकर बैठ गए। इसके बाद चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा अपने एक हजार साथियों के साथ जीवन निर्वाह के लिए उड़ते हुए चावल के दानों को दूर से देखते हुए लघुपतनक के मना करने पर भी जीभ के लालच से उन्हें खाने के लिए टूट पड़ा, और साथियों के साथ जाल में फंस गया। अथवा ठीक ही कहा है—

"पानी में रहने वाली बेवकूफ मछलियों की तरह जीभ के लालच में फंसकर अज्ञानियों का अचिंतित नाश होता है।

अथवा भाग्य की प्रतिकूलता से ही यह होता है; उसका इसमें कोई दोष नहीं। कहा भी है—

"पर-स्त्री के हरण का दोष क्या रावण नहीं जानता था? सोने के मृग न होने की संभावना का क्या राम को पता नहीं था? युधिष्ठिर क्या पासों से सहसा अनर्थ में नहीं पड़ गए? पास में आई विपत्ति से जिनका मन मूढ़ हो जाता है उनकी बुद्धि प्रायः मन्द हो जाती है।

और भी

"यम के पाश में बंधे हुए और दैव ने जिनका चित्त कुंठित कर दिया है ऐसे महापुरुषों की भी बुद्धि अधिकतर कमजोर पड़ जाती है।"

इसके बाद बहेलिया उन्हें फंसा जानकर खुश मन से अपनी लाठी उठाकर उन्हें मारने दौड़ा। चित्रग्रीव भी परिवारसहित अपने को फंसा पाकर तथा बहेलिए को आते देखकर कबूतरों से कहने लगा, "अरे! तुम्हें डरना नहीं चाहिए। कहा है कि

"दुःखों में जिसकी बुद्धि मन्द नहीं पड़ती वह उस बुद्धि के प्रभाव से बेशक उन दुःखों से पार पा जाता है।

"संपत्ति और विपत्ति दोनों में बड़े लोग एक-से रहते हैं। सूर्य उगने और डूबने के समय लाल रहता है।

इसलिए हम सब फंदों के सहित जाल के साथ खेल ही में उड़कर उसकी नजरों के बाहर जाकर स्वतंत्र हो जायं। ऐसा न करके डरकर जल्दी से न उड़ने पर तुम सब मारे जाओगे। कहा भी है—

"सूत बारीक होने पर भी अगर एकसा लंबे और मोटे हों तो वे अधिक बल को भी संभाल सकते हैं; यह उपमा सत्पुरुषों पर भी लागू होती है।"

उन्होंने यही किया और जाल लेकर उन उड़ते हुए कबूतरों के पीछे जमीन पर खड़ा बहेलिया दौड़ा। फिर सिर ऊंचा करके एक श्लोक पढ़ा —

"ये पक्षी एका करके मेरा जाल लेकर उड़े जा रहे हैं, पर जब वे आपस में लड़ेंगे तो इसमें शक नहीं कि वे नीचे आ पड़ेंगे।"

लघुपतनक भी चारा इकट्ठा करना छोड़कर 'अब क्या होगा?' इस कुतूहल से उनके पीछे लग गया। उन्हें आंख से ओझल होते देखकर बहेलिया भी निराश होकर यह श्लोक पढ़ता हुआ लौट गया —

"जो नहीं होना होता वह नहीं होता, और जो होना होता है वह होकर ही रहता है; भवितव्यताहीन वस्तु हाथ में आने

पर भी नाश हो जाती है।

उसी प्रकार

"किस्मत के कमजोर होने पर अगर किसी तरह धन मिल भी जाय तो भी वह शंखनिधि (लपोड़शंख) की तरह दूसरे धन को भी साथ लेकर चला जाता है।

इसलिए मेरे लिए पक्षियों का मांस तो दूर रहा कुटुम्ब की रोजी पैदा करने का साधन जाल भी चला गया।"

चित्रग्रीव भी उस बहेलिए को आंख से ओझल जानकर कबूतरों से कहने लगा, "अरे! वह दुरात्मा बहेलिया लौट गया, इसलिए सबको स्वस्थ मन से महिलारोप्य नगर से ईशान दिशा में उड़ना चाहिए। वहां मेरा मित्र हिरण्यक नाम का चूहा सब का बंधन काट देगा। कहा है कि

"सब मरणशील प्राणियों पर जब संकट आ पड़ता है तो सिवाय मित्र के दूसरा कोई बात से भी सहायता नहीं करता।"

इस प्रकार चित्रग्रीव द्वारा संबोधित कबूतर महिलारोप्य नगर में हिरण्यक के किलेरूपी बिल पर जा पहुंचे। हिरण्यक भी सौ मुंह वाले बिल-दुर्ग में घुसकर भयरहित होकर रहता था। अथवा ठीक ही कहा है—

"नीति-शास्त्र में दक्ष चूहा अनागत भय को देखकर सौ मुंह वाली बिल बनाकर वहां रहता था।

'दांतों के बिना सांप और मद के बिना हाथी जैसे सबके वश में हो जाते हैं उसी तरह किले-बिना राजा भी।

और भी

'युद्ध में राजा का जो काम हजार हाथियों और लाख घोड़ों से सिद्ध नहीं होता, वह एक किले से सिद्ध हो जाता है।

'किले की दीवार पर खड़ा हुआ एक धनुर्धारी बाहर के सौ धनुर्धारियों का सामना कर सकता है, इसलिए नीति-शास्त्र जानने वाले दुर्ग की प्रशंसा करते हैं।"

इसके बाद चित्रग्रीव बिल के पास आकर ऊंची आवाज में बोला,

"अरे मित्र हिरण्यक, जल्दी आ, मैं बड़े दुःख में हूं।" यह सुनकर अपने बिल
रूपी किले के अंदर से हिरण्यक बोला–"अरे तुम कौन हो और किसलिए
आये हो ? तुम किसलिए दुखी हो यह कहो।" यह सुनकर चित्रग्रीव ने जब
कहा, "मैं तेरा मित्र चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा हूं। इसलिए
जल्दी से तू निकल, तेरा बहुत काम है।" यह सुनकर पुलकित शरीर, प्रसन्न-
मन और एकाग्रचित्त से हिरण्यक जल्दी से बाहर निकला। अथवा ठीक ही
कहा है—

"प्रेमी और आंखों को सुख देने वाले मित्र नित्य महात्मा गृहस्थों के
घर आते हैं।
"हे तात! सूर्योदय, पान, वाणी, कहानी, मनचाही पत्नी और सन्मित्र
रोज-रोज अपूर्व ही दिखते हैं।
"जिसके घर मित्र नित्य आते हैं उसे जो सुख मिलता है उन सुख
की बराबरी नहीं की जा सकती।"

बाद में परिजनों के सहित चित्रग्रीव को जाल में बंधा हुआ देखकर
हिरण्यक ने विषादपूर्वक कहा, "अरे यह कैसे ?" चित्रग्रीव ने कहा,
"अरे तू जानते हुए भी क्या पूछता है ? कहा भी है कि

"जिस कारण से, जिसके लिए, जिस रीति से, जब, जो, जितना
और जहां मनुष्य का जितना शुभ और अशुभ कर्म होता है उसी से,
उसके लिए, उसी तरह, वैसे ही, उतना ही और वही मनुष्य
को काल के वश प्राप्त होता है।

मुझे यह दुःख जीभ के लालच से मिला है, इसलिए तू अब मुझे
बंधन से छुड़ा, देर मत कर।

"जो पक्षी डेढ़ सौ योजन से मांस देखता है, भाग्यवश वह पास
के ही बंधन को देख नहीं सकता।

उसी प्रकार

"सूर्य और चन्द्रमा का ग्रह द्वारा पीड़न, हाथी, सर्प और पक्षियों का
बंधन और बुद्धिमान पुरुष की दरिद्रता देखकर मेरे मन में विचार

उठता है कि अहो, दैव ही वलवान है।

और भी

"आकाश में अकेले विहार करने वाले पक्षी भी विपत्ति में पड़ जाते हैं। मछुए अगाध पानी में रहने वाली मछलियों को समुद्र में से पकड़ते हैं। इस संसार में कौनसा वुरा काम है और कौन सा अच्छा? अच्छा स्थान मिलने का भी क्या गुण है? काल अपना हाथ फैलाकर दूर से ही सबको पकड़ लेता है।"

यह कहकर उसका वंधन काटने के लिए तैयार हिरण्यक को देखकर चित्रग्रीव ने कहा, "भद्र! ऐसा मत कर। पहले मेरे सेवकों का वंधन काट उसके वाद मेरा भी।" यह सुनकर गुस्से से हिरण्यक ने कहा, "अरे! तूने ठीक नहीं कहा। सेवक तो स्वामी के वाद ही आते हैं।" चित्रग्रीव ने कहा, "भद्र! ऐसा मत कह, ये गरीव मेरे आश्रय में रहते हैं, दूसरे अपने कुटुम्व को छोड़कर मेरे साथ आये हैं, फिर मैं इनकी इतनी भी इज्जत क्यों न करूं? कहा है कि

"जो राजा सेवकों की अधिक इज्जत करता है उसे गरीवी में भी देखकर सेवक उसे कभी नहीं छोड़ते।

उसी प्रकार

"विश्वास सम्पत्ति की जड़ है; इससे हाथी अपने झुंड का सरदार वन वैठता है। सिंह के पशुओं के राजा होने पर भी वे उसकी सेवा नहीं करते।

फिर कहीं पाश काटते हुए तेरे दांत न टूट जायें अथवा दुरात्मा वहेलिया न आ पहुंचे (मेरे नौकर नहीं छूट सकेंगे) और मैं नरक का भागी वनूंगा। कहा है कि

"सदाचारी सेवक दुःख भोगते हों और स्वामी सुख भोगे तो वह नरक में जाता है तथा इस लोक में और परलोक में दुःख पाता है।"

यह सुनकर खुश होकर हिरण्यक ने कहा, "अरे, मैं राज-धर्म जानता हूं। मैंने तो तेरी परीक्षा ली थी, इसलिए पहले मैं सव पक्षियों के वंधन

काटूंगा और इस तरह तू फिर से बहुत से कबूतरों का मालिक बन बैठेगा। कहा है कि

"जो राजा सदाचारी सेवकों के क्लेश पाने पर सुखी होता है
वह नरक जाता है और उसे यहां दुःख मिलता है।

यह कहकर सबका बंधन काटकर हिरण्यक ने चित्रग्रीव से कहा, "मित्र ! तू अपने घर जा, फिर विपत्ति पड़ने पर यहां आना।" इस तरह कबूतरों को विदा देकर वह फिर अपने किले में घुस गया। अपने परिवार के सहित चित्रग्रीव भी अपने घर वापस चला गया। अथवा ठीक ही कहा है

"मित्रों वाला मनुष्य कठिन बातें भी सिद्ध कर लेता है, इस तरह
अपने ही जैसे मित्र बनाने चाहिएं।"

लघुपतनक भी चित्रग्रीव के बंधने और छूटने की सब घटना देखकर और विस्मित होकर विचार करने लगा, "अरे, इस हिरण्यक की बुद्धि, ताकत और दुर्ग की सामग्री कितनी है ! पक्षियों के बंधन से छूटने की यही रीति है। मैं चंचल प्रकृति का होने से किसी का विश्वास नहीं करता फिर भी इसे मैं अपना मित्र बनाऊंगा। क्योंकि कहा है—

"सम्पूर्णतया युक्त होने पर भी विद्वानों को मित्र बनाना
चाहिए। भरा हुआ समुद्र भी चन्द्रोदय की कामना करता है।"

इस तरह सोचकर वह पेड़ पर से उतरा और बिल के दरवाजे पर आकर चित्रग्रीव की बनावटी आवाज में उसने हिरण्यक को बुलाया। "अरे! अरे! हिरण्यक आ, आ !" यह आवाज सुनकर हिरण्यक ने सोचा, "क्या किसी कबूतर का बंधन बच गया है जिससे वह मुझे पुकार रहा है ?" और उसने कहा, "तू कौन है ?" कौए ने कहा, "मैं लघुपतनक नाम का कौआ हूं।" यह सुन कर बिल के और भी भीतर घुसते हुए हिरण्यक ने कहा, "इस जगह से फौरन भाग जा।" कौए ने कहा, "मैं तेरे पास बड़े काम से आया हूं। फिर तू क्यों मुझसे मुलाकात नहीं करता ?" हिरण्यक ने कहा, "तेरे साथ मुलाकात की मुझे जरूरत नहीं है।" लघुपतनक ने कहा, "मैंने तुझसे

चित्रग्रीव का वंधन कटते देखा है, इसलिए मेरा तेरे ऊपर वड़ा प्रेम हो गया है। कदाचित् कभी मैं भी वंधा तो तेरे पास आने पर छूट सकूंगा। इसलिए तू मेरे साथ मित्रता कर।" हिरण्यक ने कहा, "अरे! तू खाने वाला और मैं खाद्य हूं। फिर तेरे साथ मेरी मित्रता कैसी? इसलिए भाग जा। दुश्मन से मित्रता कैसी? कहा भी है—

"जिनका समान धन और समान कुल हो उन्हीं के वीच मित्रता और विवाह होते हैं, वलवान और निर्वलों के वीच नहीं।

और भी

"जो दुर्बुद्धि और मूर्ख अपने से उतरते अथवा चढ़ते अथवा अप से विलग के साथ मित्रता करता है वह लोगों की हँसी का पात्र होता है।

इसलिए तू जा।" कौए ने कहा, "अरे हिरण्यक! मैं तेरे किले के फाटक पर वैठा हूं। यदि तू मुझसे मित्रता नहीं करेगा तो मैं तेरे सामने अपनी जान दे दूंगा अथवा मृत्युपर्यन्त भूखा रहूंगा।" हिरण्यक ने कहा, "अरे! तुझ वैरी के साथ मैं कैसे मित्रता करूं? कहा भी है—

"शत्रु के साथ गहरा मेल चिकनी-चुपड़ी संधि से भी नहीं करना चाहिए, अच्छी तरह से गरम किया हुआ पानी भी आग को वुझा देता है।"

कौए ने कहा, "अरे! तेरे साथ मेरी मुलाकात तक नहीं हुई, फिर शत्रुता का क्या सवाल?" हिरण्यक ने कहा, "वैर दो तरह के होते हैं, सहज और नकली। तू मेरा सहज वैरी है। कहा भी है—

"नकली दुश्मनी नकली गुणों से खतम हो जाती है पर सहज वैर विना मरे कम नहीं होता।"

कौए ने कहा, "दो तरह की शत्रुताओं के मैं लक्षण सुनना चाहता हूं, तू कह।" हिरण्यक ने कहा, "किसी कारण से पैदा हुई शत्रुता वनावटी होती है। योग्य उपचार करने से वह चली जाती है। पर स्वाभाविक शत्रुता कभी नहीं जाती। जैसे नेवले और सर्प की, घास खाने वाले और मांसाहारी की, जल और आग की, देव और दैत्यों की, कुत्ते और विल्ली

की, रईस और गरीब की, सौतों की, सिंह और हाथी की, शिकारी और हरिनों की, श्रोत्रिय और क्रियाभ्रष्ट की, मूर्ख और पंडित की, पतिव्रता और कुलटा की, सज्जन और दुर्जन की। इसमें किसी ने किसी का बिगाड़ा नहीं है, फिर भी एक-दूसरे को सताया करते हैं।" कौए ने कहा, "यह वैर अकारण है। मेरी बात सुन,

"कारण से ही मित्रता होती है और कारण से ही शत्रुता। इसलिए बुद्धिमानी से संसार में मित्रता ही करनी चाहिए, शत्रुता नहीं।

इसलिए मित्र-धर्म के नाते तू मेरे साथ मुलाकात कर।" हिरण्यक ने कहा, "तेरे साथ मेरी मित्रता क्या? तू नीति का सार सुन—

"मित्र होते हुए भी एक बार दुश्मनी होने वाले के साथ जो सुलह करने की इच्छा रखता है वह खच्चरी के गर्भ की तरह मृत्यु का भागी होता है।

'अथवा मैं गुणवान हूं, इससे मेरे साथ कोई दुश्मनी नहीं करेगा,' ऐसा संभव नहीं है! कहा है कि—

"व्याकरण के बनाने वाले पाणिनि के प्रिय प्राणों को सिंह ने हर लिया। मीमांसा शास्त्र के कर्ता जैमिनि मुनि को हाथी ने एकाएक कुचल डाला, छंद-शास्त्र के ज्ञान में समुद्र के समान पिंगल को समुद्र के किनारे मगर ने मार डाला, अज्ञान से जिनका चित्त ढंका हुआ है, ऐसे अत्यन्त क्रोधी पशु-पक्षियों को गुणों से क्या काम?"

कौए ने कहा, "यह बात तो है, पर फिर भी सुन—

"उपकार से लोगों के साथ मित्रता होती है, किसी निमित्त से पशु-पक्षियों की होती है, भय और लालच से मूर्खों की मित्रता होती है, और केवल भेंट से ही सज्जनों की मित्रता होती है।

"दुर्जन मिट्टी के घड़े के समान आसानी से टूट सकता है, लेकिन जुड़ नहीं सकता। सज्जन सोने के घड़े के समान है जो मुश्किल से

तोड़ा जा सकता है, पर सहज ही में जोड़ा जा सकता है ।

"ईख के ऊपरी पोर से नीचे जैसे क्रमशः अधिक रस बढ़ता जाता है, उसी तरह सज्जन की मित्रता है जो विपरीतों के प्रति विपरीत होती है ।

और भी

"आरम्भ में बड़ी और क्रम से छीजने वाली, पहले छोटी और फिर बढ़ने वाली, दिन में सवेरे और दोपहर की छाया के समान खल और सज्जनों की मित्रता होती है ।

मैं सज्जन हूं फिर भी कसम खाकर तुझे निर्भय कर दूंगा ।" उसने कहा, "मुझे तेरी कसमों का विश्वास नहीं है । कहा है कि

"दुश्मन के साथ अगर कसम खाकर भी सुलह की गई हो, फिर भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए । मित्रता की कसम खाने के बाद भी इन्द्र ने वृत्रासुर को मार डाला ।

"देवता भी विना विश्वास पैदा किये हुए शत्रु को वश में नहीं कर सकते । विश्वास का लाभ उठाकर इन्द्र ने दिति के गर्भ को चीर डाला था ।

और भी

"जो अपनी उन्नति, जिंदगी और सुख की इच्छा करता हो ऐसे बुद्धिमान पुरुष को बृहस्पति का भी विश्वास नहीं करना चाहिए ।

और भी

"पानी का वेग धीरे-धीरे नाव में रसकर जैसे उसे डुबा देता है, उसी तरह अत्यन्त पतले छेद से भी भीतर घुसकर शत्रु नाश करता है ।

"अविश्वासी का विश्वास नहीं करना चाहिए और विश्वासी का भी बहुत विश्वास नहीं करना चाहिए । विश्वास से उत्पन्न भय जड़ों को ही काट देता है ।

"अविश्वासी दुर्बल को बलवान मार नहीं सकता । पर बलवान

विश्वासी को कमजोर भी झट मार सकते हैं।

"विष्णुगुप्त के अनुसार सत्कृत्य करना, भार्गव के अनुसार मित्र प्राप्त करना और बृहस्पति के अनुसार किसी का विश्वास न करना, ये तीन प्रकार के नीति मार्ग हैं।

और भी

"अपने से प्रेम न करने वाली स्त्री के और शत्रु के पास बहुत सी दौलत रखकर जो उनके ऊपर विश्वास रखता है उसके जीने का वहीं अंत हो जाता है।"

यह सुनकर लघुपतनक भी निरुत्तर होकर सोचने लगा, 'अहो, नीति के विषय में इसकी बुद्धि कितनी कुशल है! अथवा इसी कारण मेरा इसके साथ बरबस मित्रता करने का इरादा हुआ है।' बाद में वह बोला, "हिरण्यक!

"विद्वान कहते हैं कि सज्जनों की सात कदम एक साथ चलने से ही मित्रता हो जाती है, इसलिए तुझे मित्रता तो मिल गई है। मेरी बात सुन—अगर मेरा विश्वास न होता हो तो अपने बिल-दुर्ग में ही रहते हुए गुण-दोष आदि दिखाने वाले सुभाषितों और कथाओं की बातचीत तू मुझसे करना।"

यह सुनकर हिरण्यक ने विचार किया, "यह लघुपतनक बोलचाल में होशियार और सच्चा दिखलाई देता है, इसलिए इसके साथ मित्रता करना ठीक है।" यह विचारकर उसने कहा, "भद्र! यही बात है तो तेरे साथ मेरी मित्रता ठीक होगी। पर तुझे कभी मेरे किले में पैर नहीं रखना चाहिए। कहा है कि

"शत्रु पहले धीरे-धीरे डरते हुए पृथ्वी पर डग भरता है, फिर जैसे जार का हाथ स्त्री के ऊपर पड़ता है उसी तरह वह जल्दी से आगे बढ़ता है।"

यह सुनकर कौए ने कहा, "भद्र! ऐसा ही हो।" उस दिन से दोनों बातचीत और संग-साथ करते हुए तथा एक दूसरे का उपकार करते

हुए समय बिताने लगे।

लघुपतनक भी प्रेमपूर्वक मांस के टुकड़े, बलि के बचे भाग और दूसरे पकवान हिरण्यक के लिए लाता था। हिरण्यक भी रात में चावल और दूसरे भोज्य पदार्थ लघुपतनक के लिए लाकर ठीक समय आने पर उसे उन्हें देता था। अथवा दोनों ही के लिए यह ठीक था। कहा है कि

"देना और लेना, गुप्त बातें कहना और पूछना, खाना और खिलाना, प्रेम के ये छ लक्षण हैं।

"उपकार किये बिना किसी की कभी प्रीति नहीं होती, क्योंकि देवता भी मन्नत करने से ही मनचाही चीज देते हैं।

"जबतक चीज देने में आती है, तभी तक इस संसार में मित्रता रहती है। बछड़ा भी दूध की कमी देखकर अपनी मां को छोड़ देता है।

"तुरन्त ही विश्वास दिलाने वाला दान का माहात्म्य देख, जिसके प्रभाव से क्षण-भर में ही शत्रु मित्र हो जाता है।

"बुद्धिरहित पशु की दृष्टि में भी दान पुत्र से बढ़कर है, यह मैं मानता हूं, क्योंकि खाने के लिए खली देने से बच्चे वाली भैंस भी अधिक दूध देती है, यह तो देखो।

"चूहे और कौए ने नाखून और मांस की तरह, गाढ़ी और दुर्भेद्य प्रीति करके, कृत्रिम मित्रता पाई।

इस तरह कौए के उपकारों से प्रसन्न होकर चूहे का विश्वास इतना बढ़ गया कि वह कौए के पंख के नीचे घुसकर हमेशा उसका संग-साथ करने लगा।

एक दिन आंखों में आंसू भरकर कौआ चूहे के पास आकर भरी आवाज से कहने लगा, "भद्र हिरण्यक ! इस देश से मैं घबरा गया हूं, इसलिए मैं दूसरी जगह जाता हूं।" हिरण्यक ने कहा, "भद्र ! विरक्ति का कारण क्या है?" उसने कहा, "भद्र! सुनो इस देश में पानी बिलकुल न बरसने से अकाल पड़ गया है। अकाल से भूखे लोग बलि भी नहीं देते। दूसरे घर-घर भूखे

लोग चिड़ियों को फंसाने के लिए जाल फैलाये बैठे हैं। मैं भी उस जाल में फंस गया था, पर जिंदगी बाकी रहने से मैं उसमें से निकल आया। यही विरक्ति का कारण है। विदेश जाने के लिए तैयार होकर मैं इसीलिए रो रहा हूं।" हिरण्यक ने कहा, "तुम कहां जा रहे हो?" उसने कहा, "दक्षिणापथ के एक गहन वन के बीच एक बड़ा तालाब है। वहां तुझसे भी अधिक मेरा परम मित्र मंथरक नाम का कछुआ रहता है। वह मुझे मछलियों के मांस के टुकड़े देगा जिन्हें खाकर उसके साथ बातचीत और संग-साथ का मजा उठाते हुए मैं अपना समय बिता दूंगा। मैं यहां जाल में फंसकर चिड़ियों का मारा जाना देखना नहीं चाहता। कहा भी है—

"हे भाई! सूखा पड़ने से, देश वीरान हो जाने पर और अन्न का नाश हो जाने पर भी धन्य हैं वे जो देश का भंग और कुल का क्षय नहीं देखते।

"समर्थों के लिए बहुत बोझ क्या है? व्यवसाइयों के लिए दूरी क्या है, विद्वानों के लिए विदेश क्या है और प्रियवादियों के लिए दूसरा कौन है?

"विद्वत्ता और राज्यसत्ता कभी भी एक समान नहीं हैं। राजा अपने देश में पूजा जाता है पर विद्वान सब जगह पूजा जाता है।

हिरण्यक ने कहा, "अगर यही बात है तो मैं भी तेरे साथ चलूंगा। मुझे भी बहुत तकलीफ है।" कौए ने कहा, "अरे! तुझे कौनसा दुःख है, उसे तो कह।" हिरण्यक ने कहा, "अरे! इस बारे में बहुत कुछ कहना है। वहां जाकर विस्तारपूर्वक कहूंगा।" कौए ने कहा, "मैं तो आकाश-मार्ग से जाने वाला हूं, तो तू फिर मेरे साथ कैसे चलेगा?" उसने कहा, "अगर तू मेरी जान बचाना चाहता है तो अपनी पीठ पर बैठाकर मुझे वहां पहुंचा। मैं किसी दूसरी तरह से वहां नहीं पहुंच सकता।" यह सुनकर कौआ बड़ी खुशी के साथ बोला, "अगर यह बात है तो मैं अपने को धन्य मानता हूं, क्योंकि वहां भी मैं तेरे साथ समय बिता सकूंगा। मैं संपात आदि उड़ने के आठ तरीकों को जानता हूं। इसलिए तू मेरी पीठ पर चढ़, जिससे मैं तुझे सुखपूर्वक सरोवर के पास ले

जाऊं।" हिरण्यक ने कहा, "उड़ने के उन तरीकों का नाम मैं सुनना चाहता हूं।" उसने कहा—

"सम्पात (धीरे से सीधा उड़ना), विप्रपात (एकाएक उड़ना), महापात (जोर से उड़ना), निपात (उड़ते हुए नीचे आना), वक्र-पात (टेढ़े-मेढ़े उड़ना), तिर्यक पात (तिरछे उड़ना), ऊर्व पात (ऊंचे उड़ना) और लघुपात (चपलता से उड़ना), ये उड़ने के तरीके हैं।"

यह सुनकर हिरण्यक उसी क्षण कौए पर सवार हो गया। कौआ भी धीरे-धीरे उसे लेकर, सम्पात गति से उड़ते हुए क्रम से उस तालाव पर पहुंचा। बाद में चूहे को सवार कराये लघुपतनक को देखकर, 'यह कोई अजीव कौआ है,' यह मानकर देश-काल को जानने वाला मंथरक जल्दी से पानी में घुस गया। लघुपतनक भी किनारे के वृक्ष के खोंकले में हिरण्यक को रखकर उसकी एक शाख पर बैठकर ऊंचे स्वर से कहने लगा, "अरे मंथरक, आ! आ! मैं लघुपतनक नामक तेरा काग-मित्र बहुत दिनों के बाद तुझसे मिलने की उत्कंठा से आया हूं। तू आकर मुझ से भेंट कर। कहा है कि

"कपूर मिले हुए चन्दन से क्या? ठंडे वरफ से क्या? ये सब मित्र के देह की (भेंट से मिली ठंडक) के सोलहवें भाग के भी बरावर नहीं।

और भी

"मित्र, इन अमृत-रूपी दो अक्षरों को, जो आपत्तियों से रक्षा करते हैं और शोक और संताप की औषध स्वरूप हैं।" किसने बनाया?"

यह सुनकर लघुपतनक को अच्छी तरह से पहचानकर पानी के बाहर निकलकर रोमांचित शरीर तथा आनन्द के आंसुओं से भरी आंखों से मंथरक बोला, "आओ! आओ मित्र! मुझसे भेंटो। बहुत समय बीत जाने से मैंने तुम्हें ठीक-ठीक नहीं पहचाना, इसी से पानी के अन्दर घुस गया था। कहा है कि

"जिसका पराक्रम, कुल और आचार के विषय में कुछ पता न हो

उसका साथ न करना चाहिए , ऐसा बृहस्पति का कहना है ।"

उसके ऐसा कहने पर , लघुपतनक ने पेड़ से नीचे उतरकर उसका आलिंगन किया । अथवा, ठीक ही कहा है कि

"अमृत-प्रवाह से शरीर को नहलाने से क्या ? बहुत दिनों बाद मित्र से भेंट न मिले तो अमूल्य है ।"

इस प्रकार दोनों पुलकित शरीर से एक-दूसरे के साथ भेंटकर पेड़ के नीचे बैठकर अपनी-अपनी बातें कहने लगे । हिरण्यक भी मंथरक को प्रणाम करके कौए के पास बैठ गया । उसे देखकर मंथरक ने लघुपतनक से पूछा, "अरे यह चूहा कौन है ? तेरा खाद्य होते हुए भी तू इसे कैसे अपनी पीठ पर चढ़ाकर यहां लाया ? इसके पीछे कोई छोटा कारण नहीं हो सकता ।" यह सुनकर लघुपतनक ने कहा, "यह हिरण्यक नाम का चूहा है; यह मेरा मित्र और मेरे दूसरे जीवन के समान है । इससे अधिक क्या कहूं,

"पानी की धाराएं, आकाश के तारे और बालू के कण जिस तरह असंख्य होते हैं उसी तरह इस महात्मा के गुण असंख्य हैं । यह अत्यंत दुख पाकर तेरे पास आया है ।"

मंथरक ने कहा , "इसके वैराग्य का क्या कारण है ?" कौए ने कहा, "मैंने पूछा था , पर उसने कहा, बहुत कुछ कहना है, इसलिए वहीं जाकर कहूंगा,' इसलिए मुझसे भी उसने कुछ नहीं कहा है । भद्र हिरण्यक ! अब तू हम दोनों से अपने वैराग्य का कारण कह । हिरण्यक कहने लगा —

परिव्राजक और चूहे की कथा

"दक्षिण जनपद में महिलारोप्य नाम का एक नगर है । वहां से कुछ ही दूर पर भगवान् शिव का मठ था । वहां ताम्रचूड़ नाम का एक संन्यासी रहता था । वह नगर में भीख मांगकर अपना जीवन यापन करता था । भीख से बची चीजों को भिक्षा-पात्र में रखकर और उसे खूंटी पर लटकाकर बाद में वह सोता था । सवेरे मजदूरों को वह अन्न देकर देव-मंदिर में झाड़ दिलाने, लीपने और सजाने का काम करवाता था । एक दिन मेरे साथी ने

मुझसे कहा,"स्वामी! मठ में चूहों के भय से पका हुआ अन्न भिक्षा-पात्र में सदा खूंटी से लटका रहता है, जिससे हम उसे नहीं खा सकते हैं। स्वामी के लिए कोई वस्तु अगम्य नहीं है, फिर इधर-उधर फिजूल भटकने से क्या फायदा? आज आप की कृपा से हम वहां जाकर मनमाना अन्न खायेंगे।" यह सुनते ही सदलवल मैं उसी समय वहां पहुंचा, तथा कूद कर उस भिक्षा पात्र पर चढ़ गया। वहुत सी खाने की चीजों को अपने सेवकों में वांटकर मैंने स्वयं भी खाया। सवके तृप्त हो जाने पर हम सव घर लौट आये।

इस तरह रोज मैं उसका अन्न खाता था। परिव्राजक भी भरसक उसकी रक्षा करता था। पर जैसे ही वह सोने लगता था, मैं वहां जाकर अपनी जैसी कर लेता था।

वाद में मुझे रोकने के लिए उसने एक दूसरी तरकीव रची और उसके लिए वह एक फटा वांस लाया। सोते हुए भी मेरे भय से वह वांस से भिक्षा-पात्र ठकठकाता रहता था। मैं भी विना अन्न खाए हुए मार के डर से भागता था। इस तरह उसके साथ सारी रात मेरी लड़ाई चलती रहती थी।

एक वार उसके मठ में वृहत्स्फिक् नाम का उसका मित्र परिव्राजक तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में अतिथि होकर आ गया। उसे देखकर ताम्रचूड़ ने उसकी आवभगत की और अतिथि-क्रिया से उसका सत्कार किया। वाद को रात में वे दोनों एक कुश की चटाई पर लेटकर धर्म-कथा कहने लगे। चूहे के डर से घवराया हुआ ताम्रचूड़ फटे वांस से भिक्षा-पात्र ठकठकाते हुए वृहत्स्फिक् की कथा-वार्ता का कोरा जवाव देता था और भिक्षा-पात्र की तरफ ध्यान होने से कुछ वोलता न था। इस पर अभ्यागत ने अत्यन्त क्रोधित होकर उससे कहा, "ताम्रचूड़! तू मेरा सच्चा मित्र नहीं है, यह मैंने जान लिया। इसीलिए हंसी-खुशी से तू मुझसे वातचीत नहीं करता। मैं इसी रात तेरा मठ छोड़कर दूसरे किसी मठ में चला जाऊंगा। कहा है कि

"'आइए', 'पधारिए', 'विश्राम कीजिए', 'यह आसन है', 'क्यों वहुत दिनों के वाद दिखलाई दिए?' 'क्या समाचार है?' 'वड़े दुर्वल

हो गए हैं !' 'कुशल तो हैं ?,' 'आपके दर्शन से मैं प्रसन्न हूं,' घर आये हुए स्नेही जनों को इस प्रकार आदर से जो आनंदित करता है, उसके घर में हमेशा बेधड़क होकर जाना चाहिए।

"जिस घर का मालिक आये हुए अतिथि को देखकर दिशाओं की ओर अथवा नीचे देखता है, उस घर में जो जाता है वह बिना सींग का बैल है।

"जहां आगे आकर आदर नहीं किया जाता, जहां मीठी-मीठी बातचीत नहीं होती और गुण-दोष की भी बात नहीं होती, उस महल में जाना ठीक नहीं।

एक मठ पाकर ही तुझे घमंड हो गया है और तूने मित्र-स्नेह छोड़ दिया है। पर क्या तू यह नहीं जानता कि इस मठ में ठहरने के बहाने तू ने नरक कमाया है ? कहा भी है —

"अगर नरक जाना है तो एक बरस पुरोहिती का काम कर, अथवा दूसरे उपाय का क्या काम है ? कर तीन दिन मठ की चिन्ता !

इसलिए तू शोचनीय घमंड में आ गया है। मैं तेरे मठ को छोड़कर जाता हूं।" यह सुनकर भयभीत होकर ताम्रचूड़ ने कहा "भगवान्! ऐसा मत कहिए। आपके जैसा मेरा कोई दूसरा मित्र नहीं है। आप इस संग-साथ में ढिलाई का कारण सुनिए। यह दुरात्मा चूहा ऊंचे स्थान पर रखे हुए भिक्षा-पात्र पर कूदकर चढ़ जाता है और भिक्षा से बचा अन्न खा जाता है। अन्न के अभाव से मठ में झाड़ू भी नहीं पड़ सकती। इसलिए चूहे को डराने के लिए मैं बार-बार भिक्षा-पात्र को ठोंकता हूं, और दूसरा कोई कारण नहीं है। इस बदमाश चूहे का कौतुक देखिए कि वह अपनी उछल-कूद से बिल्ली और बन्दर को भी पछाड़ देता है।" बृहत्स्फिग् ने कहा, "क्या तू जानता है कि उसका बिल कहां है ?" ताम्रचूड़ ने कहा, "मैं ठीक-ठीक नहीं जानता।" उसने कहा, "निश्चय ही उसका बिल खजाने के ऊपर है, इसीलिए वह धन की गरमी से कूदता है। कहा भी है—

"धन की गरमी ही प्राणियों का तेज बढ़ा देती है, फिर त्याग और

कर्म के साथ उसके उपभोग का तो कहना ही क्या ?

और भी

"शाण्डिली की माता बिना छँटे तिल एकाएक नहीं वेचती, इसमें कोई कारण जरूर होना चाहिए ।"

ताम्रचूड़ ने कहा, "यह कैसे ?" वह कहने लगा —

शाण्डिली द्वारा तिल-चूर्ण वेचने की कथा

"किसी स्थान में वरसात में व्रत करने के लिए किसी ब्राह्मण से मैंने रहने के लिए प्रार्थना की। मेरी वात मानकर उस ब्राह्मण ने मेरी सेवा की और देवता की पूजा करता हुआ मैं सुखपूर्वक रहने लगा। एक दिन सवेरे जागकर मैं ध्यानपूर्वक ब्राह्मण और ब्राह्मणी का संवाद सुनने लगा। ब्राह्मण ने कहा, "ब्राह्मणी, सवेरे अनन्त दान का फल देने वाली दक्षिणायन संक्रांति पड़ेगी। मैं भी दान के लिए दूसरे गांव में जाऊंगा। तू भी भगवान सूर्य-देव के निमित्त किसी ब्राह्मण को कुछ भोजन दे देना।" यह सुनकर ब्राह्मणी ने उसे कठोर वचनों से धिक्कारते हुए कहा, "तुझ दरिद्र को भोजन कहां से मिलेगा ? ऐसा कहते हुए तुझे लाज भी नहीं आती? और तेरे हाथ पकड़ने के वाद मैंने कभी सुख नहीं पाया। न तो मिठाइयों का स्वाद ही चखा, न हाथ-पैर और गले के आभूषण ही मुझे मिले।" यह सुनकर डरा हुआ ब्राह्मण वोला, "ब्राह्मणी, तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए। कहा है—

"एक कौर में से आधा कौर मांगने वालों को क्यों न दिया जाय ? इच्छानुसार धन तो किसे कहां मिलने वाला है ?

"धनवान प्राणी वहुत धन दान देने से जो फल प्राप्त करता है, वह गरीब आदमी एक कौड़ी देकर भी प्राप्त करता है, ऐसा हमने सुना है।

"देने वाला छोटा भी सेवा करने लायक है, कंजूस वड़ा रईस हो तो भी सेवा लायक नहीं है। मीठे पानी से भरा हुआ कुंआ लोगों

को प्रिय होता है, समुद्र नहीं ।

और भी

जिसने दान देकर महिमा नहीं प्राप्त की है उसे राज-राज (महाराजा अथवा कुबेर) ऐसा झूठा नाम देने से क्या मतलब ? निधियों के रक्षक (कुबेर) को विद्वान महेश्वर नहीं कहते ।

और भी

"उत्तम हाथी सदा दान (मद-जल अथवा दान देने वाला) से छीज जाने पर भी प्रशंसा के योग्य गिना जाता है, पर शरीर से पुष्ट होते हुए भी दानरहित होने से गदहा निन्दित गिना जाता है ।

"सुशील और सुवृत्त घड़ा भी, बिना दान के नीचे रहता है, पर कानी-कुबड़ी ककड़ी दान के लिए ऊपर रहती है ।

"बादल पानी देने से लोगों का प्रिय होता है पर मित्र (सूर्य) अपने कर (हाथ अथवा किरण) आगे बढ़ाता है, फिर भी देख नहीं पड़ता । (अर्थात् तुच्छ वस्तु के देने वाले प्रिय हो जाते हैं । पर यदि मित्र हाथ बढ़ाए तो उसके सामने कोई नहीं देखता ।)"

यह जानकर गरीब आदमी को भी यथासमय थोड़ा-से-थोड़ा सुपात्र को देना चाहिए । कहा है कि

"दान लेने वाला सुपात्र हो, बड़ी श्रद्धा हो और यथोचित देश-काल हो तो बुद्धिमानों द्वारा दिया गया दान अत्यन्त फल देने वाला होता है ।

और भी

"अत्यन्त लालच नहीं करना चाहिए और लालच बिलकुल छोड़ना भी नहीं चाहिए । अत्यन्त लालची के मस्तक में चोटी जम जाती है ।"

ब्राह्मणी ने कहा, "यह कैसे ?" उसने कहा —

भील, सूअर और सियार की कथा

"किसी वन में एक भील रहता था। वह शिकार करने के लिए वन की ओर चला। फिरते-फिरते उसने काजल के पहाड़ की चोटी की तरह एक सूअर देखा। उसे देखकर कान तक खींचे हुए तीखे वाण से भील ने उसे घायल कर दिया। सूअर ने भी क्रोधित होकर वाल-चन्द्र जैसे कांति वाले अपने दांत की नोक से उसका पेट फाड़ डाला और भील मरकर जमीन पर गिर पड़ा। शिकारी को मारकर सूअर भी लगे हुए तीर की वेदना से मर गया। इसी वीच में जिसकी मौत आ गई थी ऐसा सियार भूख से पीड़ित होकर इधर-उधर भटकता हुआ उस प्रदेश में आ पहुंचा। जब उसने सूअर और भील दोनों को देखा तब वह प्रसन्न होकर सोचने लगा, "अरे! भाग्य मेरे अनुकूल है, इसलिए विना सोचे हुए यह भोजन मेरे सामने आ गया है। अथवा ठीक ही कहा है—

"उद्यम न करने पर भी दूसरे जन्म में किये हुए कार्यों का शुभ अथवा अशुभ फल मनुष्यों को दैवयोग से मिलता है।

उसी तरह

"जिस देश में, काल में और वय में शुभ अथवा अशुभ काम किया गया हो, उसका उसी तरह भोग करना पड़ता है।

इसलिए मैं ऐसे खाऊंगा जिससे वहुत दिनों तक मेरा गुजारा हो। पहले तो मैं धनुष के छोरों पर लगी हुई तांत की डोरी खाऊंगा। कहा भी है कि

"वुद्धिमान पुरुषों को स्वयं पैदा किये हुए धन को रसायन की तरह धीरे-धीरे खाना चाहिए, जल्दी नहीं करनी चाहिए।"

इस तरह मन में निश्चय करके धनुष की टेढ़ी छोर अपने मुख में लेकर तांत खाने में वह लग गया। पर फंदे के टूटने से धनुष का छोर उसके तलवे को फोड़ता हुआ मस्तक के वीच से निकल गया और उस चोट से वह फौरन मर गया। इसलिए मैं कहता हूं कि अत्यन्त लालच नहीं

करना चाहिए। अत्यन्त लालची के मस्तक में चोटी जम जाती है।"

ब्राह्मण ने पुनः ब्राह्मणी से कहा, "अरे ब्राह्मणी! क्या तुमने नहीं सुना है आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु, ये पांचों प्राणी के गर्भ में रहते ही बन जाते हैं?"

ब्राह्मण द्वारा इस तरह समझाए जाने पर ब्राह्मणी बोली, "अगर ऐसी बात है तो मेरे घर में थोड़ा सा तिल है। उस तिल को छांटकर, तिल-चूर्ण से मैं ब्राह्मण-भोजन कराऊँगी।" यह सुनकर ब्राह्मण दूसरे गांव चला गया। ब्राह्मणी ने भी उन तिलों को गरम पानी में मलकर और छांटकर धूप में रख दिया। इसके बाद उसके घर के काम में लग जाने पर तिल में किसी कुत्ते ने पेशाब कर दिया। यह देखकर वह सोचने लगी, "यह टेढ़े भाग की चतुराई तो देखो जिसने इन तिलों को न खाने योग्य बना दिया! इसलिए मैं इन्हें लेकर और किसी के घर जाकर छांटे हुए तिल की जगह बिना छांटे हुए तिल बदल लाऊंगी। इस तरह सब लोग मुझे तिल देंगे।"

जिस घर में मैं भिक्षा के लिए आया था उसी घर में वह भी तिल बेचने के लिए आई और कहा कि "बगैर छंटे हुए तिलों के बदले में यह छंटे हुए तिल ले लो।" उस घर की मालकिन आकर जब तक बगैर छंटे हुए तिल से छंटे हुए तिलों का बदला करे, तब तक उसके पुत्र ने कामंदकि नीति-शास्त्र देखकर कहा, "मां, यह तिल लेने लायक नहीं है। बगैर छंटे हुए तिल के बदले में तुझे इसका छंटा हुआ तिल नहीं लेना चाहिए। इसमें कोई कारण जरूर होगा, जिससे यह बिना छंटे हुए तिल की जगह छंटे हुए तिल दे रही है।" यह सुनकर उसने छंटे तिलों को छोड़ दिया। इसलिए मैं कहता हूं कि शाण्डिली की माता बिना छंटे तिल एकाएक नहीं बेचती। इसमें कोई कारण जरूर होना चाहिए।"

यह कहकर पुनः बृहत्स्फिक् कहने लगा, "इस चूहे के आने का रास्ता क्या तुम जानते हो?" ताम्रचूड़ बोला, "भगवन्! मैं जानता हूं, क्योंकि यह अकेला नहीं आता, पर मेरे देखते हुए भी अपने असंख्य गिरोह से घिरा हुआ इधर-उधर दौड़ते हुए अपने असंख्य परिवार के साथ आता है और

जाता है।"

अतिथि ने कहा, "क्या कोई खनता है?" उसने उत्तर दिया, "हां, यह लोहे का खनता है।" अतिथि ने कहा, "तड़के तू मेरे साथ उठना, जिससे मनुष्यों से बिना रौंदी भूमि पर चूहे के पैर के निशानों के पीछे हम दोनों जा सकें।" मैंने भी उनकी बात सुनकर सोचा, "अब हमारा नाश होना है, क्योंकि इनकी बातें विचारपूर्ण मालूम पड़ती हैं। ठीक जिस तरह उन्होंने हमारे खजाने का पता लगा लिया उसी तरह किले का भी जान जायंगे। उनके अभिप्राय ही से यह पता लगता है। कहा है कि

"आदमी को एक बार ही देखकर बुद्धिमान उनकी ताकत जान जाते हैं। चतुर आदमी हाथ के वजन से ही किसी चीज की तौल भांप लेते हैं।

"चित्त की इच्छा ही मनुष्यों के पूर्व-जन्म के शुभ और अशुभ कार्यों से नियत हुए भविष्य की पहले से ही सूचना दे देती हैं। जिसे अभी चोटी नहीं उगी है, ऐसा मोर का बच्चा तालाब से जब लौटता है तब वह अपनी चाल से मोर मालूम होता है।

तब मैं डरकर अपने परिवार के साथ किले का रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते से जाने लगा। परिजनों सहित जैसे ही मैं आगे बढ़ा, मैंने एक मोटा-ताजा बिल्ला आते हुए देखा। चूहों का झुंड देखकर वह उनके बीच टूट पड़ा। मुझे बुरे रास्ते से जाते देखकर वे चूहे मेरी निन्दा करते हुए और मरते हुए तथा बचे-खुचे अपने रक्त से पृथ्वी को भिगाते हुए, उस दुर्ग में घुस गए। अथवा ठीक ही कहा है—

"बंधन काटकर, शिकारी द्वारा रचे हुए फंदे से बचकर, जाल को बलपूर्वक तोड़कर, आग की लपट से घिरी सीमाओं वाले वन से दूर जाकर तथा शिकारियों के बाण की मार के भीतर आते हुए भी वेगपूर्वक दौड़ता हुआ मृग कुँए में गिर पड़ा। जहां भाग्य ही टेढ़ा हो वहां पराक्रम क्या कर सकता है?

इसके बाद मैं अकेला दूसरी जगह चला गया। बाकी चूहे मूर्खता से

उसी किले में चले गए। उसी समय वह दुष्ट परिव्राजक रक्त की बूंदों से रंगी जमीन को देखते हुए उस किले के फाटक पर आकर हाजिर हो गया। बाद में खजाने के लिए वह उसे खोदने लगा। खोदते-खोदते उसे वह धन मिल गया जिसके ऊपर मैं हमेशा रहता था, और जिसकी गरमी से मैं अत्यन्त कठिन जगहों में भी जा सकता था। पुलकित मन से वह अतिथि ताम्रचूड़ से कहने लगा, "भगवान्! अब आप निःशंक होकर सोइए। इस गड़े धन की गरमी से ही चूहा आपको जगाता रहता था।" यह कहकर और खजाना लेकर वे दोनों मठ की तरफ चले गए। मैं भी जब गड़े हुए धन की जगह आया तो उस बदसूरत और उद्वेगकारी स्थान को देख भी न सका। मैं विचार करने लगा, "मैं क्या करूं? कहां जाऊं? मेरे मन को शांति किस तरह हो?" ऐसा विचार करते-करते दिन बड़े कष्ट से बीता। सूर्यास्त के बाद मैं उद्वेगी और निरुत्साही बना हुआ उस मठ में अपने दल के साथ घुसा। मेरे साथियों की आवाज सुनकर ताम्रचूड़ भी फिर से फटे बांस को भिक्षा-पात्र के ऊपर ठोंकने लगा। इस पर अतिथि ने कहा, "मित्र! तू अब भी बेखटके होकर क्यों नहीं सोता?" वह बोला, "भगवन् फिर से वह बदमाश चूहा अपने साथियों सहित आया है। उसी के भय से मैं फटा हुआ बांस भिक्षा-पात्र के ऊपर ठोकता हूं।" इस पर हंसकर अतिथि ने कहा, "मित्र! तू डर मत, इस चूहे के कूदने का उत्साह धन के साथ ही चला गया है। सब जीवधारियों की यही स्थिति होती है। कहा भी है—

"मनुष्य का सदा उत्साही होना, लोगों को हराना और ऐंठकर बोलना, यह सब बल धन का है।"

यह सुनकर, क्रोधित होकर मैं भिक्षा-पात्र की तरफ जोर से ऊपर कूदा, पर वहां तक पहुंचने के पहले ही जमीन पर आ गिरा। मेरे गिरने की आवाज सुनकर मेरा वह शत्रु, हंसकर ताम्रचूड़ से कहने लगा, "अरे देखो! यह तमाशा देखो!" यह कहकर वह बोला—

"सब धन से बलवान होते हैं, तथा जो धनवान है वही पंडित गिना जाता है। धन के बिना यह चूहा अपनी जाति के दूसरे चूहों

की तरह हो गया है।

अब तुम बेखटके सो जाओ। उसके कूदने का जो कारण था, वह अपने हाथ में आ गया है। अथवा ठीक ही कहा है—

"दांत अलग होने से सांप और मद के बिना हाथी की तरह इस संसार में धन के बिना पुरुष नाम-मात्र का ही पुरुष है।"

यह सुनकर मैं मन में सोचने लगा, "मुझमें एक अंगुल भी कूदने की ताकत नहीं रह गई है, इसलिए धनहीन पुरुषों के जीवन को धिक्कार है। कहा है कि

"बिना धन के थोड़ी बुद्धि वाले पुरुष की सब क्रियाएं गरमी की छोटी नदियों की तरह नष्ट हो जाती हैं।

"जिस तरह काकयव और वन में पैदा होने वाले तिल नाम मात्र ही के जौ और तिल हैं, उनसे काम नहीं चलता, उसी प्रकार निर्धन पुरुष को भी समझना चाहिए।

"गरीब आदमी में सब गुण हों तो भी वे शोभा नहीं पाते। जिस तरह सूर्य प्राणियों को प्रकाश देता है, उसी तरह लक्ष्मी गुणों को प्रकाशित करती है।

"सुख में पला हुआ मनुष्य धन पैदा करने के बाद उससे विलग होते हुए जितना दुखी होता है उतना दुखी जन्म से ही निर्धन मनुष्य नहीं होता।

"सूखे कीड़ों से खाए हुए, आग से चारों ओर जले हुए तथा ऊसर में खड़े हुए वृक्ष का जन्म अच्छा है, पर मांगने वालों का नहीं।

"प्रतापरहित दरिद्रता चारों ओर खटके का कारण बन जाती है। गरीब आदमी अगर उपकार करने भी आया हो तो लोग उसे छोड़कर चले जाते हैं।

"गरीब आदमी के मनोरथ ऊंचे बढ़-बढ़ कर, विधवा स्त्री के स्तनों की तरह बाद में, हृदय में विलीन हो जाते हैं।

"इस संसार में हमेशा गरीबी के अंधेरे से घिरा हुआ आदमी दिन

में भी यत्न से आगे खड़ा हो तो कोई उसे देखता नहीं ।

इस प्रकार रोते-कलपते मैं अपने धन को परिव्राजक के गाल का तकिया देखकर भग्नोत्साह होकर सवेरे अपने किले में आया। मेरे सेवक इधर-उधर जाते हुए आपस में कानाफूसी करते थे, "अरे, यह हम सब का पेट भरने में असमर्थ है। इसके पीछे जाने से बिल्ली आदि की आफत आती है। फिर इसकी सेवा करने से क्या लाभ ? कहा है कि

"जिससे फायदा न मिले, केवल विपत्तियां ही उठ खड़ी हों उस स्वामी को, सेवकों को विशेष कर, दूर से ही छोड़ देना चाहिए।"

इस प्रकार उनकी बातें सुनता हुआ मैं अपने किले में घुसा। बाद में जब कोई सेवक मेरे पास नहीं आया तो मैं सोचने लगा, "इस दरिद्रता को धिक्कार है। अथवा ठीक ही कहा है—

"गरीब आदमी मरा हुआ है, बिना संतान के मैथुन मरा हुआ है, बिना श्रोत्रिय ब्राह्मण के श्राद्ध मरा हुआ है और बिना दक्षिणा के यज्ञ मरा हुआ है।"

मैं इसी तरह सोच रहा था कि मेरे सेवक, मेरे शत्रु के सेवक हो गए। वे मुझे अकेले देखकर मेरा तिरस्कार करने लगे।

बाद में आधी नींद में पड़ा हुआ मैं फिर सोचने लगा, "उस कुतपस्वी के वास-स्थान में जाकर उसके गाल का तकिया बनी हुई धन की पेटी को उसके सो जाने पर मैं अपने दुर्ग में लाऊं, जिससे फिर एक बार उस धन के प्रभाव से मेरा पहले की तरह दबदबा हो जाय। कहा है कि

"निर्धन मनुष्य कुलीन विधवा की तरह सैकड़ों मनोरथों से अपने मन को दुखी करता है, पर अनुष्ठान (धार्मिक कृत्य अथवा प्रयत्न) नहीं करता।

"गरीबी देहधारियों के लिए वह अत्यन्त अपमानकारी दुःख है, जिससे उसके रिश्तेदार भी उसे जीते हुए मरा मानते हैं।

"दरिद्रता से कलुषित हुआ मनुष्य, दीनता का पात्र, पराभव का

परम-स्थान और विपत्ति का आश्रय-स्थान वन जाता है।

"जिसके पास कौड़ियां नहीं उससे वंधुगण लज्जा पाते हैं और उसके साथ का सम्वन्ध छिपाते हैं तथा उसके मित्र शत्रु बन जाते हैं।

"निर्धनता प्राणियों के लिए मरण का पर्याय है, छोटपन की मूर्ति है और विपत्तियों का आश्रय-स्थान है।

"घवराये हुए मनुष्य वकरी के पैर की धूल की तरह, झाड़ू की धूल की तरह और दीपक के प्रकाश में पड़ती हुई खाट की छाया की तरह गरीव का त्याग करते हैं।

"हाथ-पैर धोने की मिट्टी से भी कुछ काम होता है, पर निर्धन मनुष्य का तो कोई प्रयोजन ही नहीं होता।

अगर निर्धन कुछ देने की इच्छा से भी धनिकों के घर पहुंच जाय तो 'यह भिखमंगा है', ऐसा मानने में आता है। प्राणियों की दरिद्रता को धिक्कार है।

"अगर धन ले जाने में मेरी मृत्यु भी हो जाय तव भी ठीक है। कहा है कि

"अपना धन चोरी जाते देखकर जो आदमी अपने प्राणों की रक्षा करता है, उसके द्वारा अर्पित तर्पण को पितर स्वीकार नहीं करते।

उसी प्रकार

"गाय के लिए, ब्राह्मण के लिए, स्त्री तथा धन चोरी जाते हुए तथा युद्ध में जो अपना प्राण देता है उसे अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है।"

इस तरह निश्चय करके रात में वहां जाकर उसके सो जाने पर, मैंने पेटी में छेद किया। पर इतने में ही वह दुष्ट तपस्वी जाग गया और अपने फटे वांस की मार से मेरा सिर फोड़ डाला। मेरी कुछ उमर वच गई थी, इसलिए मैं वहां से निकल सका और मरा नहीं। कहा भी है कि

"मनुष्य मिलनेवाले धन को पाता है, देवता भी उसे ऐसा करने से रोक नहीं सकते। इसीलिए मैं शोक नहीं करता। जो मेरा

है, वह दूसरे का नहीं हो सकता ।"

कौआ और कछुआ पूछने लगे, "यह कैसे ?" हिरण्यक कहने लगा—

बनिए के लड़के की कथा

"किसी शहर में सागरदत्त नामका एक बनिया रहता था। उसके पुत्र ने सौ रुपये पर बिकती हुई एक पुस्तक खरीदी। उसमें यह लिखा था—

'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो, देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्यः
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे, यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम् ।'

पुस्तक देखकर सागरदत्त ने अपने लड़के से पूछा, "पुत्र ! कितनी कीमत में तुमने यह किताब मोल ली है ?" उसने कहा, "सौ रुपये में ।" यह सुनकर सागरदत्त ने कहा, "धिक्कार है मूर्ख ! अगर तू सौ रुपये में एक लिखित श्लोक खरीदता है तो क्या इसी अक्ल से तू धन कमायेगा ? इसलिए आज से तू मेरे घर में पैर मत रखना ।" इस तरह उसने उसे बुरा-भला कहकर घर से निकाल दिया ।

वह भी उस दुःख से अनमना होकर परदेस में किसी शहर में पहुंच कर रहने लगा। उसके कुछ दिन वहां रहने के बाद किसी शहरी ने उससे पूछा, "आप कहां से आये हैं ? आपका क्या नाम है ?" उसने जवाब दिया, "मनुष्य प्राप्तव्य धन पाता है ।" दूसरों के पूछने पर भी उसने यही जवाब दिया। इस तरह वह शहर में 'प्राप्तव्यमर्थ' नाम से प्रसिद्ध हो गया।

एक दिन चन्द्रवती नाम की खूबसूरत और जवान राजकन्या अपनी सखी के साथ उत्सव के अवसर पर शहर देखने निकली। उसने अति रूप सम्पन्न और मनोहर कोई राजपुत्र देखा। उसके देखते ही काम-बाण से घायल होकर उसने अपनी सखी से कहा, "हे सखी ! तू ऐसा उपाय कर जिससे मेरी इसके साथ भेंट हो जाय ।" यह सुनकर वह सखी उसके पास जाकर जल्दी से कहने लगी, "चन्द्रवती ने मुझे आपके पास भेजा है और आपके लिए यह संदेशा कहा है, तुम्हारे दर्शन से कामदेव ने मेरी अंतिम अवस्था कर डाली है, इसलिए तुम जल्दी मेरे पास नहीं आते तो मृत्यु ही मुझे उबा-

रेगी।" यह सुनकर उसने कहा, "अगर मुझे वहां जाना ही है तो मैं किस तरह अन्दर घुस सकता हूं, यह वतला।" इस पर सखी वोली, "रात में आप महल पर से लटकते हुए कमंद के सहारे ऊपर चढ़ आइयेगा।" वह वोला, "अगर तुम्हारा यही निश्चय है तो मैं ऐसा ही करूंगा।" इस प्रकार सब ठीक-ठाक करके सखी चन्द्रवती के पास आई। वाद में रात होने पर वह राजपुत्र अपने मन में सोचने लगा, "अरे यह तो वहुत वुरी वात है। कहा है कि

"गुरु की पुत्री, मित्र की पत्नी, तथा स्वामी और सेवक की पत्नियों का जो संभोग करता है, उस पुरुष को व्रह्महत्या करने वाला कहा गया है।

और भी

"जिससे अपयश प्राप्त हो, जिससे नीचा देखना पड़े, जिससे स्वर्ग से गिरना पड़े, ऐसा काम नहीं करना चाहिए।"

इस तरह सोच-विचारकर वह राजकन्या के पास नहीं गया।

इसी वीच में रात में घूमते-फिरते महल के पास कमंद लटकती हुई देखकर मन में कुतूहल होने से 'प्राप्तव्यमर्थ' उसके सहारे ऊपर चढ़ गया। 'यह वही है,' ऐसा विश्वास मन में जम जाने से राजकुमारी ने स्नान, भोजन, तथा वस्त्रादि से उसका सम्मान करके, तथा उसके साथ शय्या पर वैठकर, उसके अंग-स्पर्श से उत्पन्न हर्ष से रोमांचित होती हुई कहा, "तुम्हारे दर्शन मात्र से ही तुम्हारे प्रेम में फंसकर मैंने तुम्हें अपना शरीर सौंप दिया है। मन में भी तुम्हारे सिवाय मेरा कोई दूसरा पति नहीं होगा। पर तुम मुझसे वोलते क्यों नहीं?" उसने कहा, "प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः।" 'यह कोई दूसरा है' यह जानकर राजकन्या ने उसे घरहरे से उतार कर नीचे छोड़ दिया। वह किसी टूटे-फूटे मंदिर में जाकर सो गया।

वाद में एक दंडपाशक, जिसका किसी व्यभिचारिणी स्त्री के साथ संकेत था, वहां आ पहुंचा, और वहां पहले से ही सोये हुए 'प्राप्तव्यमर्थ' को देखा। अपनी वात छिपाने की गरज से उसने उससे कहा, "तुम कौन

हो ?" उसने जवाव दिया, "प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः ।" यह सुनकर दंडपाशक ने कहा , "यह मंदिर तो सूना है, इसलिए तू मेरे स्थान पर जाकर सो रह ।" ऐसा करना मंजूर करके वह समझ के फेर से, किसी दूसरे के घर में जाकर सो गया । उस दंडपाशक की विनयवती नाम की रूपवती और युवा लड़की किसी दूसरे पुरुष पर अनुरक्त होकर और उसके साथ संकेत करके उस जगह में सो रही थी । उस कन्या ने 'प्राप्तव्यमर्थ' को आते देखकर रात्रि के घने अंधकार में 'यही मेरा प्यारा है', यह मानकर उसके सामने आई । सामने जाकर भोजन वस्त्रादि से उसकी खातिर करके तथा गांधर्व-रीति से उसके साथ विवाह करके तथा उसके साथ पलंग पर बैठकर खिले कमल जैसे मुख से कहने लगी, "अब भी तुम क्यों मुझसे बेखटके वातचीत नहीं करते ?" उसने कहा, "प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः ।" इसे सुनकर उस कन्या ने सोचा, "बिना विचारे जो काम करने में आता है उसका नतीजा यही होता है ।" यह विचारकर और दुखित होकर उसने उसे वाहर निकाल दिया ।

जब वह गली में जा रहा था तब दूसरे देश का रहने वाला वरकीर्ति नाम का एक दूल्हा वाजे-गाजे के साथ आया । 'प्राप्तव्यमर्थ' भी बारात के साथ हो लिया । विवाह का समय आ पहुंचने पर राज-मार्ग में सटे सेठ के घर के दरवाजे पर , वेदिका-युक्त मंडप के नीचे , कुलाचार करके और मंगल-वेष पहनकर बनिए की लड़की बैठी थी । उसी समय एक मतवाला हाथी अपने महावत को मारकर सब आदमियों को घायल करता हुआ, भागने वालों के शोर से ,लोगों को व्याकुल करता हुआ उस जगह पहुंच गया । उसे देखकर वर के साथ के सारे बराती छिटपुट होकर इधर-उधर भाग गए । इसी बीच में डरी आंखों वाली उस कन्या को अकेली देखकर उसने कहा , "तू मत डर , मैं तेरा रक्षक हूं ।" इस तरह उसे धीरज दिलाकर तथा उसका दाहिना हाथ पकड़कर 'प्राप्तव्यमर्थ' बड़े साहस से कठोर वाक्यों द्वारा उस हाथी को चपेटने लगा । दैव योग से हाथी किसी प्रकार वहां से चला गया । विवाह का समय बीत जाने पर वरकीर्ति मित्रों और

रिश्तेदारों के साथ वहां आया और वहां कन्या को दूसरे के हाथ में पड़ी देख कर कहा, "अरे ससुर जी ! आपने मुझे वचन देने के बाद भी कन्या दूसरे को देकर बड़ा अनुचित किया है।" उसने उत्तर दिया, "मैं भी डर से भाग गया था और तुम्हारे साथ ही यहां आया हूं, फिर यहां क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता।" यह कहकर वह अपनी पुत्री से पूछने लगा, "यह तूने ठीक नहीं किया। बता कि क्या बात है?" वह बोली, "इसने मेरी जान जोखिम से बचाई है, इसलिए मैं जब तक जीती हूं तब तक दूसरा कोई मेरा हाथ नहीं पकड़ सकता।" इस तरह बातचीत में रात बीत गई।

सवेरे वहां महाजनों का इकट्ठा होना सुनकर राजकन्या भी आई। कानों-कान खबर सुनकर दंडपाशक की कन्या भी आ पहुंची। महाजनों को वहां एकत्रित सुनकर राजा भी आ पहुंचे। उन लोगों ने 'प्राप्तव्यमर्थं' से कहा, "बात क्या है, सच-सच कह।" इस पर उसने कहा, "प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः।" राजकन्या भी याद पड़ने से बोली, "देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्यः।" बाद में दंडपाशक की लड़की बोली, "तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे।" यह सब बातचीत सुनकर बनिए की लड़की बोली, "यदस्मदीयं न हि तत् परेषाम्।"

बाद में अभयदान देकर तथा सबसे अलग-अलग बयान सुनने के बाद, असल बात जानकर राजा ने 'प्राप्तव्यमर्थं' को गहने, दासों और एक हजार गांवों के साथ बड़े इज्जत के साथ अपनी लड़की दे दी। 'यह हमारा पुत्र है', यह बात सारे नगर में फैलाकर उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। दंडपाशक ने भी अपनी शक्ति के अनुसार 'प्राप्तव्यमर्थं' को वस्त्रादि देकर और सत्कार करके अपनी पुत्री दे दी। बाद में 'प्राप्तव्यमर्थ' कुटुम्बियों सहित अपने माता-पिता को उस नगर में लाया और उनके साथ आनन्द उठाते हुए सुखपूर्वक रहने लगा।

मनुष्य मिलनेवाले धन को लेता है। देवता भी उसे ऐसा करने से रोक नहीं सकते। इसलिए मैं शोक नहीं करता। जो हमारा है वह दूसरे का नहीं हो सकता।

में तमाम दुःख-सुखों का अनुभव करके मित्र के साथ तेरे पास आया हूं; मेरे अनमने होने का कारण यही है ।"

मंथरक ने कहा, "बेशक, यह कौआ तेरा मित्र है, क्योंकि भूख से तड़पते हुए भी यह शत्रु-समान तथा निवाले की तरह तुझे अपनी पीठ पर चढ़ाकर यहां लाया और रास्ते में ही तुझे नहीं खा गया। कहा है कि

"जिस कुलीन मित्र का चित्त धन देखकर भी कभी खराब नहीं होता,
वह हमेशा मित्र रहता है; उसे ही उत्तम मित्र बनाना चाहिए।
विद्वानों ने इन अचूक चिन्हों से मित्रों की परीक्षा करने को कहा है
जैसे पंडित होमाग्नि की परीक्षा करते हैं।

"विपत्ति आने पर भी जो मित्रता बनाए रहता है, वही असली मित्र
है। बढ़ती में तो दुर्जन भी मित्र हो जाता है।

इसीलिए मुझे इस लघुपतनक के बारे में विश्वास है, क्योंकि मांसखोर कौओं की जलचरों के साथ मित्रता नीति के विरुद्ध है। अथवा यह ठीक ही कहा है कि

"कोई भी किसी का जानी दुश्मन अथवा जानी दोस्त नहीं है।
किसी का किसी वजह से मित्र द्वारा नाश होता है और शत्रु
द्वारा उसकी रक्षा होती है, ऐसा देखने में आता है।

इसलिए तेरा स्वागत है। अपने घर की तरह तू इस सरोवर के तीर पर रह। तेरे धन का नाश हुआ और तुझे विदेश में रहना पड़ा, इस बात का दुःख न मान। कहा है कि

"बादल की छाया, दुर्जन की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्रियां,
जवानी और धन, इन सब का उपयोग थोड़े ही समय के लिए
हो सकता है।

इसीलिए अपने को जीतने वाले बुद्धिमान धन का लालच नहीं करते। कहा भी है कि

"अच्छी तरह से संचित किया हुआ, जान की तरह रक्षा किया
गया तथा अपने ऊपर भी कभी खर्च नहीं किया गया, ऐसे

निष्ठुर धन की रक्षा करने वाला पुरुष जब यमलोक में जाता है तब वह उसके पीछे पांच कदम भी नहीं जाता।

और भी

"जिस तरह मछलियों द्वारा जल में, हिंसक पशुओं द्वारा जमीन पर और पक्षियों द्वारा आकाश में मांस खाया जाता है, उसी प्रकार धनवान सब जगह नोचा जाता है।

"धनवान के निर्दोष होने पर भी राजा उसे दूषित मानता है और निर्धन दूषित होने पर भी सब जगह बेखटके रह सकता है।

"धन कमाने में दुःख है, कमाये हुए धन की रक्षा करने में भी दुःख है, उसके नाश होने और खर्च होने में भी दुःख है। इसलिए कष्ट के आश्रय-रूप इस धन को धिक्कार है।

"धन की इच्छा रखने वाला मूर्ख जितना कष्ट सहता है उसका शतांश कष्ट भी अगर मोक्ष चाहने वाला सहन करे तो उसे मुक्ति मिलनी चाहिए।

विदेश में रहने से भी तुझे उदास नहीं होना चाहिए, क्योंकि वीर और बुद्धिशाली मनुष्य के लिए क्या देश क्या विदेश ? जिस देश में वह रहता है उसी देश के ऊपर अपने बाहुओं के प्रताप से वह विजय पाता है। सिंह जिस वन में घुसता है उसी में अपने दांत, नख और पूंछरूपी शस्त्र से बड़े हाथियों को मारकर उनके रक्त से अपनी प्यास बुझाता है।

परदेश गया हुआ निर्धन मनुष्य भी अगर बुद्धिमान हो तो किसी तरह दुःख नहीं पाता। कहा है कि

"समर्थों के लिए बड़ा बोझा क्या है ? व्यापारियों के लिए दूरी क्या है ? विद्वानों के लिए विदेश क्या है और मीठा बोलने वालों के लिए पराया क्या है ?

और फिर, तू तो बुद्धि का भांडार है, साधारण आदमियों की तरह नहीं। अथवा

"उत्साह-सम्पन्न, देरी न करने वाला, क्रिया-कुशल, व्यसनों से

अलग, शूर, कृतज्ञ और गहरा प्रेमी, इन सब में लक्ष्मी स्वयं रहना चाहती है।

धन मिलकर भी भाग्यवश नष्ट हो जाता है। इतने दिनों तक यह धन तेरा था। जो वस्तु अपनी न हो वह एक क्षण भी भोगी नहीं जा सकती। अगर वह वस्तु स्वयं ही मिल गई हो तो भी भाग्य उसे हर लेता है।

"घने वन में पहुंचकर सोमिलक जिस तरह दिशा भूल गया, उसी तरह धन पैदा करने के बाद भी (अगर भाग्य में न हो तो) वह भोगा नहीं जा सकता।"

हिरण्यक ने कहा, "यह कैसे ?" मंथरक कहने लगा—

सोमिलक और छिपे धन की कथा

"किसी नगर में सोमिलक नाम का बुनकर रहता था। वह अनेक तरह के राजाओं के लायक रेशमी वस्त्र हमेशा तैयार करता था। अनेक तरह के रेशमी वस्त्र बुनने पर भी उसे भोजन-छाजन से अधिक धन नहीं मिलता था। पर मोटे कपड़े बुनने वाले साधारण बुनकर काफी धनी हो गए थे। उन्हें देखकर उसने अपनी स्त्री से कहा, "प्रिये ! देखो इस सोने और धन से समृद्ध मोटे कपड़े बुनने वालों को ! मैं इस जगह अब नहीं रह सकता, इसलिए विदेश में कहीं धन कमाने जाता हूं।" वह बोली, "हे प्रियतम ! दूसरी जगह जाने से धन मिलता है और अपने स्थान पर नहीं मिलता, यह फिजूल की बात है। कहा है कि

"पक्षियों का आकाश में उड़ना अथवा जमीन पर उतरना भी पूर्व कृत-कर्म के फल से होता है। दैव के दिये बिना कोई चीज नहीं मिल सकती।

उसी प्रकार

"जो नहीं होने वाला होता, वह नहीं, होता। जो होने वाला होता है, वह बिना यत्न के होता है। जिसके होने की संभावना नहीं होती, वह हथेली में आने पर भी नष्ट हो जाता है।

"जिस तरह हजारों गायों में से भी बछड़ा अपनी मां को खोज निकालता है, उसी तरह पहले के किये हुए काम करने वाले के पीछे जाते हैं।

'मनुष्यों का पूर्वकृत-कर्म अगर वह सोया हो तो भी उसके साथ सोता है, अगर वह जाता हो तो उसके पीछे पीछे जाता है, अगर वह खड़ा रहे तो उसके साथ खड़ा रहता है।

"जिस तरह छाया और प्रकाश आपस में एक-दूसरे से बंधे हैं, उसी तरह कर्म और उसका कर्ता भी एक दूसरे से बंधे हैं।

इसलिए तुम यहीं पर प्रयत्न करते रहो।" बुनकर ने कहा, "प्रिये ! तुम्हारा कहना ठीक नहीं। उद्यम के विना कर्म फल नहीं देता। कहा है कि

"जिस तरह एक हाथ से ताली नहीं बजती, उसी तरह उद्यम के विना कर्म का फल नहीं मिलता। ऐसा स्मृतियों का कहना है।

"भोजन के समय कर्म-वश मिला हुआ भोजन भी विना हाथ के परिश्रम के किसी तरह मुंह में नहीं जाता, यह तो देखो !

उसी प्रकार

"उद्योगशील पुरुष-सिंह को लक्ष्मी मिलती है। 'भाग्य ही ठीक है', यह तो कापुरुष कहते हैं। इसलिए भाग्य को अलग रखकर अपनी शक्ति के अनुसार पराक्रम करो। यत्न करते हुए जो काम न बने तो इसमें क्या दोष ?

और भी

"काम मेहनत से सिद्ध होते हैं, केवल सोचने से नहीं। हरिण सोते हुए सिंह के मुंह में स्वयं नहीं घुस जाते।

"हे राजन् ! विना उद्यम के मनोरथ सिद्ध नहीं होते। 'जो होना होगा वही होगा', ऐसा तो हतोत्साही कहते हैं।

"अपनी ताकत के माफिक मेहनत करने पर भी यदि काम न बने तो दैव द्वारा विघ्न डाले हुए पराक्रम वाले पुरुष की इसमें कोई

शिकायत नहीं कर सकता।

इसलिए मुझे अवश्य परदेस जाना चाहिए।" इस तरह निश्चय कर वह वर्धमानपुर में जाकर वहां तीन वर्ष रहकर और तीन सौ मुहरें पैदा करके अपने घर आने के लिए निकल पड़ा। आधे रास्ते में वह जंगल में घुसा। उसी समय सूरज डूब गया। जंगली जानवरों के भय से बरगद की लम्बी शाखा पर चढ़कर सोते हुए उसने आधी रात को दो भयंकर आकृति वाले पुरुषों को आपस में बातचीत करते हुए सुना। उनमें से एक बोला, "हे कर्ता, क्या तू यह नहीं जानता कि सोमिलक के भाग्य में भोजन और वस्त्र के लिए जितने धन की आवश्यकता है उससे अधिक धन नहीं बचा है? फिर तूने क्यों इसे तीन सौ मुहरें दीं?" वह बोला, "हे कर्म! मुझे उद्योगी मनुष्यों को अवश्य देना चाहिए। पर इसका परिणाम तेरे हाथ में है।"

बुनकर ने जागने पर अपने मुहरों की गांठ जब टटोली तब उसे खाली पाया। इस पर दुखी होकर वह सोचने लगा, "अरे यह क्या? बड़े कष्ट से पैदा किया हुआ धन खेल ही में कहां चला गया? मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया है। अब मैं इस गरीबी की हालत में अपनी पत्नी और मित्रों को कैसे मुंह दिखाऊंगा?"

इस तरह निश्चय करके वह फिर उसी शहर को वापस लौट गया। वहां एक वर्ष में पांच सौ मुहरें पैदा करके वह फिर अपनी जगह लौटने के लिए निकल पड़ा। आधे रास्ते में जंगल पड़ा और उसी समय सूरज डूब गया। थके होते हुए भी मुहरों के खोने के भय से बिना आराम के केवल अपने घर जाने की उत्कंठा से वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने लगा। उसी समय पहले ही जैसे दो पुरुष उसकी आंखों के सामने आये और बातचीत करते सुन पड़े। उनमें से एक ने कहा, "हे कर्ता! तूने पांच सौ मुहरें इसे किस लिए दीं? क्या तू जानता नहीं कि भोजन और वस्त्र से ज्यादा इसके भाग्य में नहीं है?" वह बोला, "हे कर्म! उद्योगियों को तो मुझे अवश्य देना चाहिए, पर उसका परिणाम तेरे अधीन है। इसलिए तू मुझे ताना क्यों मारता है?" यह सुनकर सोमिलक ने जब अपनी गांठ देखी तो उसमें

मुहरें नहीं थीं। इस पर अत्यन्त दुखी होकर वह सोचने लगा, "मुझ जैसे निर्धन के जीने से क्या लाभ? इसलिए मैं बरगद के पेड़ के ऊपर फांसी लगाकर मर जाऊंगा।" इस तरह निश्चय करके घास की रस्सी बंटकर उसकी फांस उसने अपने गले में डाल दी और पेड़ से बंधकर लटकने ही वाला था कि आकाशचारी एक पुरुष ने कहा, "अरे! अरे! सोमिलक ऐसा मत कर। तेरा धन ले लेने वाला मैं हूं। तेरे पास भोजन और वस्त्र से अधिक एक कौड़ी भी हो, यह मैं सहन नहीं कर सकता। इसलिए तू अपने घर जा। फिर भी मैं तेरे साहस से संतुष्ट हूं। इसलिए मेरा दर्शन तेरे लिए वृथा नहीं होगा। जैसी तेरी इच्छा हो वैसा वरदान मांग।" सोमिलक ने कहा, "अगर ऐसी बात है तो आप मुझे खूब धन दीजिए।" उसने जवाब दिया, "अरे बिना भोगे जाने वाले धन का तू क्या करेगा, क्योंकि भोजन और वस्त्र से अधिक की प्राप्ति तेरे भाग्य में नहीं है? कहा है कि

"इस लक्ष्मी से क्या किया जाय जो केवल घर की बहू की तरह है।
वह मामूली वेश्या की तरह नहीं है जिसे पथिक भी भोगते हैं।"

सोमिलक ने कहा, "धन भोग न सकने पर भी मुझे धन ही दीजिए। कहा है कि

"जिसके पास धन इकट्ठा होता है वह मनुष्य कंजूस हो अथवा
अकुलीन, फिर भी इस संसार में आश्रित उसे घेरे रहते हैं।"

और भी

"हे भद्रे! लम्बे और ढीले पड़े हुए ये दोनों मांस-पिंड गिरेंगे या
नहीं इस आशा में मैं पन्द्रह वर्ष देखता रहा।"

पुरुष ने कहा, "यह कैसे?" सोमिलक कहने लगा —

बैल के पीछे-पीछे चलने वाले सियार की कथा

"किसी नगर में तीक्ष्णविषाण नाम का एक लम्बा-चौड़ा बैल रहता था। मद की अधिकता से वह अपने झुंड को छोड़कर अपने सींगों से नदी के किनारे खोदता हुआ तथा पन्ने जैसी घास चरता हुआ वह जंगल में फिरने लगा।

उस जंगल में प्रलोभक नाम का एक सियार रहता था। वह एक समय अपनी पत्नी के साथ आनन्दपूर्वक नदी के किनारे बैठा हुआ था कि इतने में बैल के लटकते हुए अंडकोशों को देखकर सियारिन ने सियार से कहा, "स्वामिन्! देखो इस बैल के दो मांस-पिंड लटक रहे हैं। एक क्षण अथवा पहर में वे नीचे गिर जायंगे, यह जानकर तुम्हें इसके पीछे जाना चाहिए। सियार बोला, "प्रिये! ये कभी गिरेंगे या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। इसलिए तू क्यों मुझे फिजूल की मेहनत में लगाती है। पानी पीने आने वाले चूहों को मैं तेरे साथ यहां बैठकर खाऊंगा, क्योंकि यह उनके आने का रास्ता है। अगर मैं तुझे यहां छोड़कर इस तीक्ष्णविषाण बैल के पीछे जाता हूं तो कोई दूसरा आकर इस जगह पर बैठ जायगा। इसलिए ऐसा करना ठीक नहीं। कहा है कि

"निश्चित वस्तुओं को छोड़कर जो अनिश्चित वस्तुओं की सेवा करता है उसकी अनिश्चित वस्तुएं तो नाश होती ही हैं साथ-साथ निश्चित वस्तुएं भी नष्ट हो जाती हैं।

सियारिन ने कहा, 'तुम डरपोक हो, क्योंकि जो कुछ मिल जाता है तुम उसी पर संतोष करते हो। कहा भी है—

"छोटी नदी झट भर जाती है, चूहे की अंजुली भी झट भर जाती है तथा संतोष में रहने वाला कायर मनुष्य भी थोड़ी चीजों से संतुष्ट हो जाता है।

इसलिए आदमी को सदा हिम्मत रखनी चाहिए। कहा है कि

"जहां काम उत्साहपूर्वक आरम्भ होता है, जहां आलस्य नहीं होता और जहां नीति और पराक्रम का मेल होता है, वहां लक्ष्मी निश्चय रहती है।

"भाग्य ही ठीक है यह सोचकर अपना उद्यम छोड़ना नहीं चाहिए। विना उद्यम के तिल में से तेल भी नहीं निकलता।

और भी

"जो मूर्ख मनुष्य थोड़े में संतोष कर लेता है, उस भाग्यहीन को दी

गई लक्ष्मी भी निकल जाती है।

तुम कहते हो कि ये गिरेंगे नहीं, यह ठीक नहीं। कहा है कि

"दृढ़-संकल्प मनुष्य वंदन करने योग्य है, केवल बड़ाई किसी काम की नहीं। कहां बिचारा चातक, पर इन्द्र भी उसके लिए पानी लाने का काम करते हैं।

फिर चूहे का मांस खाते-खाते मेरी तबीयत थक गई है। ये मांस-पिंड गिरने ही वाले हैं, इसलिए तुम्हें कोई दूसरा काम नहीं करना चाहिए।"

यह सुनकर वह सियार चूहे मिलने वाली जगह को छोड़कर तीक्ष्ण विषाण के पीछे चला। अथवा यह ठीक ही कहा है कि

"तभी तक आदमी अपने सब कामों का मालिक है जब तक वह स्त्री की बातों के आंकुस से बलपूर्वक प्रेरित नहीं होता।

स्त्री की बात से प्रेरित मनुष्य बुरे काम को अच्छा काम, अगम्य को गम्य, न खाने लायक को खाने लायक मानता है।"

इस तरह पत्नी के सहित बैल के पीछे-पीछे घूमते हुए उसे बहुत समय बीत गया पर मांस के वे गोले गिरे नहीं। पन्द्रहवें वर्ष दुखी होकर सियार ने अपनी स्त्री से कहा—"भद्रे! लम्बे और ढीले पड़े हुए ये दोनों मांस-पिंड गिरेंगे या नहीं, इस आशा में मैं १५ वर्ष देखता रहा। अब ये गिरेंगे नहीं, इसलिए अब हमें अपनी जगह जाना चाहिए।"

पुरुष ने कहा, "अगर यही बात है तो वर्धमानपुर जा। वहां दो बनिए रहते हैं। एक का नाम गुप्तधन और दूसरे का उपभुक्तधन है। उन दोनों को जानकर उनमें से एक की तरह बनने का मुझसे वरदान मांगना। जो तुझे उपभोग बिना धन की जरूरत होगी तो मैं तुझे गुप्त-धन बनाऊंगा। दान और उपभोग में लगने वाले धन की अगर तुझे जरूरत होगी तो तुझे उपभुक्तधन बनाऊंगा।" यह कहकर वह पुरुष अदृश्य हो गया।

चकित होकर सोमिलक फिर वर्धमानपुर गया। वह थका हुआ संध्या-समय उस नगर में पहुंचा और गुप्तधन का घर पूछता हुआ मुश्किल

से उसके यहां सूरज डूबने पर पहुंचा।

बाद में हठ से गुप्तधन के तिरस्कार करने पर भी वह उसके घर में घुस कर बैठ गया। फिर खाने के समय अनादर के साथ उसे कुछ खाने को दे दिया गया। खाने के बाद सोते-सोते आधी रात को उसने देखा कि वही दोनों पुरुष आपस में सलाह कर रहे थे। इनमें से एक ने कहा,'हे कर्ता! गुप्तधन के लिए तूने क्यों फिजूल इस खर्च की व्यवस्था की कि जिसमें उससे सोमिलक को भोजन दिया? यह तूने ठीक नहीं किया।"दूसरे ने जवाब दिया,"हे कर्म! इसमें मेरा दोष नहीं, मुझे तो मनुष्य का फायदा कराना ही चाहिए, पर उसका परिणाम तेरे ही अधीन है।"

सवेरे जब सोमिलक उठा उस समय दस्त से पीड़ित गुप्तधन बीमार पड़ गया। बीमारी की वजह से उसने दूसरे दिन फाका किया। सोमिलक भी सवेरे उसके घरसे निकलकर उपभुक्तधन के यहां गया। उसने सामने आकर सोमिलक का सत्कार किया तथा भोजन वस्त्रादि से उसका सम्मान किया। बाद में उसी घर में सोमिलक अच्छी खाट पर सो गया। आधी रात को उसने उन्हीं दोनों आदमियों को बातचीत करते हुए सुना। इनमें से एक ने कहा, "सोमिलक की खातिरी में इस उपभुक्तधन ने बहुत खर्च किया है। अब तू बता उसका उद्धार कैसे होगा? यह सब कुछ तो वह उस बनिए के घर से उधार पर लाया है।" दूसरे ने कहा, "यह तो मेरा काम है, पर इसका परिणाम तेरे अधीन है।" सवेरे एक राजपुरुष ने राजा का इनाम लाकर उपभुक्तधन को दिया। उसे देखकर सोमिलक सोचने लगा, धन न होने पर भी उपभुक्तधन गुप्तधन से कहीं अच्छा है। कहा है कि

> "अग्निहोत्र वेद का फल है, शील और सदाचार शास्त्र के फल हैं, रति और पुत्र स्त्री के फल हैं तथा दान और भोग धन के फल हैं।"

इसलिए तुम मुझे उपभुक्तधन बनाओ। मुझे गुप्तधन बनना नहीं है।" बाद में सोमिलक धन का दान और उपभोग करने वाला हुआ।

इसलिए मैं कहता हूं कि घने वन में पहुंचकर सोमिलक जिस तरह दिशा भूल गया, उसी तरह धन पैदा करने के बाद भी (अगर भाग्य में न हो तो) वह भोगा नहीं जा सकता।

इसलिए हे हिरण्यक! यह जानकर धन के विषय में तू दुखी मत हो। धन होते हुए भी यदि उसका उपभोग न हो सके तो वह नहीं जैसा है, ऐसा मान लेना चाहिए। कहा है कि

"घर के अन्दर गड़े हुए धन से लोग धनिक कहे जायें तो उसी धन से हम सब भी क्यों न धनी कहे जायें?

और भी

"तालाब के पानी को बाहर फेंकना ही उसकी रक्षा है। उसी तरह पैदा किये हुए धन का दान ही उसकी रक्षा है।

"धन को देना अथवा उसका उपभोग करना चाहिए, उसका संचय नहीं। देखो शहद की मक्खियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ धन दूसरे ही चुरा लेते हैं।

और भी

"दान, उपभोग और नाश, धन की ये तीन गतियां होती हैं। जो दान नहीं देता या उपभोग नहीं करता, उसके धन की तीसरी गति, अर्थात् नाश होता है।

यह जानकर बुद्धिमान आदमी को बटोरने के लिए धन पैदा नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसका नतीजा दुःख देने वाला होता है। कहा है कि

"जो मूर्ख सुख की आशा से धनादि के लिए खेद पाते हैं वे गरमी से व्याकुल ठंडक के लिए आग तापने वालों के समान हैं।

"हवा पीने पर भी सांप दुर्बल नहीं होते, वन के हाथी सूखे तिनके चरकर भी बलवान होते हैं। मुनिश्रेष्ठ कंदों और फलों से अपना समय बिताते हैं। इसलिए संतोष ही मनुष्य का परम लक्ष्य होना चाहिए।

"संतोष रूपी अमृत से अघाए हुए मनुष्यों को जो सुख मिलता है, वह इधर-उधर धन के लालच में दौड़ते लोगों को कहां से मिल सकता है !

"अमृत जैसे संतोष पीने वालों को परम सुख मिलता है, पर असंतोषी को हमेशा दुःख-ही-दुःख मिलता है।

"चित्त को वश में कर लेने से सब इन्द्रियां वश में आती हैं। बादलों से ढके सूर्य की सब किरणें भी ढक जाती हैं।

"शांत महर्षिगण इच्छाओं की शांति को ही स्वास्थ्य कहते हैं। आग तापने से जैसे प्यास नहीं बुझती, उसी तरह धन से इच्छाओं का दमन नहीं होता।

"धन के लिए मनुष्य क्या-क्या नहीं करता ? वह अनिद्य की निन्दा करता है और अस्तुत्य की लम्बी-चौड़ी वन्दना करता है।

"धर्म के लिए भी जो धन का इच्छुक है, ऐसी इच्छा भी शुभ नहीं। कीचड़ को धोने से पहले उससे दूर रहना ही अच्छा है।

"दान के समान कोई दूसरा खजाना नहीं है, लोभ से बड़ा इस पृथ्वी पर दूसरा कोई शत्रु नहीं है, शांति के समान दूसरा कोई गहना नहीं है, और संतोष के समान कोई धन नहीं है।

"जिसमें मान रूपी धन की कमी हो उसे ही दरिद्रता की परम मूर्ति मानना चाहिए। शिव के पास धन की जगह केवल बूढ़ा बैल है, फिर भी वे परमेश्वर हैं।

"आर्य गिरकर भी गेंद की तरह फिर ऊंचे-ऊंचे उठते हैं, पर मूर्ख मिट्टी के लौंदे की तरह गिरते हैं।

भद्र ! यह जानकर तुझे संतोष करना चाहिए।" मंथरक की बात सुनकर कौआ बोला, "भद्र ! मंथरक ने जो कहा है उसे तुझे अपने चित्त में रखना चाहिए। अथवा ठीक ही कहा है—

"हे राजन ! हमेशा मीठा बोलने वाले आदमी सुलभ हैं, पर

अप्रिय किन्तु हितकारी वातें कहने वाले और सुनने वाले इस संसार में दुर्लभ हैं । इस संसार में जो अप्रिय होते हुए भी हितकारी वातें कहते हैं वे ही असल मित्र हैं, दूसरे तो केवल नाममात्र के मित्र हैं ।"

वे आपस में वातचीत कर ही रहे थे कि इतने में शिकारी से डरा हुआ चित्रांग नामक मृग भी उसी सरोवर पर आ पहुंचा । उसे घवराहट में आता देखकर लघुपतनक तो पेड़ पर चढ़ गया, हिरण्यक सरपत में घुस गया और मंथरक तालाव में । वाद में लघुपतनक ने अच्छी तरह से मृग को देखकर मंथरक से कहा, "निकल आओ मित्र मंथरक, यह तो प्यास से पीड़ित मृग तालाव में घुस गया है । यह शब्द उसका है मनुष्य का नहीं ।" यह सुनकर मंथरक ने देश और काल को जानते हुए कहा, "हे लघुपतनक ! गहरी सांस लेता हुआ तथा चंचला दृष्टि से पीछे देखता हुआ यह मृग निश्चय ही प्यासा नहीं है, पर शिकारी से डरा हुआ है । इसलिए इसका पता लगाओ कि इसके पीछे शिकारी आ रहे हैं अथवा नहीं । कहा भी है—

"भय से डरा हुआ मनुष्य घड़ी-घड़ी जोर की सांस लेता है, दिशाओं की ओर देखता है और कहीं शांति नहीं पाता ।"

यह सुनकर चित्रांग ने कहा, "हे मंथरक ! तुमने मेरे भय का कारण ठीक तरह से जान लिया है । मैं शिकारी के तीरों की मार से किसी तरह वचकर यहां आया हूं । इसलिए मुझ शरणागत को शिकारी जहां न पहुंच सके, ऐसी जगह वताओ ।"

यह सुनकर मंथरक ने कहा, "हे चित्रांग ! नीति-शास्त्र सुन—

"दुश्मन को देखकर उससे वचने के दो उपाय कहे गए हैं—एक हाथ चलाने का दूसरे पैर की तेजी का ।

इसलिए वदमाश शिकारी जवतक यहां आए तव तक तू गहरे जंगल में घुस जा ।" उसी समय लघुपतनक ने जल्दी से आकर कहा, "अरे मंथरक ! वे शिकारी वहुत से मांस के लोथड़े लेकर घर की ओर

चले गए। इसलिए चित्रांग ! तू विश्वासपूर्वक वन के बाहर निकल।" इस तरह वे चारों मित्रतापूर्वक तालाब के किनारे दोपरह में पेड़ के नीचे बैठकर आपस में बातचीत करते हुए समय बिताने लगे। अथवा ठीक ही कहा है—

"सुभाषितों के रसास्वादन से जिनके शरीर पर रोमांचरूपी चोला चढ गया है, ऐसे बुद्धिमान बिना स्त्री-संगम के ही सुखी होते हैं।

"जो सुभाषित रूपी धन का स्वयं संग्रह नहीं करता, वह बातचीत रूपी यज्ञ में किसे दक्षिणा दे सकेगा ?

और भी

"जो एक बार कही बात ग्रहण नहीं करता और स्वयं उसके अनुसार काम नहीं करता, अथवा जिसके पास सदुक्तियों की पिटारी नहीं है, वह सुभाषित कहां से कह सकता है !"

एक दिन गोष्ठी के समय चित्रांग नहीं आया। वे सब व्याकुल होकर आपस में कहने लगे—"अरे ! हमारा मित्र क्यों नहीं आया ? क्या वह सिंहादि पशुओं अथवा शिकारियों से मारा गया, क्या वह दावानल में भस्म हो गया ? क्या वह नई दूब के लालच से कठिन गढ़े में जा पड़ा है ? अथवा यह ठीक ही कहा है —

"प्रिय के घर के बगीचे में जाने से भी प्रियजन उसके अशुभ की आशंका करते हैं। अगर वह विघ्नों और भय से भरे हुए जंगल में जाय तो फिर कहना ही क्या है ?"

बाद में मंथरक ने कौए से कहा, "हे लघुपतनक ! मैं और हिरण्यक तो धीमी चाल से उसे खोजने में असमर्थ हैं, इसलिए वन में जाकर तू इस बात का पता लगा कि क्या वह जीवित है ?" यह सुनकर लघुपतनक थोड़ी दूर गया और उसनें एक तलैया के किनारे चित्रांग को जाल में जकड़ा देखा। उसे देखकर शोक से व्याकुल चित्त कौए ने कहा, "भद्र, यह क्या ?" चित्रांग भी कौए को देख कर विशेष दुखित हुआ। अथवा यह ठीक ही

कहा है—

"प्राणियों का दुख हलका पड़ गया हो अथवा खत्म हो गया हो फिर भी अक्सर प्रेमियों के दर्शन से वह बढ़ जाता है।"

आंसू रुकने पर चित्रांग ने लघुपतनक से कहा, "हे मित्र ! अब तो मेरी मौत आ पहुँची है, इसलिए तेरे साथ मेरी मुलाकात हुई, यह ठीक ही हुआ। कहा है कि

"बहुत दीन हो जाने अथवा नष्ट हो जाने पर मित्र के दर्शन होने से प्राणियों को फिर बड़ी तकलीफ होती है।

"प्राण जाने का भय उत्पन्न होने के समय मित्र के दर्शन होने से चाहे प्राणी मरे या जिये फिर भी वह दोनों को सुखकारी होता है।

प्रेम से गोठ में मैंने जो कुछ कहा, सुना हो उसे क्षमा करना। हिरण्यक और मंथरक से मेरी यह बात कहना।

मैंने जान में वा अनजान में जो कड़वी बातें कही हों उसे तुम दोनों आज मुझे कृपा करके माफ करना।"

यह सुनकर लघुपतनक ने कहा, "भद्र ! हम जैसे मित्रों के रहते हुए तुझे डरना नहीं चाहिए। मैं अभी हिरण्यक को लेकर जल्दी से वापस आता हूं। जो सत्पुरुष होते हैं वे कष्ट में घबराते नहीं। कहा है कि

"सम्पत्ति में जिसे हर्ष नहीं होता, विपत्ति में दुःख नहीं होता, लड़ाई में डर नहीं होता, ऐसे तीनों लोक के तिलक-स्वरूप विरले पुत्र को ही माता जन्म देती है।"

यह कहकर और चित्रांग को भरोसा देकर लघुपतनक जहां हिरण्यक और मंथरक थे, वहां जाकर उनसे चित्रांग के जाल में फंसने की बात कही। चित्रांग के बंधन काटने का निश्चय करके हिरण्यक कौए की पीठ पर चढ़ कर जल्दी से चित्रांग के पास पहुंच गया। वह भी चूहे को देखकर अपनी जान बचने की उम्मीद से उससे बोला, "आपत्ति से पार पाने के लिए असली मित्र रखना चाहिए। जो बिना मित्र का होता है वह आपत्ति से नहीं पार पा सकता।" हिरण्यक ने कहा, "भद्र ! तू तो नीति-शास्त्र जानने वाला

बुद्धिमान है, फिर तू क्यों इस फंदे में फंस गया ?" उसने कहा, "अरे यह वहस का समय नहीं है। जब तक वह पापी शिकारी यहां न आ पहुंचे उसी बीच में तू मेरे पैर का बंधन जल्दी से काट डाल।" यह सुनकर हिरण्यक ने हंसकर कहा, "मेरे आने पर भी तू शिकारी से क्यों डरता है ?" तेरे जैसा नीति-शास्त्रज्ञ भी ऐसी हालत में पहुंच जाता है, इसलिए उस शास्त्र से मेरा मन हट गया है।" उसने कहा, "कर्म से बुद्धि भी मारी जाती है। कहा है कि

"काल के पाश में जकड़े और दैव द्वारा कुंठित चित्त वाले बड़े आदमियों की भी बुद्धि टेढ़ी पड़ जाती है।

"विधाता ने कपाल में जो अक्षर लिख दिए हैं, उसे अपनी बुद्धि से मिटाने में बड़े पंडित भी अशक्त हैं।"

वे दोनों इस तरह बातचीत कर ही रहे थे कि वहां मित्र के दुःख से दुखी हृदय वाला मंथरक भी धीरे-धीरे आ पहुंचा। उसे देखकर हिरण्यक ने लघुपतनक से कहा, "अरे! यह बात ठीक नहीं हुई।" हिरण्यक बोला, "क्या वह शिकारी आ रहा है ?" उसने कहा, "शिकारी की बात तो अलग रही, यह तो मंथरक आ रहा है। उसने नीति के विरुद्ध आचरण किया है, क्योंकि अगर वह शिकारी पहुंच गया तो मंथरक की वजह से हम सब का नाश होगा। शिकारी के आने पर मैं तो आकाश में उड़ जाऊंगा, तू बिल में घुसकर अपने को बचा लेगा और चित्रांग भी तेजी से दूसरी दिशा में भाग जायगा, पर इस जलचर का क्या होगा, यह सोचकर मैं व्याकुल हूं।" इसी बीच में मंथरक वहां पहुंच गया। हिरण्यक ने कहा, "तूने यहां आकर ठीक नहीं किया। इसलिए जब तक शिकारी न आये, उसी बीच में तू पीछे लौट जा।" मंथरक ने कहा, "भद्र! मैं क्या करूं, वहां रहकर मैं मित्र के दुःख रूपी आग का दाह सहन नहीं कर सकता था, इससे यहां आया हूं। अथवा यह ठीक ही कहा है कि

"यदि अच्छी दवा के समान मित्र जनों का संयोग न होता तो प्रियजनों का वियोग और धन का नाश कौन सहन कर

सकता है ?

"मर जाना श्रेयस्कर है,पर आप ऐसे लोगों से वियोग सहना उचित नहीं। जन्मान्तर में प्राण पुनः मिलेगा, पर आप जैसे मित्र नहीं।"

जब वह यह सब कह रहा था, इसी बीच में कान तक धनुष की डोर चढ़ाये शिकारी वहां आ पहुंचा। उसे देखते ही चूहे ने उसके तांत के बंधन उसी समय काट दिए और चित्रांग तुरन्त पीछे देखता हुआ भाग निकला। लघुपतनक पेड़ पर चढ़ गया और हिरण्यक पास के बिल में घुस गया। हिरन के भाग जाने से दुखी और अपनी मेहनत व्यर्थ जाते देखकर उस शिकारी ने मंथरक को धीरे-धीरे जमीन पर रेंगते हुए देखा और सोचा, "यद्यपि हिरन को तो विधाता ने मुझसे छीन लिया फिर भी उसने मेरे भोजन के लिए इस कछुए का इन्तजाम कर दिया है। इसके मांस से मेरे कुटुंबियों के भोजन का प्रबंध होगा।" यह सोचकर कछुए को घास से ढांक कर और धनुष के ऊपर लटकाकर तथा कंधे पर रखकर वह अपने घर की ओर चल पड़ा।

इस तरह उसे ले जाते हुए देखकर दुःख से व्याकुल हिरण्यक ने कहा, "अरे! भयंकर दुख आ उपस्थित हुआ है। कहा है कि

"समुद्र की तरह एक दुःख से तो मैंने पार पाया ही नहीं था कि तब तक दूसरा दुःख आ पहुंचा। छेद यानी दुर्बल स्थान होने से वहां अनेक अनर्थ पैदा हो जाते हैं।

"समय पर रास्ते में जब तक बाधा न पड़े तब तक आनन्द है। पर बाधा आ पड़ने पर कदम-कदम पर तकलीफ होती है।

"जो नम्र और सरल होता है वह आपत्ति में नष्ट नहीं होता। शुद्ध वंश में पैदा हुए (धनुष के पक्ष में बांस) धनुष, मित्र और स्त्री दुर्लभ हैं।

"माता, स्त्री, सगा भाई, और पुत्र में वैसा विश्वास नहीं होता जैसा कि गाढ़े मित्र में।

जिस काल ने मेरे धन का नाश किया, फिर क्यों उसने रास्ते में थके

हुए मेरे लिए विश्रांतिरूप मित्र को भी हर लिया ? फिर मंथरक-जैसा दूसरा मित्र नहीं हो सकता। कहा है कि

"गरीबी के समय अच्छा फायदा, गुप्त बात कहना और आपत्ति से समय मुक्ति, ये तीनों मित्रता के फल हैं।

इसके बाद मेरा कोई दूसरा ऐसा मित्र नहीं है। अरे! विधाता, मेरे ऊपर दुःख के बाणों की निरन्तर वर्षा क्यों कर रहा है? क्योंकि पहले तो मेरे धन का नाश हुआ, फिर मैं अपने परिवार से बिछुड़ा, फिर मुझे देश छोड़ना पड़ा और अब मित्र का वियोग हो रहा है। अथवा सारे प्राणियों के जीवन का यही धर्म है। कहा भी है—

"शरीर विनाशके पास ही रहता है, सम्पत्ति पल-भर में नष्ट हो जाने वाली है, संयोग के साथ वियोग होता है, ये सब बातें प्राणियों पर लागू हैं।

और भी

"एक चोट पर फिर से दूसरी चोटें लगती हैं, धन की कमी होने पर भूख बढ़ती है, आपत्तियों में वैर उत्पन्न होता है और जहां कमजोरी होती है वहां अनेक अनर्थ पैदा होते हैं।

अहो! किसी ने ठीक ही कहा है कि

"भय प्राप्त होने पर रक्षा-स्वरूप तथा प्रीति और विश्वास का स्थान, ऐसे 'मित्र' ये दो अक्षर रूपी रत्न किसने बनाए होंगे?"

इसी बीच में चित्रांग और लघुपतनक रोते हुए वहां आए। हिरण्यक ने उनसे कहा, "अरे! वृथा रोने से क्या मतलब? जब तक कि मंथरक आंखों से ओझल न हो जाय, उसी बीच में उसे छुड़ाने का उपाय सोचना चाहिए। कहा है कि

"दुःख आने पर मोहवश होकर जो केवल विलाप करता है, वह रोना तो बढ़ाता ही है, पर साथ-ही-साथ दुःखसे पार भी नहीं पा सकता। नीति-शास्त्र के पंडितों ने आपत्ति की एक ही दवा कही है, वह है आपत्ति काटने का प्रयत्न और विषाद का त्याग।

और भी

अतीत के लाभ की रक्षा के लिए, भविष्य के लाभ की प्राप्ति के लिए और आपत्ति में पड़े हुए को छुड़ाने के लिए जो सलाह की जाय, वही उत्तम सलाह है ।"

यह सुनकर कौए ने कहा , "अगर यह वात है तो मेरी वात मानो । शिकारी के रास्ते में जाकर और किसी तलैया को खोजकर उसके किनारे चित्रांग वेहोश होकर पड़ रहे । मैं भी उसके माथे पर वैठकर चोंच की धीमी चोटों से उसका सिर खोदूंगा जिससे वह शिकारी मेरे नोचने से इसे मरा जानकर मंथरक को जमीन के ऊपर रखकर हिरन के लिए दौड़ेगा । उसी समय तुम जल्दी से दर्भ का वंधन काट डालना, जिससे मंथरक जल्दी से तालाव में घुस सके । चित्रांग ने कहा, "तूने यह वड़ा सुन्दर विचार प्रकट किया । निश्चय ही अव मंथरक को छूटा हुआ ही मानना चाहिए । कहा है कि

"सव प्राणियों के वारे में काम पूरा होगा या नहीं होगा, यह चित्त का उत्साह पहले से ही वता देता है । वुद्धिमान पुरुष ही यह वात जानता है, दूसरा नहीं ।

इसलिए ऐसा ही करो ।" ऐसा ही करने में आया भी । शिकारी ने रास्ते में तलैया के किनारे कौए के साथ चित्रांग को उसी प्रकार से देखा । उसे देखकर खुशी-खुशी वह विचार करने लगा , "यह मृग जिसकी कुछ आयुष्य वच गई थी, किसी तरह अपने फंदे छुड़ाकर फंदे के वेदना के कारण वेचारा मर गया है । ठीक-ठीक वंधे रहने के कारण यह कछुआ तो मेरे वश में है ही । फिर इस हिरन को भी मैं लूंगा । इस तरह विचार करके और कछुए को जमीन पर रखकर वह हिरन की ओर दौड़ा । उसी समय हिरण्यक ने अपने वज्र समान दांतों की चोट से दर्भ के वंधनों को काटकर उसी क्षण टुकड़े-टुकड़े कर डाला और मंथरक भी तिनकों के वीच से निकल कर तलैया में घुस गया । चित्रांग भी शिकारी के आने के पहले ही उठकर कौए के साथ दूर भाग गया ।

उस समय लज्जा और खेद से युक्त शिकारी ने पीछे फिरकर देखा तो कछुआ भी गायब था। बाद में वहां बैठकर उसने यह श्लोक पढ़ा—

"एक बड़ा मृग मेरे जाल में फंस गया था, उसे भी तूने हर लिया; बाद में कछुआ मिला, वह भी तेरे आदेश से चल दिया। अपनी स्त्री और बालकों से अलग होकर मैं भूख की पीड़ा से इस वन में घूम रहा हूं, इसलिए हे स्वामी काल! तूने अभी तक जो नहीं किया है वह भी कर ले; उसके लिए भी मैं तैयार हूं।"

इस तरह रोते-कलपते वह अपने घर चला गया। उसके दूर निकल जाने के बाद परम आनंदित कौआ, कछुआ, हिरन और चूहा एकत्रित होकर एक-दूसरे को भेंटकर और अपना पुनर्जन्म मानकर, उसी तालाब के किनारे जाकर, बातचीत और हंसी-मजाक में अपना समय बिताने लगे।

यह जानकर बुद्धिमान को मित्र बनाना चाहिए और मित्र के साथ निष्कपट व्यवहार करना चाहिए। कहा है कि

"जो मनुष्य मित्र बनाता है और उसके साथ निष्कपट भाव से व्यवहार करता है वह किसी तरह का तिरस्कार नहीं पाता।"

काकोलूकीय

अब काकोलूकीय नामक तीसरा तंत्र आरम्भ होता है जिसका पहला श्लोक है

"जिसके साथ पहले लड़ाई हुई हो, ऐसे शत्रु के साथ मित्रता भी हो जाने पर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए ; उल्लुओं से भरी गुफा कौए द्वारा लगाई गई आग से जल गई। यह देखो :

इस बारे में ऐसा सुनने में आता है —

दक्षिण जनपद में महिलारोप्य नाम का एक नगर है। उसके पास शाखाओं से भरा और घने पत्तों से ढका एक बरगद का पेड़ था। वहां मेघवर्ण नामक कौओं का राजा अपने अनेक कुटुंबियों के साथ रहता था। किलेबन्दी करके परिवार के साथ उसका समय बीतता था। अरिमर्दन नाम का उल्लुओं का राजा भी असंख्य उल्लुओं के परिवार के साथ पर्वत के गुफा रूपी दुर्ग में रहता था। रात होने पर वह हमेशा बरगद के चारों ओर चक्कर मारता था। वह उल्लुओं का राजा पहली दुश्मनी के कारण किसी कौए के मिलने पर उसे मार डालता था। इस तरह रोज-रोज आकर उसने बरगद के ऊपर के किले को बिना कौओं का बना दिया। अथवा यह होना ही था। कहा भी है—

"जो आलसी स्वतंत्रता से बढ़ते हुए अपने शत्रु और रोग की उपेक्षा करता है, वह उनसे धीरे-धीरे मारा जाता है।

और भी

"जो पैदा होते ही शत्रु और रोग को नष्ट नहीं कर देता, वह जोरदार होने पर भी शत्रु और रोग बढ़ने से मारा जाता है।"

एक दिन कौओं के राजा ने अपने सब मंत्रियों को बुलाकर कहा, "हमारा शत्रु उत्कट, उद्यमी और समय जानने वाला है, इसलिए वह हर रात आकर हमें मारता है। इसका प्रतिकार कैसे करना चाहिए ? हम रात को देख नहीं सकते, और उसका किला कहां है यह भी हम नहीं जानते, जिससे वहां जाकर उस पर आक्रमण कर सकें। इसलिए संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैवी-भाव इनमें से किस उपाय का यहां प्रयोग करना चाहिए ?" उसके मंत्रियों ने जवाब दिया, "देव ने यह सवाल ठीक ही किया है। कहा है कि

"बिना पूछे सचिव को कुछ न कहना चाहिए,पर पूछने पर उसे हित की बात. चाहे वह प्रिय लगे अथवा अप्रिय फौरन कहनी चाहिए। पूछने पर भी जो परिणाम में हितकारी बात नहीं कहता, केवल मीठा बोलता है, वह मंत्री नहीं शत्रु है।

हे राजन् ! एकांत में बैठकर हमें सलाह-मशविरा करना चाहिए, जिससे हम उसके आक्रमण का कारण खोजकर उसके बारे में निर्णय कर सकें।"

इस मेघवर्ण के पांच खानदानी मंत्री थे, जिनके नाम उज्जीवि, संजीवि, अनुजीवि, प्रजीवि और चिरंजीवि थे। सबसे पहले उसने उज्जीवि से पूछा, "भद्र ! इस स्थिति में तेरा क्या विचार है ?" उसने कहा, "राजन् ! बलवान के साथ लड़ाई नहीं करनी चाहिए। वह बलवान और समय पर वार करने वाला है। कहा भी है कि

"समय पर बलवान को प्रणाम करने वाले और समय देखकर उस पर वार करने वाले की सम्पत्ति नदियों में बहाव के विरुद्ध

जाने वाले की तरह कम नहीं होती।

"अपने प्राण को संशय में जानकर अनार्य के साथ भी संधि करनी चाहिए। प्राणों की रक्षा करने से ही सबकी रक्षा होती है।

"जो शत्रु सत्यवादी, धार्मिक, आर्य, भाई-बंधु वाला, बलवान तथा बहुतों पर विजय करने वाला हो तो उसके साथ संधि करनी चाहिए।

बहुत सी लड़ाइयों में फतह पाने वाले के साथ तो खास करके हमें सुलह करनी चाहिए। कहा है कि

"अनेक लड़ाइयों में कामयाबी के साथ जो मेल करता है, उसके वश में उसके प्रभाव से शत्रु जल्दी से आ जाते हैं।

"बृहस्पति ने कहा है कि अपने बराबर वाले के साथ भी संधि करने की इच्छा करनी चाहिए। क्योंकि लड़ाई में विजय संदिग्ध होती है, इसलिए-शंका युक्त कोई काम नहीं करना चाहिए।

"युद्ध करने वालों की विजय हमेशा संदेह में रहती है, इसलिए तीन उपाय (साम, दाम और भेद) आजमाने के बाद ही युद्ध करना चाहिए।

"अभिमान से जो अंधा बनकर अपने समान वाले के साथ मेल नहीं करता, वह उसके आक्रमण से, कच्चे घड़ों की टक्कर की तरह, दोनों का नाश करता है।

"कमजोर की बलवान के साथ लड़ाई उसकी मृत्यु का कारण बनती है। पत्थर जब तक घड़े को फोड़ नहीं डालता, तभी तक वह घड़ा रहता है। इसी प्रकार बलवान कमजोर को जब तक नहीं मार पाता, तभी तक कमजोर रह सकता है।

और भी

"जमीन, मित्र और सोना ये लड़ाई के तीन कारण हैं। इनमें से एक भी अगर कारण नहीं हो तो लड़ना नहीं चाहिए।

"पत्थर के ढोकों से भरा हुआ चूहे का दिल खोदते हुए सिंह के नाखून

टूट जाते हैं, अथवा उसके प्रयत्न का फ़ल केवल चूहा मिलता है।

"इसलिए जिससे बड़ा लाभ न मिले और केवल लड़ाई ही हो, एसा काम न तो स्वयं पैदा करना चाहिए न करना ही चाहिए।

"फिर लक्ष्मी की इच्छा रखने वालों को बलवान द्वारा आक्रमण होने पर बेंत की तरह झुक जाना चाहिए, सांप के जैसा फुफकारना नहीं चाहिए।

"बेंत की तरह आचरण करने वाला समृद्धिशाली होता है, पर सांप बरतने वाला मारा ही जाता है।

"बुद्धिमान पुरुष को कछुए की तरह अपना शरीर सिकोड़कर प्रहार सहन करना चाहिए और समय आने पर काले सांप की तरह डट जाना चाहिए।

"लड़ाई सामने आई देखकर साम से उसको शांत करना चाहिए। विजय अनिश्चित होने से एकाएक लड़ाई में कूद नहीं पड़ना चाहिए।

"बलवान के साथ युद्ध करना, यह कोई उदाहरण नहीं है। बादल कभी उलटी हवा के सामने नहीं जाता।"

इस तरह उज्जीवि ने मेल कराने वाले साम का विचार कहा। यह सुनकर मेघवर्ण ने संजीवि से कहा, "भद्र! तुम्हारा अभिप्राय भी मैं सुनने का इच्छुक हूं।" उसने कहा, "देव! शत्रु के साथ सुलह करना मुझे नहीं भाता। कहा है कि

"गाढ़ी संधि के साथ भी शत्रु के साथ सुलह नहीं करनी चाहिए। अच्छी तरह से गरम पानी भी आग को बुझा देता है।

और वह अरिमर्दन तो क्रूर, लालची और अधर्मी है। फिर वह आपके संधि करने योग्य नहीं है। कहा है कि—

"जो सचाई और धर्म से अलग हो, उसके साथ किसी तरह का मेल नहीं करना चाहिए। अगर अच्छी तरह से सुलह की भी गई हो तो वह बदमाशी से थोड़े ही समय में फिर बदल जाती है।

इसलिए उसके साथ लड़ाई करनी चाहिए। यह मेरा निश्चय है। कहा है कि

"निर्दय, लालची, आलसी, झूठा, दम्भी, डरपोक, अस्थिर, मूर्ख और युद्ध के प्रतिकूल दुश्मन को सुखपूर्वक उखाड़ फेंका जा सकता है।

फिर उसने तो हमें हराया है। अगर आप उसके साथ मेल करते हैं तो फिर वह कौओं को मारेगा। कहा है कि

"चौथे उपाय यानी दंड से वश में करने योग्य शत्रु के प्रति साम का प्रयोग करना उलटी क्रिया है। ज्वर में पसीना लाना चाहिए, वहां पानी कौन छिड़कता है?

"अच्छी तरह तपे हुए घी में पानी के छींटे देने से वह और भी तप जाता है। उसी तरह क्रोधित पुरुष के सामने साम का प्रयोग करने से वह और अधिक क्रोधित हो जाता है।

फिर जब आप यह कहते हैं कि दुश्मन ताकतवर है, यह भी मेल करने का कारण नहीं है। कहा है कि

"उत्साह और शक्ति-सम्पन्न छोटा शत्रु भी बड़े शत्रु को मार डालता है जैसे सिंह हाथी को मारकर अपना राज्य कायम करता है।

"भीम ने स्त्री का रूप धारण करके जिस तरह कीचक को मारा था, उसी तरह जो शत्रु बल से न मारा जा सके उसे कपट से मारना चाहिए।

और भी

"मृत्यु की तरह उग्रदंड धारण करने वाले राजा के वश में शत्रु होते हैं। दयावान राजा को शत्रु घास-बराबर समझते हैं।

"जिसका तेज तेजस्वियों का तेज हर नहीं लेता, ऐसे केवल माता का यौवन हरने वाले मनुष्य के व्यर्थ जन्म से क्या लाभ?

"जिस लक्ष्मी का अंग शत्रुओं के रक्त से लिप्त नहीं होता वह मनोहर होने पर भी मनस्वियों के मन में प्रेम उत्पन्न नहीं करती।

"जिस राजा की भूमि शत्रु के लहू से और उनकी स्त्रियों के आंसू से नहीं सिंचती, उसके जीवन की क्या प्रशंसा ?"

इस प्रकार संजीवि ने लड़ाई की सलाह दी। उसे सुनकर मेघवर्ण ने अनुजीवि से कहा, "भद्र! तुम भी अपने मन की वात कहो।" उसने उत्तर दिया, "देव! यह दुष्ट वल में अधिक और विना मर्यादा का है। इसलिए इसके साथ संधि या लड़ाई करना उचित नहीं है; पीछे हटना ही उसके योग्य है। कहा है कि

"वल में वढ़-चढ़कर, दुष्ट और मर्यादा रहित शत्रुके साथ पीछे हटे विना सुलह अथवा लड़ाई करने वाला प्रशंसनीय नहीं गिना जाता।

"पीछे हटना दो तरह का होता है। एक भय उपस्थित होने पर प्राण और धर्म की रक्षा के लिए और दूसरा विजय की कामना वाले के प्रयाण लक्षण रूपी।

"पराक्रमशील विजयी को शत्रु के प्रदेश पर कार्तिक अथवा चैत्र में धावा वोलना प्रशंसनीय है, किसी दूसरे समय नहीं।

"संकट में पड़े हुए तथा अनेक दोषों वाले शत्रु के ऊपर आक्रमण करने के लिए सव समय ठीक है।

"राजा को शूर, विश्वासपात्र, और महावलवान सैनिकों के साथ अपनी जगह को दृढ़ करने के वाद अपने गुप्तचरों को पहले से ही आगे फैलाकर शत्रु के देश के ऊपर आक्रमण करना चाहिए।

"रास्ता, रसद, पानी और अनाज के साधन के विना जो शत्रु के देश के ऊपर आक्रमण करता है, वह फिर कर अपने राष्ट्र को वापस नहीं आता।

इसलिए हमारे लिए हटना ही ठीक है।

वलवान पापी के साथ न लड़ना चाहिए, न संधि करनी चाहिए। काम में फायदा न देखकर वद्धिमान भागना ही ठीक मानते हैं। कहा भी है कि

"मेढ़ा लड़ते समय अगर पीछे हटता है तो टक्कर मारने के लिए, सिंह अगर अपना शरीर सिकोड़ता है तो अत्यन्त क्रोध से छलांग मारने के लिए; अपने विचारों को हृदय में रखकर, अपनी मंत्रणा और आचरण को गुप्त रखते हुए तथा किसी चीज की परवाह न करते हुए बुद्धिमान पुरुष सब कुछ सह लेता है।

और भी

"शत्रु को बलवान देखकर जो देश त्याग कर देता है वह युधिष्ठिर की तरह जीवित रहकर फिर से पृथ्वी को प्राप्त कर लेता है।

"जो कमजोर आदमी अभिमान में आकर बलवान के साथ लड़ाई लड़ता है वह शत्रु की इच्छा-पूर्ति और अपने कुल का नाश करता है।

इसलिए बलवान के आक्रमण करने पर अब पीछे हटना ही ठीक है, संधि करना अथवा लड़ना नहीं।" इस तरह अनुजीवि ने पीछे हटने के संबंध में अपनी राय कही। उसे सुनकर मेघवर्ण ने प्रजीवि से कहा, "भद्र! तुम अपने मन की बात कहो।" उसने कहा "देव! मुझे संधि, लड़ाई अथवा पीछे हटना, ये तीनों नहीं भाते। पर आसन मुझे ठीक लगता है।

कहा भी है कि

"अपने स्थान में रहकर मगर बड़े हाथी को भी खींच लेता है, पर वही अपने स्थान से च्युत होने पर कुत्ते से हराया जाता है।

और भी

"बलवान के आक्रमण करने पर यत्नशील को दुर्ग में रहना चाहिए, और वहां रहकर अपनी मुक्ति के लिए मित्रों को बुलाना चाहिए।

"शत्रु का आगमन सुनकर डरे मन से जो अपनी जगह छोड़ देता है, वह आदमी फिर वहां बस नहीं सकता।

"दांत के बिना सांप और मद के बिना हाथी की तरह बिना जगह के राजा, ये सबके लिए सुलभ हैं।

"अपने स्थान में रहता हुआ एक मनुष्य भी सैकड़ों शत्रुओं का युद्ध में मुकाविला कर सकता है। इसलिए अपनी जगह छोड़नी नहीं चाहिए।

"इसलिए दुर्ग को योद्धाओं, रास्तों, शहर पनाह, खाई से युक्त करके तथा शस्त्रों से सजाकर लड़ाई का निश्चय करके उसमें रहना चाहिए। राजा अगर जिंदा रहे तो राज्य पाता है और मरे तो स्वर्ग जाता है।

और भी

"एक स्थान में जमे हुए पेड़ प्रतिकूल हवा से भी जिस तरह नहीं उखड़ते, उसी तरह एक स्थान में जमे हुए छोटे आदमी भी जोरदार से दुःख नहीं पाते। वड़ा तथा चारों ओर से दृढ़ पेड़ भी अगर अकेला हो तो जोर की हवा उसे हिला सकती है, लेकिन वहुत से एक साथ लगे हुए वृक्ष एक होने से तेज हवा से भी नहीं गिरते।

"इसी तरह वहादुर आदमी भी अगर अकेला हो तो भी दुश्मन उसे हरा सकता ह, और उसे मार भी डालता है, ऐसा माना गया है।"

इस तरह प्रजीवि ने अपना विचार कहा। इसका नाम आसन है। यह सुनकर मेघवर्ण ने चिरंजीवि से कहा, "भद्र! तू भी अपना विचार कह।" उसने उत्तर दिया, "छः गुणों में मुझे संश्रय अच्छा लगता है। इसलिए उसका पालन कीजिए। कहा है कि

"समर्थ और तेजस्वी पुरुप भी विना सहारे के क्या कर सकता है? विना हवा के जली हुई आग भी स्वयं वुझ जाती है।

"मनुष्यों के लिए विशेष कर अपने पक्ष का संग-साथ वेहतर है, भूसी से भी अलग हो जाने पर धान नहीं उगता।

इसलिए यहीं रहकर आप किसी वलवान का सहारा लीजिए जो आपकी विपत्ति से रक्षा करे। अगर आप अपनी जगह छोड़ दीजिएगा,

तो कोई बात से भी आपकी मदद नहीं करेगा। कहा है कि

आग जब तक वन जलाती रहती है तब तक हवा उसकी मित्र रहती है, पर वही हवा दीपक का नाश करती है। कमजोरी की हालत में कौन मित्र है ?

अथवा एक ही बलवान का सहारा लेना यह भी कोई दृढ़ नियम नहीं है। छोटों का भी आसरा लेने पर रक्षा होती है। कहा भी है—

"घने बांसों से घिरा हुआ एक बांस जिस तरह उखाड़ा नहीं जा सकता, उसी तरह कमजोर राजा भी अगर समुदाय वाला हो तो वह उखाड़ा नहीं जा सकता।

फिर बड़ों का सहारा हो तो कहना ही क्या है ! कहा है कि

"बड़ों का साथ किसकी उन्नति नहीं कर सकता। कमल के पत्ते के ऊपर का पानी मोती की आभा देता है।

इसलिए बिना सहारे के किसी तरह बदला नहीं लिया जा सकता। सहारा लेकर पीछे लड़ाई करना, यही मेरा अभिप्राय है।" इस तरह चिरंजीवि ने अपना विचार कहा। उसके कहने के बाद मेघवर्ण राजा ने अपने पिता के पुराने बूढ़े मंत्री स्थिरजीवि से, जो सब नीति-शास्त्रों में पारंगत था, प्रणाम करके कहा, "बाबा ! अपके यहां बैठे रहते भी इन सचिवों की परीक्षा लेने के लिए मैंने इनसे पूछा था। यह सब सुनकर आप मेरे लिए जो उचित हो वैसा कहिए। अगर इनकी बात ठीक है तो वैसी आज्ञा कीजिए।" उसने उत्तर दिया, "इन सबने नीति-शास्त्र के अनुसार ही बातें कहीं हैं। यह बातें अपने-अपने समय पर ही काम की हैं, पर यह समय दुतरफी चाल का है। कहा है कि

"बलवान शत्रु का सुलह और लड़ाई करते हुए जीतने का भरोसा नहीं। दुतरफी चाल का सहारा लेने पर ऐसा नहीं होता।

शत्रु को विश्वास और अविश्वास का लोभ दिखलाते हुए उसका सुखपूर्वक नाश हो सकता है। कहा है कि

"उखाड़ने लायक शत्रु को भी विद्वान् एक बार ऊपर उठाते हैं;

गुड़ से बढ़ा हुआ कफ तो अच्छे होने पर स्वयं ठीक हो जाता है।

"स्त्री, शत्रु, कुमित्र तथा विशेष-कर वेश्याओं के साथ जो एक भाव से विश्वास करता है, वह मनुष्य जिंदा नहीं रहता।

"देवता का, ब्राह्मण का, अपना तथा गुरु का काम एक भाव से करना चाहिए, पर दूसरों का काम दुतरफी चाल से करना चाहिए।

"भावितात्मा यतियों के लिए अद्वैतभाव सदा प्रशंसनीय है,पर कामियों के लिए तथा खासकर राजाओं के लिए वह प्रशंसनीय नहीं है।

इस तरह दुतरफी चाल के सहारे तू अपनी जगह रह सकेगा और लालच के सहारे शत्रु को उखाड़ फेंकेगा। फिर यदि उसमें कोई दोष देखेगा तो उसे मार गिराएगा।" मेघवर्ण ने कहा, "तात ! मैं उसका अड्डा तक तो जानता नहीं, फिर दोष कैसे जानूंगा ?" स्थिरजीवि ने कहा, "वत्स ! उसके स्थान काही नहीं, उसके दोषों का भी मैं गुप्तचरों से पता लगाऊंगा। कहा है कि

"पशु गंध से देखते हैं, ब्राह्मण वेद से देखते हैं, राजा गुप्तचरों से देखते हैं और दूसरे मनुष्य आंखों से देखते हैं।

इस विषय में कहा भी है—

"जो राजा गुप्तचरों द्वारा अपने पक्ष के तथा विशेष-कर दूसरे पक्ष के तीर्थों को (उच्चाधिकारी) जानता है, वह दुःखजनक स्थिति को प्राप्त नहीं होता।"

मेघवर्ण ने कहा ,"तात ! तीर्थ किन्हें कहते हैं ? उनकी संख्या क्या है ? गुप्तचर कैसे होते हैं ? यह सब कहिए।" वह बोला , "इस विषय में भगवान नारद ने युधिष्ठिर से कहा था—शत्रु पक्ष में अठारह और अपने पक्ष में पन्द्रह तीर्थ होते हैं। तीन-तीन गुप्तचरों द्वारा उन तीर्थों का हाल जानना चाहिए। उन्हें जानने से स्वपक्ष और परपक्ष अपने वश में आते हैं। नारद ने युधिष्ठिर से कहा था—

"क्या तुम दूसरे पक्ष के अठारह और अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों को तथा एक-दूसरे से अपरिचित, ऐसे तीन-तीन गुप्तचरों को

जानते हो ?

"तीर्थ शब्द से आयुक्तकर्मी अर्थात् राज्य कर्मचारी का अर्थ होता है। अगर उसमें एक भी बदमाश हो तो स्वामी का अनर्थ उनसे होगा; और वे उत्तम हैं तो उनसे स्वामी की बढ़ती होगी।

"शत्रु-पक्ष के तीर्थ इस प्रकार हैं—मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वारपाल, अन्तर्वांशिक (अन्तःपुर का अधिकारी), प्रशासक, प्रधान-न्यायाधीश, समाहर्त्ता (टिकस वसूल करने वाला), सन्निधाता, (लोगों को राजसभा में दाखिल करने वाला), प्रदेष्ट्रा (न्यायाधीश), ज्ञापक (अर्जी सुनने वाला), साधनाध्यक्ष (घुड़सवारों का अध्यक्ष), गजाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, दुर्गपाल, कारापाल (जेलर), सीमापाल (राज्य-सीमा की रक्षा करने वाला), और मर मिटने वाले नौकर। इन सब के फोड़ने से दुश्मन तुरन्त वश में आता है। अपने पक्ष में भी—देवी, राजमाता, कंचुकी, माली, शय्यापाल, गुप्तचर, ज्योतिषी, वैद्य, पानी भरने वाला, पान बीड़ा ले जाने वाला, आचार्य, अंगरक्षक, स्थान-चिन्तक (सेना का नायक), छाता लेने वाला और वेश्या, ये तीर्थ हैं। इनके साथ दुश्मनी करने से अपने पक्ष का नाश होता है। स्वपक्ष में अधिकार रखने वाले गुप्तचर, वैद्य, ज्योतिषी, आचार्य, सर्प-विद्या जानने वाले और पागल शत्रुओं का सब भेद जान लेते हैं।

और भी

"जिस तरह पैर के अन्दाज से पानी की गहराई जान ली जाती है, उसी तरह अपने काम में कुशल गुप्तचर अधिकारियों का भीतरी भेद लेकर शत्रुरूपी गहरे जल की थाह जान लेते हैं।"

इस तरह मंत्री की बात सुनकर मेघवर्ण ने कहा, "तात! कौओं और उल्लुओं के बीच हमेशा जानी दुश्मनी चले आने का कोई कारण तो रहा होगा।" स्थिरजीवि कहने लगा —

कौओं और उल्लुओं के बीच पुराने वैर की कथा

"वत्स ! एक समय हंस, तोते, बगले, कोयल, चातक, उल्लू, मोर, कबूतर, परेवा, मुर्गे इत्यादि पक्षी इकट्ठे होकर उद्वेग से विचार करने लगे, "अहो ! गरुड़ हम सब के राजा हैं पर वे वासुदेव के सेवक हैं, इसलिए कभी हमारी चिंता नहीं करते। ऐसे व्यर्थ के मालिक से क्या लाभ जो बहेलियों के जाल से बंधते हुए हमारी कभी रक्षा नहीं करते! कहा भी है,—

"जो दूसरों से तकलीफ पाते हुए और डरे हुए जीवों की रक्षा नहीं करता, वह राजा के रूप में काल है, इसमें शक नहीं।

"जहां पर राजा अच्छा नेता नहीं होता तो कर्णधार के बिना नौका की तरह प्रजा का नाश होता है।

"उपदेश न देने वाला आचार्य, अध्ययन न करने वाला ऋत्विज, रक्षा न करने वाला राजा, कड़वा बोलने वाली पत्नी, गांव में रहने वाला ग्वाला और वन में रहने की इच्छा करने वाला नाई, इन छहों को समुद्र में टूटे हुए जहाज की तरह छोड़ देना चाहिए।

इसलिए हम सबको सोच-विचारकर किसी दूसरे पक्षी को राजा बनाना चाहिए।" बाद में अच्छी शकल के उल्लू को देखकर सबने कहा कि "यह उल्लू हम सब का राजा होगा, इसलिए राजतिलक में लगने वाली चीजें लाओ।" बाद में अनेक तीर्थों का जल लाया गया। एक सौ आठ औषधियोंकी जड़ों से सामग्री बनी। सिंहासन सजाया गया। सात द्वीपों वाली पृथ्वी का व्याघ्रचर्म फैलाया गया, मंडल चित्रित किया गया। विचित्र पर्वतों सहित सोने का घड़ा भरा गया। दीप, वाद्य और शीशे जैसी मांगलिक वस्तुएं तैयार की गईं। प्रधान वन्दीजन स्तुति-पाठ करने लगे। ब्राह्मण एक स्वर से वेदोच्चार करने लगे। युवतियां गीत गाने लगीं। कृकालिका नाम पट्टरानी को जैसे ही लाया गया और जैसे ही राजतिलक के लिए उल्लू राज-सिंहासन पर बैठ रहा था, कि कहीं से एक कौआ आ

निकला और बोला, "पक्षियों का यह मेला और महोत्सव किसलिए हो रहा है ?" बाद में पक्षी उसे देखकर आपस में कहने लगे, "पक्षिओं में कौआ चतुर है, ऐसा सुना गया है। कहा भी है कि—

"मनुष्यों में नाई, पक्षिओं में कौआ, दांतवाले प्राणियों में सियार, तपस्वियों में श्वेतभिक्षु (गोरस त्यागने वाला पांडुर भिक्षु) धूर्त होता है।

इसलिए इसकी बात माननी चाहिए। कहा है कि

"विद्वानों द्वारा बहुत बार और बहुतों के साथ सोची हुई तथा अच्छी तरह से योजित की गई और विचारी हुई योजनाएं किसी तरह मुश्किल नहीं पड़तीं।"

बाद में कौए ने आकर उनसे कहा, "महाजनों का यह सम्मेलन और परम महोत्सव किसलिए हो रहा है ?" उन्होंने उत्तर दिया, "अरे ! पक्षिओं का कोई राजा नहीं है इसलिए सब पक्षियों ने उल्लू को पक्षियों के राजा की तरह राजतिलक करने का निश्चय किया है। अब तू अपना अभिप्राय कह, तू ठीक समय पर आया है।" इस पर उस कौए ने हंसकर कहा, "अरे यह ठीक नहीं है। मोर, हंस, कोकिल, चकवा, तोता, हारिल, सारस आदि मुख्य पक्षियों के होते हुए भी दिन में अंधे और बदसूरत उल्लू का अभिषेक करने में मेरी सम्मति नहीं है। क्योंकि—

"दिन में अंधा यह उल्लू, क्रोध में न होते हुए भी टेढ़ी नाक वाला, ऐंची आंख वाला, भयंकर और बदसूरत है। फिर क्रोधित होने पर वह कैसा लगेगा ?

और भी

"स्वभाव से ही अत्यन्त भयंकर, अतिक्रोधी, निर्दय, और बदसूरत उल्लू को राजा बनाने से हम सबको क्या फायदा होगा ?

फिर गरुड़ के हम सबका राजा होते हुए इस दिन में अंधे को किस लिए राजा बनाया जा रहा है ? वह शायद गुणवान हो सकता है, पर एक राजा के होते हुए दूसरे राजा को बनाना प्रशंसनीय नहीं गिना जा सकता।

"एक ही तेजस्वी राजा पृथ्वी के लिए हितकारी होता है। प्रलय काल में सूर्यों की तरह यहां वहुत से राजे तो केवल विपत्ति के कारण ही वन जाते हैं।

फिर केवल गरुड़ का ही नाम लेकर तुम शत्रुओं से अजेय हो सकते हो। कहा है कि

"दुष्टों के सामने अपने मालिकस्वरूप वड़ों के नाम मात्र लेने से ही सिद्धि मिलती है। चन्द्रमा का नाम लेने से खरगोश सुखपूर्वक रहता है।"

पक्षियों ने कहा, "यह कैसे ?" कौआ कहने लगा—

खरगोश ग्रौर हाथी की कथा

"किसी वन में चतुर्दन्त नाम का यूथपति एक गजराज रहता था। एक समय वहां वहुत दिनों तक पानी नहीं वरसा, जिसकी वजह से तालाव, तलैया और सरोवरों में पानी सूख गया। इस पर सव हाथियों ने गजराज से कहा, "देव ! प्यास से व्याकुल होकर हाथियों के वच्चे मरने के करीव आ गए हैं और कुछ मर भी चुके हैं, इसलिए आप कोई जलाशय खोज निकालिए कि जहां पानी पीकर वे पुनः ठीक हो सकें।" वाद में वहुत देर तक विचार करके उसने कहा, "एक एकांत प्रदेश के वीच में पाताल-गंगा के पानी से हर समय भरा हुआ गढ़ा है, इसलिए तुम सव वहां चलो।" इस तरह पांच रात चलने के वाद वे सव उस गढ़े के पास पहुंचे और उसके पानी में इच्छापूर्वक स्नान करने के वाद सूरज डूवने के समय वाहर निकले। उस गढ़े के आस-पास कोमल भूमि में खरगोशों की अनेक विलें थीं। इधर-उधर भागते हुए उन हाथियों ने उस जगह को रौंद डाला। वहुत से खरगोशों के पांव, सिर और गर्दन टूट गई, वहुत से मर गए और वहुत से मरने के करीव पहुंच गए।

वाद में हाथियों का वह झुंड चला गया। इस पर जिनकी विलें हाथियों के पैर से टूट गई थीं, जिन कुछ के पैर टूट गए थे, जिन

कुछ की देह जर्जरित हो गई थी, जो कुछ लोहू-लुहान हो गए थे, और जिनकी मरने से आंखें आंसुओं से भरी थीं, ऐसे खरगोश इकट्ठे होकर आपस में सोचने लगे, "अरे ! हम सब मर गए ! हाथियों का यह झुंड रोज आयगा क्योंकि और किसी स्थान पर पानी नहीं है। इसलिए हम सबका नाश हो जायगा। कहा है कि

"हाथी छूते ही मार डालता है, सांप सूंघते ही मार डालता है, राजा हँसते हुए मारता है, और दुर्जन मान देते हुए मारता है। इसलिए इसका कोई उपाय सोचना चाहिए।"

उनमें से एक खरगोश बोला, "और क्या हो सकता है ? देश छोड़कर चले जाओ। मनु और व्यास ने भी कहा है कि

"कुल के लिए एक का त्याग करना चाहिए, गांव के लिए कुल का त्याग करना चाहिए, देश के लिए गांव छोड़ना चाहिए और अपने लिए पृथ्वी छोड़ देनी चाहिए।

"क्षेमकारी, नित्य धान देने वाली और पशुओं को बढ़ाने वाली जमीन भी राजा को अपनी रक्षा के लिए बिना किसी विचार के छोड़ देनी चाहिए।

"आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए तथा धन और स्त्री से हमेशा अपनी रक्षा करनी चाहिए।"

बाद में सब खरगोश बोले, "अरे ! बाप-दादों की जगह एकाएक छोड़ी नहीं जा सकती, इसलिए हाथियों को कोई ऐसा डर दिखाना चाहिए, जिससे भाग्यवशात् वे फिर यहां न आएं। कहा है कि

"विषहीन सर्प को भी बड़ा फन फैलाना चाहिए। जहर हो या न हो, पर फन का आडम्बर भयंकर लगता है।"

इसके बाद दूसरों ने कहा, "अगर ऐसी बात है तो उन्हें डराने के लिए एक ऐसा बड़ा उपाय है जिनसे वे फिर यहां न आएंगे। पर भय पैदा करने वाला वह उपाय दूत से ही साध्य हो सकता है। हमारा मालिक विजयदत्त

नामक खरगोश राजा चन्द्रविंव में रहता है, इसलिए किसी नकली दूत को यूथपति के पास भेजकर कहलवाओ कि चन्द्रमा तुझे इस गढ़े में आने से मना करता है,क्योंकि मेरा परिवार उसके आस-पास रहता है। ऐसी विश्वास-योग्य वातों से शायद वह पीछे लौट जाय।" इतने में दूसरे ने कहा, "अगर ऐसी वात है तो लंवकर्ण नामक खरगोश को जो वात वनाने वाला तथा दूत के काम में होशियार है, उसे ही वहां भेजना चाहिए। कहा है कि

"स्वरूपवान्, निस्पृह, वात वनाने वाला, अनेक शास्त्रों में चतुर और दूसरों की इच्छा जानने वाले आदमी को राजदूत की तरह अच्छा मानने में आया है।

और भी

"मूर्ख, लालची और विशेषकर झूठ वोलने वाले को जो दूत की तरह भेजता है, उसका काम सिद्ध नहीं होता।

इसलिए अगर तुम सव संकट से वचना चाहो तो ऐसे दूत को खोज निकालो।" वाद में दूसरे ने कहा, "अरे! यह ठीक ही है। हमें जीवित रहने के लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा ही करो।"

वाद में लंवकर्ण को हाथियों के यूथपति के पास भेजने का निश्चय किया गया और वह वहां गया। इसके वाद लंवकर्ण ने भी हाथी के आने वाले मार्ग में ऐसी जगह पर, जहां हाथी की पहुंच नहीं हो सकती थी, चढ़कर उससे कहा, "अरे वदमाश हाथी! इस तरह विना शंका के खेलता हुआ तू इस चन्द्र-हृद में किसलिए आता है? तुझे यहां आना नहीं चाहिए; पीछे लौट जा।" यह सुनकर विस्मित होकर हाथी ने कहा, "अरे! तू कौन है?" उसने उत्तर दिया, "मैं विजयदत्त नामक खरगोश हूं और चन्द्रविंव में रहता हूं, इसलिए भगवान चन्द्रमा ने मुझे तेरे पास दूत वनाकर भेजा है। तू जानता है कि ठीक-ठीक कहने वाले दूत का कोई दोष नहीं होता। राजाओं के मुख दूत ही हैं। कहा भी है—

"शस्त्र निकाल लेने पर भी, वंधुओं के मारे जाने पर भी कठोर वोलने वाले दूत का भी राजा वध नहीं करता।"

यह सुनकर हाथी ने कहा, "अरे खरगोश ! भगवान चन्द्रमा का संदेशा कह, उसका मैं शीघ्र पालन करूंगा।" उसने कहा, "गत दिवस अपने झुंड के साथ यहां आकर तूने बहुत से खरगोशों को मारा है। क्या तू यह जानता नहीं कि यह मेरा परिवार है ? अगर तू जीना चाहता है तो किसी कारण से भी इस गढ़े में न आना।" हाथी ने कहा, 'तेरे स्वामी भगवान् चन्द्र कहां हैं ?" उसने उत्तर दिया, 'तेरे यूथ द्वारा मारे गए और अधमरे खरगोशों के आश्वासन देने के लिए वह इस गढ़े में आकर विराजमान हैं, और मुझे तेरे पास भेजा है।" हाथी ने कहा, "अगर यह बात ठीक है तो मुझे अपने स्वामी के दर्शन करा, जिससे उन्हें प्रणाम करके हम दूसरी जगह चले जायं।" खरगोश ने कहा, "अरे ! तू मेरे साथ अकेला आ, मैं उनका दर्शन करा दूंगा।" इसके बाद रात के समय खरगोश ने उस हाथी को गढ़े के किनारे ले जाकर जल में पड़ते हुए चन्द्रबिंब को बताकर कहा, "अरे ! मेरे स्वामी जल के अन्दर समाधि में हैं, इसलिए तू शांतिपूर्वक प्रणाम करके चला जा, नहीं तो समाधिभंग होने पर उनका गुस्सा फिर से उभर आयगा।" हाथी मन में डरकर उसे प्रणाम करके पीछे लौट जाने के लिए चल पड़ा। खरगोश भी उस दिन से अपने परिवार के सहित सुखपूर्वक उस जगह रहने लगे। इसलिए मैं कहता हूं कि

वड़ों का नाम लेने से बड़ी सिद्धि मिलती है। चन्द्रमा का नाम लेने से खरगोश सुखपूर्वक रहते हैं।"

"छोटे, न्यायाधीश के पास जाकर न्याय कराने के लिए तत्पर खरगोश और कपिंजल पूर्व समय में नष्ट हो गए।"

उन पक्षियों ने कहा, "यह कैसे ?" कौआ कहने लगा —

गौरय्या और खरगोश की कहानी

प्राचीन काल में मैं किसी वृक्ष पर रहता था। उसके नीचे पेड़ के खोखले में कपिंजल नामक एक गौरा रहता था। सूरज डूबने के समय चोर वापस लौटने पर हम दोनों का समय सुभाषित-गोष्ठी तथा देवर्षि-महर्षि

और राजर्षियों के चरित्रों का कीर्तन करते हुए तथा घूमने-फिरने में आई हुई अनेक आश्चर्यजनक वातें कहते हुए सुख से वीतता था।

एक वार वह कपिंजल दूसरे गौरों के साथ चारा चरने के लिए दूसरे पके धान के देश में गया। वाद में रात हो जाने पर भी जव वह नहीं लौटा तो घवराकर और उसके वियोग से दुखी होकर मैं सोचने लगा, "अरे आज कपिंजल क्यों नहीं आया? किसी ने क्या उसे जाल में फंसा लिया? या किसी ने उसे मार डाला? अगर वह कुशलपूर्वक होता तो मेरे विना कभी नहीं रुकता।" मुझे इस तरह सोचते-विचारते वहुत दिन वीत गए।

फिर एक वार सूरज डूवने के समय शीघ्रग नाम का खरगोश आ कर उस खोखल में घुस गया। मैंने भी कपिंजल की आशा छोड़ देने के कारण उसे रोका नहीं। वाद में एक दिन धान खाने से पुष्ट शरीर वाला कपिंजल अपने घोंसले की याद कर वापस लौट आया। अथवा ठीक ही कहा है कि,

"प्राणियों को गरीवी में भी अपने देश में, नगर में और घर में जितना सुख मिलता है, उतना स्वर्ग में भी नहीं।"

खोखले में रहते हुए खरगोश को देखकर उसने तिरस्कार से कहा, "अरे! यह तो मेरा घर है। तू जल्दी वाहर निकल।" खरगोश ने उत्तर दिया, "यह घर तेरा नहीं है, मेरा है। किसलिए तू कड़ी वातें कहता है। कहा है कि

"वावड़ी, कुआं, तालाव, देवालय, तथा वृक्षों को एक वार छोड़ देने पर पुनः उसके ऊपर अपनी मिलकियत कायम नहीं की जा सकती।

उसी प्रकार

"अगर किसी के सामने कोई दस वरस तक खेत इत्यादि को भोगता रहे तो उसका यह भोगना ही उसके मिलकियत का प्रमाण है, गवाह और कागज-पत्र प्रमाण नहीं हैं।

"यह न्याय मनुष्यों के लिए मुनियों ने कहा है। पशु और पक्षियों के वारे में जब तक उनका जहां अड्डा हो तव तक ही उनकी वहां

मिलकियत है ।

इसलिए यह मेरा घर है, तेरा नहीं।" कपिंजल ने कहा, "अरे! अगर तू धर्म-शास्त्र के बहुत प्रमाण मानता है तो मेरे साथ चल, जिससे हम दोनों किसी धर्म-शास्त्रज्ञ से पूछ देखें। वह इस खोखले को जिसे दे, उसे लेना चाहिए।" उन दोनों के इस प्रकार समझौता करने पर मैंने भी सोचा,"इस बारे में क्या होगा ? मुझे भी यह न्याय देखना चाहिए।" मैं भी कुतूहल से उनके पीछे हो लिया।

इसी बीच में तीक्ष्णदंश नाम का एक जंगली बिल्ला उनकी लड़ाई सुनकर रास्ते में आया। नदी के किनारे पहुंचकर तथा हाथ में कुशा लेकर, एक आंख मूंदकर और एक हाथ ऊंचा करके पंजे के बल खड़े होकर सूरज की तरफ देखते हुए वह इस तरह धर्मोपदेश करने लगा—

"अरे यह संसार असार है, जीवन क्षण-भंगुर है, प्रियजनों का समागम सपने की तरह है और कुटुम्बियों का समूह जादू की तरह है। इसलिए धर्म के बिना दूसरा कोई आसरा नहीं।

कहा है कि

"शरीर अनित्य है, धन हमेशा टिकने वाला नहीं है, मृत्यु नित्य पास में है, इसलिए धर्म का संचय करना चाहिए।

"जिनके दिन बिना धर्म के आते हैं और जाते हैं वे लोहार की भाथी की तरह सांस लेते हुए भी नहीं जीते।

"कुत्ते की पूंछ जिस तरह गुप्त भाग को नहीं ढंक सकती, तथा डांस और मच्छरों का काटना भी नहीं रोक सकती, उसी तरह धर्म के बिना पांडित्य भी पाप दूर करने में असमर्थ होकर निरर्थक हो जाता है।

और भी

"जो धर्म के मूल तत्वों को नहीं मानते वे अन्नों में पुलाक की तरह, परिंदों में मधुमक्खी की तरह, और प्राणियों में मच्छर जैसे हैं।

"फूल और फल ये वृक्ष के श्रेय हैं, घी दही का श्रेय कहा गया है,

तिल्ली का श्रेय तेल है और धर्म मनुष्यत्व का श्रेय है।

"धर्महीन पुरुषों की रचना पशुओं की तरह केवल मल-मूत्र करने, खाने और दूसरों की सेवा करने के लिए हुई है।

"नीति-शास्त्र के पंडित सब कामों को स्थिरतापूर्वक करने वाले को प्रशंसनीय मानते हैं, पर धर्मकार्यों में अनेक विघ्न आने से उन्हें जल्दी से करने को कहा गया है।

"हे मनुष्यो ! मैं तुमसे धर्म संक्षेप में कहता हूं, विस्तार से कहने में क्या लाभ ? परोपकार से पुण्य होता है, दूसरों को दुःख देने से पाप होता है।

"तुम धर्म का सार जानो-सुनो और जानकर हृदय में धारण करो। जो वस्तु अपने लिए अनुकूल नहीं है उसका प्रयोग दूसरे के लिए भी नहीं करना चाहिए।"

उसका धर्मोपदेश सुनकर खरगोश बोला, "हे कपिंजल ! यह धार्मिक तपस्वी नदी के किनारे बैठा है। इससे जाकर हमें पूछना चाहिए।" कपिंजल ने कहा, "ठीक है, पर यह स्वभाव से ही हमारा दुश्मन है, इसलिए दूर रहकर हमें पूछना चाहिए। कदाचित उसका व्रत न टूट जाय।"

बाद में दूर खड़े रहकर वे दोनों बोले, "हे धर्मोपदेशक तपस्वी ! हम दोनों के बीच झगड़ा हुआ है, इसलिए धर्म-शास्त्र के अनुसार उसका फैसला करो। जो झूठ कहने वाला हो उसे तुम खा जाओ।" उसने कहा, "भलेमानसो, ऐसा न कहो ! नरक के रास्ते जैसे हिंसक काम से मैं विरक्त हो गया हूं। अहिंसा ही धर्म का मार्ग है। कहा है कि

"सत्पुरुषों ने अहिंसा को धर्म का मूल कहा है, इसलिए जूं, खटमल, डांस आदि की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए।

"जो निर्दय मनुष्य हिंसक प्राणियों को भी मारता है, वह घोर नरक में पड़ता है, फिर वह शुभ प्राणियों की हिंसा करे तो उसके बारे में कहना ही क्या ?

जो याज्ञिक यज्ञ में भी पशुओं की बलि देते हैं, वे मूर्ख हैं। वे श्रुतियों

का गूढ़ अर्थ नहीं जानते। श्रुति में कहा है कि अज से यज्ञ करना चाहिए। यहां अज का अर्थ बकरा नहीं है, पर सात वर्ष का पुराना चावल है। कहा भी है—

"वृक्षों को काटकर, पशुओं को मारकर तथा लहू का कीचड़ करके जो आदमी स्वर्ग में जा सकता हो तो फिर नरक में कौन जाता है?

इसलिए मैं तुम्हें खाऊंगा नहीं, पर तुम्हारी हार-जीत का फैसला मैं करूंगा। लेकिन बूढ़ा होने के कारण मैं दूर से ठीक-ठीक नहीं सुन सकता। यह जानकर मेरे पास आकर तुम अपनी फरियाद कहो, जिससे विवाद का कारण जानकर मैं उसका ऐसा फैसला दूं कि जिससे परलोक में मेरी दुर्गति न हो। कहा है कि

"जो पुरुष अभिमान से, लोभ से, क्रोध से अथवा भय से झूठा न्याय करता है, वह नरक में जाता है।

"घोड़े के बारे में झूठी गवाही देने वाले को एक प्राणी की हिंसा का पाप लगता है, गाय के बारे में झूठी गवाही देने वाले को दस प्राणियों के हिंसा के बराबर पाप लगता है, कन्या के बारे में झूठी गवाही देने वाले को सौ प्राणियों के मारने का पाप लगता है, और पुरुष के बारे में झूठी गवाही देने वाले को हजार प्राणियों की हिंसा का पाप लगता है।

"सभा के बीच में बैठकर जो साफ बातें नहीं कहता, उसे दूर से ही छोड़ देना चाहिए। अथवा उसे जल्दी से अपना फैसला देना चाहिए।

इसलिए तुम मेरा विश्वास करके अपनी लड़ाई के बारे में मेरे कानों में कहो।" अधिक क्या कहूं, उस नीच बिल्ले ने उन दोनों बेवकूफों का इतना विश्वास पा लिया कि वे दोनों उसकी गोद में बैठ गए। बाद में उसने एक को अपने पंजे से दूसरे को दांत रूपी आरे से पकड़ लिया और उनके मरने पर वह उन्हें खा गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि न्यायाधीश के पास जाकर न्याय करने के लिए तत्पर खरगोश और कपिंजल पूर्व समय में नष्ट हो गए।

इसलिए रात में अंधे बने हुए तुम सब इस दिन के अंधे उल्लू को राजा बनाकर खरगोश और कपिंजल के रास्ते जाओगे, यह समझकर जो अच्छा लगे वह करो।"

बाद में उसकी बातें सुनकर 'इसने ठीक कहा,' यह कहकर, 'हम राजा चुनने के लिए फिर एक बार मिलेंगे,' ऐसा कहते हुए पक्षिगण अपनी इच्छा के अनुसार चले गए। केवल राजतिलक के लिए कृकालिकाके साथ भद्रासन के ऊपर बैठा हुआ दिन में अंधा उल्लू बाकी बच गया। उसने कहा, "यहां कौन है?' अभी तक हमारा अभिषेक क्यों नहीं किया गया? इस पर कृकालिका ने कहा, "भद्र! तुम्हारे अभिषेक में कौए ने विघ्न डाला है। वे पक्षी अपनी मनमानी दिशाओं में चले गए हैं। केवल वह कौआ किसी कारण से यहां बैठा है। अब तुम उठ खड़े हो जिससे मैं तुम्हें तुम्हारे स्थान पर पहुंचा दूं। यह सुनकर वह विषादपूर्वक बोला, "अरे दुष्ट! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है, जिससे तूने मेरे राज्याभिषेक में विघ्न डाला? आज से मेरा-तेरा पुश्त-दर-पुश्त का वैर हो गया। कहा है कि

> "तीर से बिंधा हुआ और तलवार से कटा हुआ घाव फिर से भर सकता है, पर हल्की बात बोलने से वचन रूपी घाव कभी नहीं भरता।"

यह कहकर वह कृकालिका के साथ अपने घर को चला गया। पीछे डर के मारे व्याकुल होकर कौआ सोचने लगा, "अहो! अकारण ही मैंने यह वैर साधा है। क्यों मैंने इसके लिए ऐसा कहा? कहा है कि,

> "देश-काल के विरुद्ध, भविष्य के लिए दुखकारी, अप्रिय तथा अपने को छोटा दिखाने वाला ऐसा वचन जो बिना कारण बोलता है, वह वचन नहीं, जहर की तरह हो जाता है।

> "बुद्धिमान पुरुष बलवान होने पर भी स्वयं दूसरे को वैरी नहीं बनाता। 'हमारे पास वैद्य है', यह सोचकर कौन ऐसा चतुर

पुरुष है जो बिना कारण जहर खा ले ?

"सभा में पंडित को कभी दूसरे की निन्दा नहीं करनी चाहिए। सच होते हुए भी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए जो तकलीफ का कारण हो।

"जो अपने सुहृद और मित्रों के साथ बारबार विचार-विनिमय करता है और पुनः अपनी बुद्धि से उसे काम में लाता है वह बुद्धिमान है और वही लक्ष्मी और यश का भागी होता है।"

यह कहकर कौआ भी अपनी जगह को चला गया। इसलिए हे वत्स ! हम लोगों के साथ उल्लुओं की पुश्त-दरपुश्त की दुश्मनी हो गई है।"

मेघवर्ण ने कहा, "तात ! ऐसी हालत में हमें क्या करना चाहिए?" उसने कहा, "ऐसी हालत में छः गुणों से अलग एक मोटा उपाय है, उसे स्वीकार करके मैं स्वयं ही अरिमर्दन को जीतने के लिए जाऊंगा और दुश्मन को ठगकर उसे मारूंगा। कहा भी है—

"धूर्तों ने बकरे के बारे में जिस तरह ब्राह्मण को ठगा था उसी तरह अनेक प्रकार की बुद्धिवाले और सुविज्ञ मनुष्य अपने से अधिक बलवान शत्रु को भी ठग सकते हैं।"

मेघवर्ण ने कहा, "यह कैसे ?" उसने जवाब दिया—

तीन धूर्तों और ब्राह्मण की कथा

"किसी नगर में एक अग्निहोत्र मित्रशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। एक समय माघ महीने में जब धीमी हवा चल रही थी और आकाश में घिरे हुए बादल धीमे-धीमे पानी बरसा रहे थे, उसी समय वह यज्ञ-पशु की भिक्षा मांगने किसी दूसरे गांव में गया और यजमान से भिक्षा मांगी—"हे यजमान ! आगामी अमावस्या को मैं यज्ञ कर रहा हूं, इस लिए मुझे एक पशु दो।" इस पर उसने उसे शास्त्रोक्त एक मोटा जानवर दिया। बकरे को इधर-उधर भागता देखकर उसने उसे पीठ पर लाद लिया

और जल्दी से अपने नगर की ओर चल पड़ा। इस तरह से जब वह जा रहा था तो तीन भूखे धूर्त उसके सामने आये। उन्होंने ऐसा मोटा-ताजा पशु कंधे पर लदा देखकर आपस में चुपके से कहा, "अरे! इस पशु को खाकर हम आज इस ठंडक को व्यर्थ बना सकते हैं, इसलिए इस ब्राह्मण को ठगकर और पशु लेकर ठंडक से हम अपनी रक्षा करेंगे।"

उनमें से एक अपना भेष बदलकर और दूसरे रास्ते से सामने आकर उस अग्निहोत्री से कहने लगा, "अरे मूर्ख अग्निहोत्री! किसलिए तू जन-विरुद्ध और हँसी कराने वाला काम कर रहा है? इस अपवित्र कुत्ते को कंधे पर बैठाकर क्यों लिये जा रहा है? कहा है कि

"कुत्ता, मुर्गा और चांडाल तथा विशेष कर गदहा और ऊंट, इन सबको समान स्पर्शवाला गिना गया है। इनके छूने का एक समान ही दोष है। इन्हें नहीं छूना चाहिए।"

इस पर उसने गुस्से से कहा, "अरे! क्या तू अंधा है जो बकरे को कुत्ता बताता है?" धूर्त ने जवाब दिया, "भगवन्! आप क्रोध न कीजिए। अपनी राह पकड़िए। जैसा चाहे वैसा कीजिए।"

वह जंगल में थोड़ी दूर आगे बढ़ा था कि दूसरे धूर्त ने सामने आकर कहा, "अरे ब्राह्मण! बड़े दुःख की बात है। यह मरा हुआ बछड़ा अगर तुझे प्यारा भी है तो तुझे उसे कंधे पर चढ़ाना ठीक नहीं। कहा भी है—

"जो बुद्धिहीन मरे हुए आदमी अथवा पशु-पक्षियों का स्पर्श करता है, उसकी शुद्धि पंचगव्य अथवा चान्द्रायण व्रत से ही होती है।"

इस पर उसने क्रोधित होकर कहा, "अरे क्या तू अंधा है, जो बकरे को मरा बछड़ा कहता है?" उसने जवाब दिया, "भगवन्! क्रोध मत करिए, मैंने अज्ञान से कहा है। जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही करिए।" बाद में जब वह उस जंगल में कुछ आगे बढ़ा तो भेष बदले तीसरा धूर्त सामने आकर उससे कहने लगा, "अरे, यह ठीक नहीं है जो तू गधे को कंधे पर चढ़ाकर लिये जा रहा है। फौरन उसे छोड़ दे। कहा भी है—

"जो आदमी जाने या अनजाने में गधे को छूता है उसे पाप के

परिहार के लिए सतैल स्नान की विधि है ।

जब तक कोई दूसरा न देखे, फौरन इसे अलग कर दे।" वह भी बकरे को गधा जानकर डर से उसे जमीन पर पटककर अपने घर की तरफ भागा । उन तीनों धूर्तों ने मिलकर उस बकरे को ले लिया और मारकर उसे इच्छापूर्वक खाने लगे ।

इसलिए मैं कहता हूँ कि धूर्तों ने जिस तरह बकरे के बारे में ब्राह्मण को ठगा था, उसी प्रकार अनेक प्रकार की बुद्धिवाले और सुविज्ञ मनुष्य अपने से अधिक बलवान शत्रुओं को भी ठग सकते हैं। यह ठीक कहा है कि

"नये नौकरों के विनय से, अतिथियों के मीठे वचन से, स्त्रियों के झूठे रोने से और धूर्तों के कपट वाक्यों से इस संसार में कौन नहीं ठगा गया है ?

फिर भी बहुत से कमजोरों के साथ भी वैर ठानना ठीक नहीं । कहा भी है कि

"बहुतों का विरोध नहीं करना चाहिए, समूह दुर्जय होता है। फुफकारते हुए सर्प को भी चींटियां खा जाती हैं ।"

मेघवर्ण ने कहा, "यह कैसे ?" स्थिरजीवि कहने लगा—

काले साँप और चींटी की कथा

"किसी बांबी में अतिदर्प नामक एक बड़ा काला सांप रहता था। एक समय वह बिल के बड़े रास्ते को छोड़कर छोटे रास्ते से निकलने लगा। उसके ऐसे निकलते हुए बड़े शरीर होने के कारण और अभाग्यवश छेद के छोटे होने के कारण उसके शरीर में घाव हो गया। घाव और लहू के गंध से पीछा करती हुई चींटियां उसके तमाम शरीर में लग गई और उसे व्याकुल कर दिया। कुछ को उसने मारा और कुछ को फटकारा, पर बहुत-सी चींटियां होने से उसका घाव बढ़ गया और इस तरह उसका तमाम शरीर चुटैल हो गया और वह मर गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि वहुतों का विरोध नहीं करना चाहिए, समूह दुर्जय होता है फुफकारते हुए सर्पराज को भी चींटियां खा जाती हैं।

इसलिए इस विषय में मुझे जो कुछ कहना है, उसे सुनकर वैसा ही करो।" मेघवर्ण ने कहा, "आप आज्ञा दीजिए। आपकी आज्ञा के सिवाय मैं कुछ न करूंगा।" स्थिरजीवि ने कहा, "वत्स! साम आदि उपायों को छोड़कर जो मैंने पांचवां उपाय ठीक किया है उसे सुनकर मुझे दुश्मन का आदमी जानकर कठोर वचनों से मेरा तिरस्कार कर। शत्रु-पक्ष के जासूसों के विश्वास के लिए कहीं से लहू लाकर मेरे शरीर में पोत दे, फिर मुझे वृक्ष के नीचे फेंककर ऋष्यमूक पर्वत की तरफ चला जा। अच्छी तरह वनाई हुई तरकीव से शत्रुओं में विश्वास पैदा करके उन्हें अपनी ओर राज़ू करके जव तक मैं उनके किले के वीच के भाग को जानकर दिन में अंधे वने उल्लूओं का नाश करूं तव तक तू परिवार के साथ वहीं रहना। मैंने अपना काम ठीक-ठीक जान लिया है। इसके सिवाय काम ठीक उतरने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। वाहर निकलने के मार्ग के विना दुर्ग तो केवल नाश का कारण वन जाता है। कहा भी है कि

"वाहर निकलने के रास्ते के सहित किले को ही नीति-शास्त्र जानने वाले दुर्ग कहते हैं। विना ऐसे रास्ते का दुर्ग तो दुर्ग के रूप में कैदखाना ही है।

मेरे ऊपर तुझे दया करने की कोई जरूरत नहीं है। कहा भी है—

"प्राणों की तरह प्रिय तथा लालन-पालन किये हुए सेवकों को भी लड़ाई आने पर सूखे ईंधन की तरह मानना चाहिए।

"कवल एक दिन के लिए शत्रु के साथ होने वाली लड़ाई के लिए सदा सेवकों की अपने प्राण की तरह रक्षा करनी चाहिए, और अपने शरीर की तरह उनका पालन-पोषण करना चाहिए।

इसलिए इस वारे में तू मुझे मत रोक।" यह कहकर स्थिरजीवि उसके साथ वनावटी कलह करने लगा। इस पर उसके दूसरे सेवक उसकी

वदतमीजी की वातें सुनकर उसे मारने को तैयार हो गए। इस पर मेघवर्ण ने कहा, "अरे तुम सव भाग जाओ, मैं स्वयं ही दुश्मन का साथ देने वाले इस दुरात्मा को दंड दूंगा।" यह कहकर वह स्थिरजीवि के ऊपर चढ़ बैठा और चोंच की हल्की चोटों से उसे लोहू-लुहान करके अपने परिवार के सहित अपने इच्छित स्थान को चला गया। उसी समय शत्रु के भेदिये का काम करती हुई कृकालिका ने उस मंत्री के ऊपर आ पड़े दुःख तथा मेघवर्ण के चले जाने का समाचार उल्लुओं के राजा से कहा। "तुम्हारा दुश्मन डरकर अपने साथियों के साथ कहीं भाग गया है।" यह सुनकर सूर्यास्त के बाद उल्लुओं का राजा भी अपने मंत्रियों और साथियों के साथ कौओं को मारने के लिए निकल पड़ा और वोला, "अरे! जल्दी करो, जल्दी करो डरकर भागता हुआ दुश्मन वड़े ही पुण्य से मिलता है। कहा है कि

"शत्रु अगर भागता हो तो उसका एक भेद हाथ में आता है और दूसरा भेद अगर वह कोई दूसरे स्थान में ठहरता हो। भागने की घवराहट के कारण वह राज-सेवकों के वश में होता है।"

इस तरह वातचीत करते हुए वे सव वरगद के नीचे चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए। पर जव कोई कौआ नहीं दिखाई पड़ा तव पेड़ की डाल की फुनगी पर वैठकर हँसी-खुशी तथा वंदीजनों से प्रशंसित उल्लूक-राज ने कहा, "अरे! ये कौए किस रास्ते से भाग गए, उनके उस रास्ते की तलाश करो। वे जव तक किले में पनाह नहीं ले लेते, तभी तक अगर मैं उनके पीछे गया तो उन्हें मार सकूंगा। कहा है कि

"विजयी द्वारा घेरे में भी दुश्मन मारा नहीं जा सकता, अगर वह सरो-सामान से लैस किले-बंदी करके वैठा हो तो कहना ही क्या है?"

इस प्रस्ताव पर चिरंजीवि ने सोचा, "जव तक मेरे शत्रु मेरा हाल जानकर मेरे पीछे नहीं आते तव तक मुझे भी कुछ न करना चाहिए। कहा भी है कि

"काम शुरू ही नहीं करना, यह वुद्धि का पहला लक्षण है, और

आरम्भ करके काम को खतम करना, यह वुद्धि का दूसरा लक्षण है।

इसलिए काम शुरू न करना ही शुरू करके छोड़ देने से वेहतर है। मैं यह शव्द सुनाकर अपने को प्रकट कर दूंगा।" ऐसा सोचकर उसने धीमी-धीमी आवाज की जिसे सुनकर उल्लुओं का पूरा झुंड उसे मारने के लिए चल पड़ा। उसने कहा, "अरे ! मैं स्थिरजीवि मेघवर्ण का मंत्री हूं। मेघवर्ण ने मुझे इस हालत को पहुंचा दिया है,ऐसा तुम अपने मालिक से कहो। उससे मुझे वहुत कुछ कहना है।" उन सवके कहने पर उलूकराज अचंभे में पड़कर उसी समय उसके पास पहुंचकर वोले, "अरे ! तेरी ऐसी हालत कैसे हुई ? " स्थिरजीवि ने कहा, "देव ! मेरी ऐसी हालत का सवव सुनिए। कल वह दुरात्मा मेघवर्ण आप से मारे गए वहुत से कौओं को देखकर शोक और गुस्से से आप पर धावा करने के लिए चल पड़ा। इस पर मैंने कहा, "स्वामी ! उनके ऊपर तुम्हें चढ़ाई नहीं करनी चाहिए। वे मजवूत हैं और हम सव कमजोर। कहा भी है—

"ऐश्वर्य चाहने वाले निर्वल को मन सें भी वलवान का मुकावला नहीं करना चाहिए। इस संसार में वेतसवृत्ति वाला (झुकने वाला) नहीं मारा जाता, पर शलभ-वृत्ति वाला (अपनी कमजोरी जाने विना जोरदार के साथ युद्ध करने वाला) अवश्य मारा जाता है।

इसलिए उसे भेंट देकर सुलह करना ही ठीक है। कहा भी है—

"जोरावर दुश्मन को देखकर सव कुछ देकर भी वुद्धिमान अपनी जान वचाते हैं, जान वचने पर धन तो फिर से मिल जाता है।

यह सुनकर वदमाशों से गुस्सा दिलाए जाने पर और मुझे आपका पक्षपाती होने का शक करते हुए उसने मुझे इस हालत को पहुंचा दिया है। इसलिए मैं आपकी शरण आया हूं। वहुत कहने से क्या फायदा ? जव मैं चलने लायक हो जाऊंगा तो मैं आपको उसकी जगह ले जाकर सव कौओं को मरवा डालूंगा।"

अरिमर्दन ने यह सुनकर पुश्तैनी मंत्रियों के साथ सलाह की।

उसके पांच मंत्री यथा रक्ताक्ष, क्रूराक्ष, दीप्ताक्ष, वक्रनाश और प्राकारकर्ण थे। शुरू में उसने रक्ताक्ष से पूछा, "भद्र! यह शत्रु का मंत्री हमारे हाथ आ गया है अब क्या करना चाहिए?" रक्ताक्ष ने कहा, "इसमें सोचने की क्या बात है? बिना सोचे इसे मार देना चाहिए। क्योंकि

"छोटे दुश्मन को भी उसके जोरावर होने के पहले मार डालना चाहिए। बाद में पौरुष और बल मिलने पर वह दुर्जय हो जाता है।

क्योंकि आई लक्ष्मी छोड़ने वाले को शाप देती है, ऐसी कहावत है। कहा भी है—

"मौका ढूंढ़ने वाले आदमी के पास मौका एक बार आता है। मौके का फायदा उठाने वाला अगर उस समय काम न करे तो फिर वैसा मौका नहीं मिलता।

ऐसा सुना गया है—

"जलती चिता और मेरे टूटे फन को देख; पहले टूटी और बाद में जोड़ी प्रीति स्नेह से नहीं बढ़ती।"

अरिमर्दन ने कहा, "यह कैसे?" रक्ताक्ष ने कहा—

ब्राह्मण और सांप की कथा

"किसी नगर में हरिदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके खेती करने पर भी उससे कोई नतीजा नहीं निकलता था और इसी तरह उसका समय बीतता था। एक दिन उस ब्राह्मण ने धूप से व्याकुल होकर गरमी की वेला बीतने तक अपने खेत के बीच एक पेड़ के नीचे सोये हुए पास ही में बांबी पर फन फैलाये एक भयंकर सांप को देखकर सोचा, "जरूर ही यह क्षेत्र-देवता है, जिनकी मैंने कभी पूजा नहीं की। इसी से मेरी खेती खराब हो जाती है। मैं फौरन अब इसकी पूजा करूंगा।" ऐसा सोचकर वह कहीं से दूध भीख मांग लाया और उसे कटोरे में रखकर बांबी के पास रखते हुए कहा, "हे क्षेत्रपाल! मुझे अबतक नहीं मालूम था कि आप यहां रहते हैं इससे मैंने आपकी पूजा नहीं की। आप मुझे क्षमा करें।" यह कहकर और

दूव का भोग लगाकर वह अपने घर की ओर चल पड़ा। जब सवेरे लौटकर देखा तो कटोरे में एक मोहर (दीनार) दिखाई पड़ी।

इस तरह वह हर दिन अकेला आकर सांप को दूध देता था और एक मोहर लेता था। किसी दिन बांवी पर दूव ले जाने के काम में अपने लड़के को लगाकर ब्राह्मण गांव के बाहर चला गया। उसका पुत्र भी वहां दूव ले जाकर फिर घर वापस लौट आया। दूसरे दिन वहां जाकर तथा वहां एक दीनार देखकर और उसे लेकर उसने सोचा, "निश्चय ही यह बांवी सोने के मुहरों से भरी पड़ी है। इसलिए मैं सर्प को मारकर एक बार ही सब मोहरें ले लूंगा। इस तरह निश्चय करके दूसरे दिन दूव देते हुए ब्राह्मण के लड़के ने सांप के सिर पर लाठी मारी। भाग्यवश सर्प किसी तरह वच गया, पर गुस्से से विषैले दांतों से उसे काट लिया, जिससे वह फौरन मर गया। रिश्तेदारों ने खेत के पास ही लकड़ियां इकट्ठी करके उसे जला दिया।

दूसरे दिन उसका पिता वापस आया और रिश्तेदारों से अपने लड़के के मरने का कारण सुनकर सर्प का समर्थन किया। कहा भी है,

"जो अपने शरण में आये हुए प्राणियों पर कृपा नहीं करता,
उसकी सफलताएं पद्म-वन के हंसों की तरह नष्ट हो जाती हैं?

आदमियों ने पूछा, "यह कैसे?" ब्राह्मण कहने लगा —

सोने के हंस और सोने की चिड़िया की कथा

"किसी नगर में चित्ररथ नाम का एक राजा रहता था। उसके राज्य में सिपाहियों से रक्षित पद्मसर नाम का एक तालाव था। उसमें वहुत से सोने के हंस रहते थे, जो छः महीने में एक वार अपने पर गिराते थे। उस तालाव में एक वार सोने का एक वड़ा पक्षी आया। हंसों ने उससे कहा, "तुझे हम सव के वीच में नहीं रहना होगा, क्योंकि हम सवों ने छः महीने के अन्त में अपने पर देकर इस तालाव को ले लिया है।" वहुत कहने से क्या? इस तरह आपस में लड़ाई हो गई। पक्षी ने राजा की शरण में जाकर कहा, वे सव पक्षी ऐसा कहते हैं, "राजा हमारा क्या कर लेगा, हम किसी को यहां

बसने नहीं देंगे।" तब मैंने कहा, "तुम सब यह ठीक नहीं कहते, मैं राजा से जाकर सब कुछ कह दूंगा। बाद में तो राजा का अख्तियार है।" इस पर राजा ने अपने नौकरों को हुक्म दिया, "अरे! तुम सब हंसों को मारकर यहां लाओ।" राजा का हुक्म होते ही वे चल पड़े। हाथ में डंडे लिये हुए राजा के आदमियों को देखकर एक बुड्ढे पक्षी ने कहा, "अरे भाइयो! यह बुरा हुआ। हम सबों को एक साथ यहां से उड़ जाना चाहिए।" सबों ने ऐसा ही किया।

इसलिए मैं कहता हूं कि जो अपनी शरण में आये प्राणियों पर कृपा नहीं करता, उसकी सफलताएं पद्मवन के हंसों की तरह नष्ट हो जाती हैं।"'

यह कहकर फिर ब्राह्मण दूसरे दिन दूध लेकर और वहां जाकर ऊंची आवाज से सर्प की विनती करने लगा। इस पर बांबी के दरवाजे के भीतर से सर्प ने ब्राह्मण को जवाब दिया, "लालच से तुम अपने लड़के का शोक भूलकर यहां आये हो। इसके बाद हमारे-तुम्हारे बीच की प्रीति ठीक नहीं। तुम्हारे लड़के ने जवानी के घमंड में मुझे मारा और मैंने उसे काट लिया। उस डंडे की मार को मैं कैसे भूल सकता हूं और तुम अपने लड़के की मृत्यु के शोक को कैसे भूल सकते हो?" यह कहकर उसे एक बेशकीमती हीरा देकर 'इसके बाद तुम फिर यहां कभी मत आना' यह कहकर सर्प बिल में घुस गया। ब्राह्मण भी हीरा लेकर अपने लड़के की अक्ल की निन्दा करते हुए अपने घर लौट आया।

इसलिए मैं कहता हूं कि जलती चिता और मेरे टूटे फन को देख; पहले टूटी और बाद में जोड़ी प्रीति स्नेह से नहीं बढ़ती।

इसके मारे जाने पर बिना कोशिश से राज्य अकंटक हो जायगा।" उसकी यह बात सुनकर उलूक-राज ने क्रूराक्ष से पूछा, "भद्र! तू क्या मानता है?" उसने उत्तर दिया, "देव! जो कुछ इसने कहा, वह निर्दयता है। क्योंकि शरण में आये हुए को कभी नहीं मारना चाहिए। ऐसा कहा है—

"सुना जाता है कि कबूतर ने शत्रु के शरण आने पर उसकी पूजा

की और उसे अपना मांस खाने का निमंत्रण दिया।"

अरिमर्दन ने पूछा, "यह कैसे ?" क्रूराक्ष कहने लगा—

कबूतर और बहेलिये की कथा

"किसी भयंकर वन में नीच प्राणियों के काल के समान एक पापी चिड़ियों का शिकारी घूमता था।

"न उसके कोई मित्र थे न रिश्तेदार न वंधु। उसके निर्दय काम से सवने उसे छोड़ दिया था।

अथवा

"जो नृशंस दुरात्मा जीवों का वध करने वाले होते हैं वे सर्पों की तरह लोगों को तंग करते हैं।

"वह पिंजरा, जाल और लाठी लेकर जीवों को मारने के लिए प्रतिदिन वन में जाता था।

"एक दिन वन में घूमते हुए कोई कवूतरी उसके हाथ लगी और उसे उसने पिंजरे में वंद कर दिया।

"वाद में सव दिशाएं वादलों से अंधेरी हो गई, वरसाती हवा चलने लगी तो ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे प्रलय आ गया हो।

"डरा हुआ वह शिकारी कांपता हुआ तथा वचाव के लिए जगह खोजता हुआ एक पेड़ के पास जा पहुंचा।

"एक क्षण के लिए उसने तारों भरे आकाश की रोशनी में पेड़ के पास पहुंच कर कहा, "जो कोई भी यहां रहता है—

"उसकी मैं शरण में आया हूं, उसको मेरी रक्षा करनी चाहिए। जाड़े से मैं छिदा जा रहा हूं और भूख से वेहोश होता जा रहा हूं।"

"उस पेड़ की डाल पर वहुत दिनों से घोंसला वना कर एक कवूतर अपनी पत्नी से अलग होकर दुखित होकर रो रहा था।

"भयंकर हवा के साथ पानी वरस रहा है और मेरी प्यारी अभी तक वापस नहीं लौटी। उसके विना मेरा घर अभी तक

सूना दिखलाई देता है।

"पतिव्रता, पति को प्यार करने वाली, सदा पति का हित चाहने वाली ऐसी जिसकी पत्नी है वह आदमी इस संसार में धन्य है।

"घर, घर नहीं है, घरनी को ही घर कहते हैं। बिना घरनी के घर वन के समान है।

"अपने पति की यह दुख-भरी वाणी सुनकर और उससे सन्तुष्ट होकर पिंजड़े में बंद कबूतरी ने कहा,

"उसे स्त्री ही नहीं मानना चाहिये जिससे उसका पति संतुष्ट न हो। स्त्रियों के पति के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न होते हैं।

"वन की आग से जली हुई पुष्पित लता के समान वह स्त्री जल जाती है जिसका पति उससे खुश नहीं रहता।

"पिता, भाई और पुत्र किसी हद तक ही देते हैं। बेहद देने वाले पति की कौन स्त्री पूजा नहीं करती?"

उसने फिर कहा—

"हे कांत! तुम्हारे हित की जो बात मैं कहती हूं उसे सुनो। तुम अपने प्राणों से भी शरणागत की हमेशा रक्षा करो।

"यह बहेलिया ठंड और भूख से दुखी होकर तुम्हारे घर का सहारा लेकर सो रहा है, इसकी तुम खातिर करो।

सुना गया है—

"संध्या समय आये हुए अतिथि की जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजा नहीं करता वह उसे अपना पाप देकर उसका पुण्य ले लेता है।

"तुम उसके साथ इसलिए द्वेष मत करो कि उसने तुम्हारी प्यारी को फंसा लिया है, क्योंकि मैं अपने किये हुए प्राचीन कर्मों के बंधनों से ही जकड़ी गई हूं।

"गरीबी, बीमारी, दुख, बंधन और आफतें ये सब प्राणियों के अपने किए हुए अपराध के पेड़ के फल हैं।

"इसलिए तुम मेरे बंधन से पैदा हुए द्वेष को छोड़कर धर्म में मन लगाकर यथाविधि इसकी सेवा करो।

"उसकी धर्मयुक्तियों से मिली हुअी बात सुनकर बिना डर के वह कबूतर शिकारी के पास जाकर बोला,

"भद्र, तेरा स्वागत है। मुझे कह कि क्या करना चाहिए। अपने घर में रहते हुए तुझे संताप नहीं करना चाहिए।

"उस पक्षी की बातें सुनकर शिकारी ने कहा, "हे कबूतर, इस भयंकर शीत से तू मेरी रक्षा कर।"

"उस कबूतर ने अंगारा लाकर सूखे पत्तों में डाल दिया और उसे जल्दी से जलाया।

"इस तरह अच्छी तरह से आग जलाकर उसने शरणागत से कहा, "अब निर्भय होकर तू अपने हाथ पैर सेंक। मेरे पास कोइ ऐसा वैभव नहीं है जिससे मैं तेरी भूख दूर कर सकूं।

"कोई सहस्त्रों का पालन करते हैं तो कोई सैकड़ों का, और कोई दसियों का। पर मैं पापी स्वयं अपना भी पालन करने में असमर्थ हूं।

"एक अतिथि को भी अन्न देने में जो समर्थ नहीं है उसके कष्ट-दायी घर में रहने से क्या फायदा।

"इसलिए इस कष्टकर शरीर का मैं उपयोग करूंगा जिससे फिर यह न कहने को हो कि अतिथि के आने पर यह काम नहीं आया।

'उसने अपनी निन्दा की पर शिकारी की नहीं। और फिर कहा, "क्षणभर ठहर, मैं अपने मांस से तेरा संतोष करूंगा"।

"यह कह कर प्रसन्नचित्त से उस आग की परिक्रमा करके अपने घर की तरह वह उसमें घुस गया।

"वह शिकारी उस कबूतर को आग में गिरा देख कर अत्यन्त दया से पीड़ित हो कर बोला—

"जो आदमी पाप करता है उसे अपनी देह नहीं प्यारी होती।

अपना किया हुआ पाप स्वयं भोगना पड़ता है।

"मैं पापबुद्धि हमेशा पाप में लगा रहा हूं। इसमें शक नहीं कि मैं भयंकर नरक में गिरूंगा।

"तूने मुझ जैसे नृशंस के सामने यह आदर्श उपस्थित किया। मांगने पर एक महात्मा कबूतर ने अपना मांस तक दे दिया।

"आज दिन से मैं अपनी यह देह, सब सुखों को छोड़कर गरमी में थोड़े पानी की तरह सुखा दूंगा।

"ठंड, हवा, गरमी सहते हुए इस दुबले पतले और मलीन शरीर से अनेक उपवास करते हुए मैं उत्तम धर्म का पालन करूंगा।"

"इसके बाद, डंडा, फांस, जाल और पिंजड़े को तोड़कर उस शिकारी ने उस गरीब कबूतरी को छोड़ दिया।

"शिकारी द्वारा छोड़ दिये जाने पर उसने अपने पति को आग में गिरा हुआ देखा। इस पर वह शोक-संतप्त चित्त से दुखी होकर रोने लगी।

"हे नाथ! तुम्हारे न जीने पर अब मुझे क्या करना है। पति के विहीन दीन स्त्रियों के जीने से क्या लाभ?

"मन का दर्प, अहंकार तथा रिश्तेदारों और घर में इज्जत, सेवकों और दासों में आज्ञा, यह विधवा होते ही नष्ट हो जाते हैं।"

"इस तरह अत्यन्त दुखी होकर और बहुत रोते कलपते वह पतिव्रता जलती हुई आग में घुस गई।

"इसके पश्चात् दिव्य कपड़े और गहने पहने हुए उस कबूतरी ने विमान पर बैठे हुए अपने पति को देखा।

"दिव्य शरीर पाकर उसने भी उससे यह बात कही, "हे शुभे! मेरे पीछे चलकर तूने ठीक ही किया।

"मनुष्य के शरीर में जो साढ़े तीन करोड़ रोएं हैं उतने ही समय तक जो स्त्री पति के पीछे चलती है वह स्वर्ग में रहती है। तुझ सी वीर की कपोत-देह हमेशा सुख पाती थी और

पूर्वकृत पुण्य से ही हमें कबूतर का चोला मिला था।

प्रसन्न होकर वह शिकारी उस गहरे वन में घुस गया और उस दिन से प्राणियों का मारना छोड़कर वैरागी हो गया।

एक दिन वन की आग देखकर निर्विकार भाव से वह उसमें घुस गया और इस तरह अपने सब पापों को जलाकर उसे स्वर्ग के सुख की प्राप्ति हुई।

इसलिए मैं कहता हूँ कि "सुना जाता है कि कबूतर ने शत्रु के शरण आनेपर उसकी पूजा की और उसे अपना मांस खाने का आमंत्रण दिया।"

उसकी बात सुनकर अरिमर्दन ने दीप्ताक्ष से पूछा "ऐसी हालत में तुम्हारा क्या कहना है?" उसने कहा, "इसे नहीं मारना चाहिए। जो मुझे रोज़ तंग करती थी वह मुझे आज भेंटती है। हे प्रियकारक! तू बहुत अच्छा है जो कुछ मेरा है उसे चुरा ले।

चोर ने भी इसका जवाब दिया, "जो कुछ चोरी करना है उसे मैं नहीं देखता। अगर कोई चोरी करने लायक चीज़ होगी तो मैं फिर आऊंगा, यदि तेरी स्त्री तुझे आलिंगन न करे।"

अरिमर्दन ने पूछा, "वह कौन चोर है और वह कौन जो आलिंगन नहीं करती? यह सब बात मैं विस्तार से सुनना चाहता हूं।" दीप्ताक्ष ने कहा—

बूढ़े बनिये की स्त्री और चोर की कहानी

"किसी नगर में कामातुर नामक एक बूढ़ा बनिया रहता था। अपनी स्त्री के मरने के बाद काम से व्याकुल होकर किसी गरीब बनिये की लड़की से काफी रकम देकर उसने शादी कर ली। अत्यंत दुखी होकर वह उस बूढ़े बनिये को देख भी नहीं सकी। ठीक ही कहा है—

"बालों के सिरपर सफेद हो जाने पर, वह मनुष्यों के घोर अनादर का पात्र बन जाता है। बूढ़े की दिखलाई देती हड्डियों को देखकर

अछूतों के कुएं की तरह स्त्रियां उसे दूर से ही छोड़कर चली जाती हैं।

और भी—

"सिकुड़ा हुआ शरीर, कांपती हुई चाल, गिरे हुए दांत, घूमती हुई निगाह, नष्ट हो गया रूप, मुंह से बहती लार, रिश्तेदार बात नहीं करते, पत्नी सेवा नहीं करती। बूढ़े आदमी को धिक्कार है जिसकी बात लड़का भी नहीं मानता।

एक समय जब एक ही खाट पर वह मुंह घुमा कर लेटी थी उतने में ही घर में एक चोर घुसा। वह चोर को देख कर भय से अपने बूढ़े पति से चिपट गई। वह भी विस्मय से रोमांचित होकर सोचने लगा, 'अरे, इसने मुझे कैसे भेंट लिया!' अच्छी तरह देखने के बाद घर के एक कोने में चोर को देखकर उसने सोचा, 'अवश्य इसी के भय से उसने मेरा आलिंगन किया है।' यह जान कर उसने चोर से कहा—

"इसे नहीं मारना चाहिये। जो मुझे रोज तंग करती थी, वह आज मुझे भेंटती है। हे प्रियकारक! तू बहुत अच्छा है, जो कुछ मेरा है, उसे चुरा ले।"

उसे सुनकर चोर ने कहा—

"जो कुछ चोरी करना है उसे मैं नहीं देखता। अगर कोई चोरी करने लायक चीज होगी तो मैं फिर आऊंगा, यदि तेरी स्त्री तुझे आलिंगन न करे।"

इसलिए उपकारी चोर का भी भला चाहते हैं, फिर शरणागत की बात ही क्या? उनसे सताये जाकर यह हमें मजबूत बनायेगा और उनके दोष दिखायेगा। अनेक वजहों से यह मारने काबिल नहीं है।

यह सुनकर अरिमर्दन ने वक्रनाश मंत्री से पूछा, "भद्र! ऐसी हालत में क्या करना चाहिए?" उसने कहा, "देव! यह अवध्य है, क्योंकि

"आपस में झगड़ते दुश्मन हितू हो जाते हैं, जैसे चोर और राक्षस (की लड़ाई) से बछड़े के जोड़े की जान बच गई।"

अरिमर्दन ने कहा, "वह कैसे ?" वक्रनाश कहने लगा—

ब्राह्मण, चोर और पिशाच की कथा

किसी नगर में द्रोण नाम का एक गरीब ब्राह्मण दानदक्षिणा से, अच्छे वस्त्र, इत्र, गंध, माला, गहने, पान आदि छोड़कर, बाल, दाढ़ी और नाखून बढ़ाकर गरमी, ठंडक और बरसात से अपना शरीर सुखाता हुआ रहता था। किसी यजमान ने दया करके उसे बछड़ों का एक जोड़ा दे दिया। उस ब्राह्मण ने बचपन से ही मांगे हुए घी, तेल और जौ से उनको पालकर खूब मोटा ताजा बना दिया। उन्हें देखकर एकाएक एक चोर ने सोचा "मैं इस बछड़े के जोड़े को चुरा लूंगा।" ऐसा निश्चय करके बांधने की रस्सी लेकर जब वह चला तो आधे रास्ते में अलग-अलग तीखे दांत ऊंची नाक, लाल-लाल आंख, बदन पर उमड़ी हुई स्नायु, सूखे गात्र, आग की तरह लाल दाढ़ी और बाल वाले किसी व्यक्ति को देखा। उसे देखकर बहुत डरकर चोर ने कहा, "तू कौन है ?" उसने जवाब दिया, "सत्यवचन नामक मैं ब्रह्मराक्षस हूं। तू भी अपना परिचय कह।" उसने कहा, "मैं क्रूरकर्मा चोर हूं। गरीब ब्राह्मण के बैल के जोड़े चुराने के लिए जा रहा हूं।" विश्वास हो जाने पर ब्रह्मराक्षस ने कहा, "भद्र ? मैं बहुत भूखा हूं, इसलिए मैं उस ब्राह्मण को खाऊंगा। बड़ी अच्छी बात है कि हम दोनों का एक ही काम है।" दोनों वहां समय की बाट जोहते खड़े रहे। सोये हुए ब्राह्मण और उसको खाने के लिए तैयार राक्षस को देखकर चोर ने कहा, "भद्र ! यह न्याय नहीं है। मेरे बैल के जोड़े चुराने के बाद तुम इस ब्राह्मण को खाना।" उसने कहा, "बैलों के हुंकारने से अगर ब्राह्मण जाग गया तो मेरी तरद्दुद पड़ जायगी।" चोर ने भी कहा, "तेरे खाने की तैयारी में अगर जरा भी देर हुई तो मैं बैल के जोड़े नहीं चुरा सकूंगा। इसलिए पहले बैलों की जोड़ी चुरा लेने दे, बादमें तू ब्राह्मण को खाना"। आपस के बहस

मुवाहसे और भेदभाव की आवाज से ब्राह्मण जाग पड़ा। इस पर चोर ने कहा, "ब्राह्मण ! तुझे यह राक्षस खाना चाहता है।" राक्षस ने भी कहा, "ब्राह्मण ! यह चोर तेरे बैलों की जोड़ी चुराना चाहता है।" यह सुनकर ब्राह्मण ने सावधान होकर इष्ट देवता के मंत्रों से राक्षस से अपनी और डंडे से बैल की जोड़ी बचा ली।

इसलिए मैं कहता हूं कि "आपस में झगड़ते दुश्मन हितू हो जाते हैं। जैसे चोर और राक्षस (की लड़ाई) से बछड़े के जोड़े की जान बच गयी।"

उसकी बात सुनकर अरिमर्दन ने फिर प्राकारकर्णसे पूछा "तुम्हारी इसके बारे में क्या सलाह है ?" उसने कहा, 'देव, यह अवध्य है। इसको बचा लेने से शायद वह मित्रतापूर्वक सुख से अपना समय वितावेगा। कहा भी है—

"जो प्राणी आपस का भेद नहीं छिपाते वे पेट में बांबी बनाकर रहनेवाले सर्प की तरह मर जाते हैं।" अरिमर्दन ने कहा, "यह कैसे ?" प्राकारकर्ण ने कहा—

पेट को बांबी बनाकर रहनेवाले सांप की कथा

"किसी नगर में देवशक्ति नामक राजा रहता था। पेट में बांबी की तरह रहनेवाले सांप से उसके पुत्र का शरीर छीजता जाता था। अनेक उपचारों से अच्छे वैद्यों द्वारा शास्त्रोक्त दवाएं देने पर भी उसे आराम नहीं होता था। घबराकर वह राजकुमार बाहर निकल गया तथा किसी मंदिर में भीख मांगकर अपना समय बिताने लगा। उस नगर में बलि नाम का राजा था। उसको दो जवान लड़कियां थीं। वे दोनों हर रोज सूर्योदय के समय अपने पिता के पैरों के पास जाकर प्रणाम करती थीं। एक ने कहा "महाराज विजयी हों ! जिनकी कृपा से सब सुख मिलते हैं।" दूसरी ने कहा "महाराज अपना किया भोगें।" इसे सुनकर गुस्से में राजा ने कहा, "मंत्री, इस कड़ुवा बोलनेवाली राजकुमारी को किसी

विदेशी को दे दो जिससे यह अपने किये का फल भोगे।" "ऐसा ही हो"—यह कहकर थोड़े से साथियों के साथ उस राजकुमारी का विवाह मंत्रियों ने मंदिर में ठहरे हुए राजकुमार के साथ कर दिया। वह भी खुशी-खुशी देवता की तरह अपने पति को अंगीकार करके उसके साथ दूसरे देश में चली गई। किसी दूर देश के नगर के तालाव के किनारे राजकुमार को घर की रखवाली पर तैनात करके वह स्वयं नौकरों के साथ नोन, तेल, घी और चावल खरीदने चली गई। जव तक खरीद-फरोख्त करके वह लौटे तव तक राजा सांप की वांवी पर अपना सिर रख के सो गया। उसके मुंह से फन निकालकर सांप हवा खाने लगा। उस वांवी से दूसरा सांप भी निकलकर वैसा ही कर रहा था। एक दूसरे को देखकर दोनों की आँखें लाल हो गई और वांवी वाले सांप ने कहा, "ओ वदमाश, इस सर्वांग सुन्दर राजकुमार को तू क्यों तकलीफ देता है?।" मुंह में वैठे सांप ने कहा "ओ तू वदमाश भी वांवी के वीच सोने से भरे दो घड़ों का क्या कर रहा है?" फिर वांवीवाले सांप ने कहा, "ओ वदमाश, इसकी दवा कौन नहीं जानता? जीरा और सरसों मिलाकर कांजी पीने से तेरा नाश होता है।" पेटवाले सांप ने इसका जवाव दिया—"तेरी भी दवा का किसे पता नहीं है? गरम तेल अथवा वहुत गरम पानी से तेरा नाश होता है।" उस राज-कन्या ने पेड़ की आड़ से दोनों की भेद भरी वातें सुनकर वैसा ही किया। दवा देकर अपने पति को चंगा कर के और धन पाकर अपने देश की ओर चल पड़ी। पिता-माता और रिश्तेदारों से पूजित तथा विहित उपभोग पाकर वह सुख से रहने लगी। इसलिए मैं कहता हूं कि—"जो प्राणी आपस के भेद नहीं छिपाते वे पेट में वांवी वनाकर रहने वाले सर्प की तरह मर जाते हैं।"

यह सुनकर स्वयं अरिमर्दन ने उस वात का समर्थन किया। उसके ऐसा कहने पर भीतरी हँसी हँसकर रक्ताक्ष ने फिर कहा—"दुःख है कि हमारे अन्याय से स्वामी मारे जा रहे हैं। कहा भी है—

"जहां अपूज्यों की पूजा होती है, और पूजनीयों का अपमान,

वहां भुखमरी, मृत्यु और भय ये तीन बढ़ते हैं।"

और भी

"सामने पाप करने पर भी मूर्ख साम से शांत हो जाता है ; रथकार ने अपनी पत्नी को उसके जार के साथ अपने सिर चढ़ाया।"

मंत्रियों ने कहा, "वह कैसे ?" रक्ताक्ष ने कहा —

रथकार की स्त्री और उसके जार की कथा

"किसी नगर में वीरधर नामक रथकार रहता था। उसकी स्त्री का नाम कामदमनी था। उस छिनाल की लोग निंदा करते थे। रथकार ने भी उसकी परीक्षा लेने के लिए सोचा, "मुझे इसकी परीक्षा करनी चाहिए।

कहा भी है —

"यदि आग ठंडी हो जाय, चन्द्रमा गरम हो जाय, और दुर्जन से हित हो जाय, तभी स्त्रियों का सतीत्व हो सकता है।

मैं लोगों में उड़ती खबर से जानता हूं कि वह छिनाल है।

कहा भी है—

'जो वेदों और शास्त्रों में न देखा गया है और न सुना गया है वह सब जो कुछ भी इस ब्रह्मांड के बीच है उसे साधारण जन जानते हैं।"

यह सोचकर उसने अपनी स्त्री से कहा, "प्रिये! सवेरे मैं इस गांव से बाहर जाऊंगा। वहां मुझे कुछ दिन लगेंगे, इसलिए तुम मेरे लिए मार्ग में खाने लायक कुछ सामान बना दो।" उसकी बात सुनकर उसने खुशी और उत्सुकता से सब काम छोड़कर घी और शक्कर से पकवान तैयार कर दिया। अथवा ठीक ही कहा है—

"बादल से घिरे बरसात के दिन में, गहरे अंधेरे में, पति के विदेश जाने पर, भयंकर वन इत्यादि में छिनाल स्त्री को बड़ा सुख मिलता है।"

वह तड़के जाग कर अपने घर से निकल गया। उसे गया जानकर उसने भी हंसते हुए तथा सिंगार-पिटार करते हुए किसी तरह दिन बिताया।

वाद में वह पूर्व-परिचित विट के घर जाकर उससे कहने लगी—"मेरा वह दुरात्मा पति गांव के वाहर चला गया है। घर वालों के सो जाने पर तुम मेरे यहां आ जाना।" रथकार भी जंगल में दिन विताकर संध्या के समय दूसरे दरवाजे से अपने घर में घुसकर खाट के नीचे छिपकर पड़ रहा। इस वीच में देवदत्त भी खाट पर आकर वैठ गया। उसे देखकर गुस्से में भरकर रथकार ने सोचा, "इसे उठाकर मारूं अथवा सोते हुए सीधे-सीधे इन दोनों को मारूं। पहले उसका व्यवहार देखूं और इसके साथ उसकी वातचीत सुनूं।" इस वीच में वह घर का दरवाजा लगाकर खाट पर चढ़ी। उस पर चढ़ते हुए उसका पैर रथकार के देह से छू गया। इस पर उसने सोचा, "अवश्य ही इस दुरात्मा रथकार ने मेरी परीक्षा के लिए यह चाल चली है। अव मैं कैसे भी उसे तिरिया-चरित्र दिखलाऊंगी।" उसके इस तरह सोचते रहने पर देवदत्त उसको छूने के लिए उत्सुक हो गया। उसने हाथ जोड़कर उससे कहा, "महानुभाव! तुमको मेरा शरीर नहीं छूना चाहिए, क्योंकि मैं पतिव्रता और महासती हूं, नहीं तो शाप देकर मैं तुम्हें जला दूंगी।" उसने उससे कहा, "अगर यही वात है तो तूने मुझे वुलाया क्यों?" उसने कहा, "मन लगाकर सुन। मैं आज सवेरे देव-दर्शन के लिए देवी के मंदिर गई। वहां अकस्मात् देववाणी हुई, "पुत्री! मैं क्या करूं? तू मेरी भक्त है। महीने के वाद अभाग्यवश तू विधवा हो जायगी।" इस पर मैंने कहा, "देवी! आप जिस तरह आने वाली मुसीवत जानती हैं उसी तरह उससे वचने का उपाय भी। फिर क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे मेरा पति सौ वर्ष जीवे?" इस पर देवी ने कहा, "हे वत्से! है भी और नहीं भी। वह प्रतिकार तेरे वश में है।" यह सुनकर मैंने कहा, "देवी! वह मेरे जीवन से भी हो सकता है तो भी कहिए।" देवी ने कहा, "यदि आज दिन तू एक पलंग पर चढ़कर पर-पुरुष का आलिंगन करे तो तेरे पति की अपमृत्यु टल जायगी और वह सौ वरस तक जी सकेगा। तूने मेरी प्रार्थना पूरी की है, फिर जो करना चाहे वह कर। यह निश्चय है कि देवता की वात टल नहीं सकती।" भांपकर भीतर से हँसते हुए उस विट ने समयोचित काम किया। वह मूर्ख

रथकार भी उसकी बात सुनकर पुलकित शरीर से खाट के नीचे से बाहर निकलकर उससे बोला, "साधु पतिव्रते ! साधु ! हे कुलनन्दिनी ! बदमाशों की बात से शरम में आकर मैं तेरी परीक्षा के लिए गांव से बाहर जाने का बहाना करके छिपकर खाट के नीचे बैठा था। आ, मेरा आलिंगन कर। स्वामिभक्ति करने वाली स्त्रियों में तू मुख्य है। तूने दूसरे आदमी के साथ रहकर भी अपने पातिव्रत-धर्म का पालन किया। मेरी आयु बढ़ाने के लिए और अपमृत्यु टालने के लिए तूने यह सब किया।" उससे यह कहते हुए उसने प्रेम के साथ उसका आलिंगन किया और उसे अपने कंधे पर चढ़ाकर देवदत्त से कहा, "अरे! महानुभाव ! मेरे पुण्य से तुम यहां आये हो। तुम्हारी कृपा से मैंने सौ वर्ष की आयु पाई है। तुम भी मेरे कंधे पर चढ़ो।" इस तरह कहते हुए देवदत्त के न चाहने पर भी उसने भेंटकर जबर्दस्ती उसे अपने कंधे पर चढ़ा लिया। बाद में नाचते हुए उसने कहा—"हे ब्राह्मणों के धुरी, तूने भी मेरा उपकार किया है।" इत्यादि कहते हुए उसे कंधे से उतारकर अपने रिश्तेदारों के दरवाजे पर गया और वहां उन दोनों के गुणों का वर्णन किया।

इसलिए मैं कहता हूं, "सामने पाप करने पर भी मूर्ख साम से शांत हो जाता है। रथकार ने अपनी पत्नी को उसके जार के साथ अपने सिर चढ़ाया।"

इसलिए हम सब समूल नष्ट हो जाने वाले हैं। ठीक ही कहा है कि

"जो हित की बात छोड़कर उलटी बात मानते हैं वे चतुरों द्वारा मित्ररूप शत्रु माने जाते हैं।

और भी

"संत भी देशकाल विरोधी बेवकूफ सलाहकारों को पाकर उसी तरह धन खो देते हैं जैसे सूर्योदय पर अंधेरा गाढ़ा हो जाता है।"

उसकी बातों का अनादर करके वे सब स्थिरजीवी को उठाकर अपने दुर्ग में ले जाने लगे। इस तरह ले जाये जाकर स्थिरजीवी ने कहा, "देव! काम करने में असमर्थ मुझ-जैसे को रखने से क्या फायदा ? मैं जलती आग में

घुसना चाहता हूं। मुझे आग से जलने से आप रोकना चाहते हैं।" रक्ताक्ष उसके मन की बात जानकर बोला, "तू आग में क्यों गिरना चाहता है?" उसने कहा, " तुम सबके लिए मेघवर्ण ने मुझे इस मुसीबत में डाला, इसलिए मैं बदला लेने के लिए उल्लू होना चाहता हूं।" यह सुनकर राजनीति-कुशल रक्ताक्ष ने कहा, "भद्र, तू स्वभाव से कुटिल है और बनावटी बात करने में चतुर है। उल्लू पैदा होने पर तू स्वभाव से कौआ ही रहेगा। यह कहानी सुनी गई है—

"सूर्य, मेघ, हवा और पर्वत जैसे पतियों को छोड़कर चुहिया अपनी जाति से मिल गई। अपनी जाति छोड़ना बहुत मुश्किल है।"

मंत्रियों ने कहा, "यह कैसे?" रक्ताक्ष कहने लगा –

चूहे की लड़की के विवाह की कथा

"ऊबड़-खाबड़ चट्टानों से गिरते हुए पानी की आवाज सुनने से डरी हुई मछलियों की उलट से पैदा हुए सफेद फेन से चितकबरी बनी हुई तरंगों वाली गंगा के तट पर जप, नियम, तप, स्वाध्याय, उपवास, यज्ञक्रिया और अनुष्ठान करने वाले, पवित्र तथा परिमित जल पीने की इच्छा रखने वाले, कंद, मूल-फल और सिवार खाकर शरीर को दुबला करने वाले, छालों से बने हुए कोपीन-मात्र वस्त्र पहने हुए तपस्वियों से भरा हुआ एक आश्रम था। वहां याज्ञवल्क्य नाम के एक कुलपति रहते थे। गंगा नहाते समय जैसे ही वे आचमन कर रहे थे, उनके हाथ में बाज के मुख से गिरी हुई एक चुहिया आ गई। उसे देखकर बरगद के पत्ते पर उसे रखकर, स्पर्श-दोष के कारण पुनः स्नान करके और प्रायश्चित्त इत्यादि करके उन्होंने उस चुहिया को अपने तप के प्रभाव से कन्या बना दिया और अपने साथ आश्रम में ले आए तथा निस्संतान अपनी पत्नी से कहा, "भद्रे! तुम्हें यह लड़की हुई है, इसे लो और यत्नपूर्वक इसका पालन करो।" ऋषि पत्नी द्वारा पालित होकर वह बारह वर्ष की हुई। उसे विवाह योग्य जानकर पत्नी ने पति से कहा, "हे पति! क्या तुम्हें पता नहीं कि हमारी

कन्या के विवाह का समय बीता जा रहा है ?" उन्होंने जवाब दिया, "तुमने ठीक ही कहा—

"स्त्रियां पहले सोम, गंधर्व, अग्नि इत्यादि देवताओं द्वारा भोगी जाती हैं। इसके पश्चात् मनुष्य उनका भोग करता है, इसमें कोई दोष नहीं।

"सोम स्त्रियों को पवित्रता देते हैं, गंधर्व उन्हें मीठी बातें सिखलाते हैं, अग्नि उन्हें शुद्धता देते हैं; इन सबसे स्त्रियां पापहीन हो जाती हैं।

"रजोधर्म के पहले स्त्रियां गौरी कहलाती हैं, रजोधर्म के बाद रोहिणी। यौवन चिन्ह न होने पर वह कन्या कहलाती है और स्तनों के न होने पर नग्निका।

"यौवन के लक्षण उत्पन्न होने पर सोम कन्या को भोगते हैं, स्तनों के उत्पन्न होने पर गंधर्व और ऋतुमती होने पर अग्नि।"

"इसलिए ऋतुमती होने के पहले ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए। आठ वर्ष में कन्या का विवाह प्रशंसनीय है।

"यौवन के लक्षण होने पर पितरों के प्राक्-संचित पुण्य नष्ट हो जाते हैं, उसके पयोधर बाद के पुण्य हर लेते हैं। रति इष्टजनों का पुण्य हर लेती है और रज पितरों का पुण्य हर लेता है।

"कन्या के ऋतुमती होने पर कन्या को अपनी इच्छा से दान कर देना चाहिए। स्वायम्भुव मनु का कहना है कि नग्निका कन्या का विवाह कर देना चाहिए।

"पिता के घर जिस कन्या को रजोधर्म हो जाता है वह कन्या विवाह योग्य नहीं होती; उसे जघन्या और वृषली कहा है।

"विवाह के पहले रजस्वला होने पर पिता श्रेष्ठ, समान और जघन्य किसी को भी कन्या दे सकता है, इसमें दोष नहीं लगता।

मैं इसे इसी के योग्य वर को देना चाहता हूं दूसरे को नहीं। कहा भी है—

"जिसका समान कुल और समान वित्त हो उसी के साथ विवाह और मित्रता होनी चाहिए, असमानों के साथ नहीं।"

कहा भी है ——

"कुल, शील, पालने-पोसने की ताकत, विद्या, धन, शरीर, उम्र इन सात गुणों का विचार करके बुद्धिमान को कन्या का व्याह करना चाहिए। और बातें सोचने की नहीं हैं।

अगर उसे अच्छा लगे तो मैं भगवान् सूर्य को बुलाकर उन्हें उसे दे दूं।" पत्नी ने कहा, "इसमें क्या दोष है? ऐसा ही करिये।" मुनि ने सूर्य को बुलाया। वेद-मंत्रों के आमंत्रण-प्रभाव से सूर्य उसी समय आकर कहने लगे—"भगवन्! मुझे आपने क्यों बुलाया है?" उन्होंने कहा, "यह मेरी कन्या है अगर यह आपको वरे, तो आप इसके साथ विवाह कर लीजिए। यह कहकर उन्होंने अपनी कन्या से कहा, "पुत्री! क्या तीनों लोक को रोशनी देने वाले भगवान् सूर्य तुझे भाते हैं?" लड़की ने कहा, "ये बहुत जलाने वाले हैं। मैं इन्हें नहीं चाहती। इनसे भी अच्छे किसी को बुलाइये।" उसकी बात सुनकर मुनि ने सूर्य से कहा, "भगवन्! क्या आपसे भी कोई बड़ा है?" सूर्य ने कहा, "मुझसे बढ़कर बादल है जिससे ढका जाकर मैं दीख नहीं पड़ता।" बादल को बुलाकर मुनि ने कन्या से कहा, "पुत्री! मैं तुझे इन्हें देता हूं।" उसने कहा, "यह काला और जड़ है। इसलिए मुझे इससे बड़े किसी को दीजिए।" मुनि ने बादल से पूछा, "हे बादल! तुझसे भी बढकर कोई है?" बादल ने कहा, "मुझसे बढ़कर वायु है। वायु के थपेड़े खाकर मैं हजार टुकड़े हो जाता हूं।" यह सुनकर मुनि ने वायु को बुलाया और कहा "पुत्री! क्या यह वायु विवाह के लिए तुझे ठीक जँचता है?" उसने कहा, "तात! यह अत्यन्त चपल है, इससे भी बड़े किसी को बुलाइये।" मुनि ने कहा, "हे वायु! तुझसे भी बड़ा कोई है?" पवन ने कहा, "मुझसे बढ़कर पहाड़ है, जिससे बलवान होने पर भी मैं रुक जाता हूं।" पहाड़ को बुलाकर मुनि ने कहा, "पुत्री! मैं तुझे इसे देता हूं।" उसने कहा, "तात! यह कठोर और अचल है, इसलिए मुझे किसी दूसरे को दीजिए।" मुनि ने पहाड़ से

पूछा, "पर्वतराज! क्या तुमसे बढ़कर कोई है?" पहाड़ ने कहा, "मुझसे बढ़कर चूहे हैं जो अपनी ताकत से मुझे छेद डालते हैं।" इस पर मुनि ने चूहे को बुलाकर उसे दिखलाया और कहा, "पुत्री! मैं तुम्हें इसे दूंगा। क्या चूहों का राजा तुम्हें भाता है?" वह भी उसे देखकर और यह अपनी जाति का है यह मानकर हर्षित मन से बोली, "तात, मुझे चुहिया बनाकर इसे दे दीजिए जिससे मैं अपने जातिधर्म के अनुसार गृहस्थी चला सकूं।" मुनि ने उसे अपने तपोबल से चुहिया बनाकर उसे दे दिया।

इसलिए मैं कहता हूं कि, "सूर्य, मेघ, हवा और पर्वत जैसे पतियों को छोड़कर चुहिया अपनी जाति से मिल गई। अपनी जाति छोड़ना बहुत मुश्किल है।"

रक्ताक्ष की बातों का अनादर करते हुए वे अपने वंश के नाश के लिए उसे अपने किले में ले गए। ले जाने पर भीतर-भीतर हंसकर स्थिरजीवी ने सोचा—

"स्वामी का भला चाहने वाले जिसने मुझे मार डालने की सलाह
दी वही इन सबों में अकेला नीति-शास्त्र का पंडित है।
अगर ये सब उसकी बात मानते तो उनकी कुछ भी हानि नहीं होती।"

किले के दरवाजे पर पहुंचकर अरिमर्दन ने कहा, "अरे इस हितू स्थिर-जीवी को भरपूर जगह दो।" यह सुनकर उसने सोचा, "मुझे इनको मारने की तरकीब सोचनी है, जो इनके बीच में नहीं साधी जा सकती। मेरी चाल-ढाल देखकर वे भी सावधान हो जायंगे। इसलिए किले के दरवाजे पर रह-कर मैं अपनी चाल साधूंगा।" ऐसा निश्चय करके उसने उल्लुओं के राजा से कहा, "देव, आपने जो कहा वह ठीक है, पर मैं भी नीतिज्ञ और आपका हितू हूं। यद्यपि मैं अनुरक्त और शुद्ध हूं फिर भी किले के बीच मेरा रहना ठीक नहीं। इसलिए मैं किले के फाटक पर रहकर आपके कमल-जैसे चरणों की धूलि से अपना शरीर पवित्र करके आपकी सेवा करूंगा।" "ऐसा ही हो," यह मानकर प्रतिदिन उल्लुओं के राजा के सेवक यथेष्ट आहार लाकर उलूकराज के आदेश से बढ़िया-से-बढ़िया मांस स्थिरजीवी को देते थे।

कुछ ही दिनों में वह मोर की तरह मजबूत हो गया। रक्ताक्ष ने स्थिरजीवी को इस तरह पलते-पुसते देखकर अचंभे में आकर राजा और मंत्रियों से कहा, "मंत्रिजन और आप मूर्ख हैं ऐसा मैं मानता हूं।" कहा भी है—

"पहले तो मैं मूर्ख, दूसरे शिकारी, फिर राजा और मंत्री ; हम सब मूर्खमंडल के सदस्य हैं।"

उन्होंने पूछा, "यह कैसे ?" रक्ताक्ष कहने लगा—

सोने की बीट देने वाले पक्षी और शिकारी की कथा

"किसी पहाड़ी मुल्क में एक वड़ा पेड़ था। उस पर सिंधुक नाम का कोई पक्षी रहता था। उसकी वीट से सोना पैदा होता था। उसे पकड़ने के लिए एक समय कोई वहेलिया निकला। उसके आगे पक्षी ने वीट कर दिया। वीट निकलते ही उसे सोना वनते देखकर वहेलिये को वड़ा आश्चर्य हुआ। "अरे! वचपन से लेकर चिड़िया फँसाने के व्यवसाय में वहुत वरस वीत गए, पर मैंने कभी भी पक्षी की वीट में सोना नहीं देखा," यह सोचकर उसने उस पेड़ पर फंदा लगाया। विश्वासपूर्वक पहले की तरह वैठा हुआ वह मूर्ख पक्षी उसी समय फंदे में फँस गया। वहेलिया भी फंदे से निकालकर उसे पिंजड़े में रखकर घर लाया, और सोचा, 'मैं इस अजीव पक्षी का क्या करूंगा? अगर कोई उसकी तासीर जानकर राजा से कह देगा तो मेरी जान आफत में आ जायगी। इसलिए मैं स्वयं इस पक्षी के वारे में राजा से कहूंगा।' यह सोचकर उसने ऐसा ही किया। खिले कमल की तरह नेत्र और मुख वाले राजा ने भी उस पक्षी को देखकर वड़ा सुख पाया और कहा, "अरे रक्षा-पुरुषो! इस पक्षी की होशियारी से रखवाली करो तथा उसे जितना वह चाहे खाना-पीना दो।" मंत्रियों ने कहा, "कैसे इस झूठे वहेलिये की वात मानकर आपने इस पक्षी को लिया है ? क्या पक्षी की वीट में सोना होना संभव है? इसलिए पिंजडे से इस पक्षी को छोड़ दो।" मंत्री की वात मानकर राजा ने जैसे ही उस पक्षी को छोड़ा वैसे ही उसने ऊंचे फाटक के तोरण पर वैठकर सोने की वीट की और कहा, "पहले तो मैं मूर्ख, दूसरे शिकारी, फिर

राजा और मंत्री; हम सब मूर्ख मंडल के सदस्य हैं।"

दैव के प्रतिकूल होने से फिर भी वे सब रक्ताक्ष की बातें न मानकर खूब मांस और दूसरे खानों से स्थिरजीवी को पोसते रहे। इस पर रक्ताक्ष ने अपने दल वालों को बुलाकर एकांत में कहा, "अरे! अभी तक तो हमारे राजा और किले की कुशल है। मैंने पुश्तैनी मंत्री के नाते उसे समझाया भी। अब हम सब दूसरे पर्वत-दुर्ग की शरण लेंगे। कहा भी है —

"जो पहले ही अनागत काम करता है वह शोभा पाता है, जो ऐसा नहीं करता है उसे सोचना पड़ता है ; इस वन में रहते हुए बूढ़े होकर भी मैंने बिल की बात कभी नहीं सुनी ।"

उन्होंने पूछा, "यह कैसे ?" रक्ताक्ष ने कहा —

सिंह, सियार और गुफा की कथा

"किसी वन-प्रदेश में खरनखर नाम का एक सिंह रहता था। एक समय भूख से व्याकुल इधर-उधर भटकते हुए उसे कोई भी जानवर नहीं मिला। सूर्यास्त के बाद वह एक बड़ी गुफा के पास आ पहुँचा और उसमें घुसकर सोचने लगा, "जरूर ही इस गुफा में रात को कोई जानवर आयगा, इसलिए मैं चुपचाप बैठूं।" इतने में उस गुफा का मालिक दधिपुच्छ नामक सियार आ निकला। उसने देखा तो उसे पता लगा कि सिंह के पैरों के निशान गुफा के भीतर गए थे, बाहर नहीं निकले। इस पर उसने सोचा, "अरे, मेरी मौत आ गई। जरूर इस गुफा के भीतर सिंह है, मैं अब क्या करूं? इसका कैसे पता लगाऊं?" यह सोचकर दरवाजे पर खड़े होकर उसने फुफकारना शुरू किया, "अरे बिल! अरे बिल!" यह कहकर चुप रहने के बाद फिर उसने कहा, "अरे क्या तुझे याद नहीं है कि मैंने तेरे साथ संकेत किया था कि जब मैं बाहर से आऊं तो तुम्हें मुझे बुलाना होगा, और मुझे तुझे। इसलिए अगर तू मुझे नहीं बुलावेगी तो मैं दूसरी गुफा में चला जाऊंगा।" यह यह सुनकर सिंह ने सोचा, "अवश्य ही यह गुफा सदा आने वाले को बुलाती होगी, पर आज मेरे डर से कुछ बोलती नहीं।" अथवा

ठीक ही कहा है —

"भयभीत मन वालों के हाथ-पैर नहीं चलते, वात नहीं वोली जाती और शरीर अधिक काँपता है।

इसलिए मैं ही उसे वुलाऊं जिससे भीतर आने पर वह मेरा भोजन वने।" यह सोचकर सिंह ने सियार को वुलाया। सिंह की आवाज से गुफा गूंज गई और सैकड़ों प्रतिरव दूर के जानवरों को भी डराने लगे। भागते हुए सियार ने भी यह पढ़ा —

"जो पहले ही अनागत काम करता है, वह शोभा पाता है। जो ऐसा नहीं करता उसे सोचना पड़ता है। इस वन में रहते वूढ़े होकर भी मैंने विल की वात कभी नहीं सुनी।

यह मानकर तुम भी मेरे साथ चलो।" यह कहकर अपने परिजनों और अनुयायियों के साथ रक्ताक्ष दूर देश चला गया।

रक्ताक्ष के चले जाने पर प्रसन्न मन स्थिरजीवी ने सोचा, "रक्ताक्ष का जाना मेरे लिए कल्याणकर है, क्योंकि वह दूर तक देखने वाला था। ये सव वेवकूफ हैं। इन्हें अव मैं सुखपूर्वक मार सकूंगा। कहा भी है —

"जिस राजा के पुश्तैनी मंत्री दीर्घदर्शी नहीं हैं उस राजा का शीघ्र ही नाश होता है।

अथवा ठीक ही कहा है —

"जो मंत्री अच्छी नीति को छोड़कर लोभवश उलटी नीति से राजा की सेवा करते हैं उन्हें चतुर मंत्री के रूप में शत्रु मानना चाहिए।"

यह सोचकर अपने घर (कुलाय) वह प्रतिदिन गुहा जलाने के लिए एक-एक वनकाठ इकट्ठा करने लगा। वे मूर्ख उल्लू यह नहीं जानते थे कि लकड़ी का वह ढेर उनके जलाने के लिए वढ़ रहा था। अथवा ठीक ही कहा है —

"भाग्य का मारा आदमी दुश्मन को दोस्त वनाता है, मित्र से द्वेष करता है और उसका नाश करता है, शुभ को अशुभ मानता है और पाप को कल्याणकर।"

घोंसला वनाने के वहाने किले के फाटक पर लकड़ियों का ढेर इकट्ठा हो जाने पर सूरज उगने के साथ ही उल्लुओं के अंधे हो जाने पर स्थिरजीवी ने जल्दी से मेघवर्ण के पास जाकर कहा, "स्वामी ! मैंने दुश्मन की गुफा जलाने लायक वना दी है ; आप अपने परिवार को इकट्ठा करके एक-एक जलती वन की लकड़ी लेकर गुफा के फाटक पर उस घोंसले में डालिए जिससे सव शत्रु कुम्भीपाक नरक के समान दुःख से मरें।" यह सुनकर खुशी से मेघवर्ण ने कहा, "तात, अपना हाल कहिए। वहुत दिनों के वाद आप दिखलाई दिए।" उसने कहा, "वत्स! यह वातचीत का समय नहीं है; क्योंकि अगर दुश्मन का कोई भेदिया मेरे आने की खवर उसे दे देगा तो हमारा भेद जानकर वह अंधा कहीं दूसरी जगह चला जायगा,इसलिए जल्दी करो। कहा भी है—

"जल्दी से करने लायक काम में जो आदमी देर करता है उसके उस काम में गुस्से से देवता विघ्न डालते हैं।

और भी

"जो-जो फलदायक काम जल्दी से नहीं किए जाते, उनके उस काम का रस काल पी जाता है।

सव शत्रुओं को मारकर जव तुम वापस आओगे तव विस्तार के साथ विना घवराहट के मैं सव हाल कहूंगा।"

उसकी वात सुनकर परिजनों सहित मेघवर्ण ने एक-एक जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा अपनी चोंच में लेकर गुफा के दरवाजे पर आकर स्थिर-जीवी की कुलाय में डाला। इसके वाद दिन के अंधे उल्लू रक्ताक्ष की वात याद करते हुए फाटक के रुकने से वाहर निकलने में असमर्थ होकर गुहा में कुम्भीपाक नरक का दुःख भोगते हुए मर गए। इस तरह शत्रुओं को मिटा कर मेघवर्ण ने फिर उस वरगद रूपी किले पर जाकर वहां सिंहासन पर वैठकर सभा के वीच खुशी-खुशी स्थिरजीवी से पूछा, "तात! दुश्मनों के वीच रहकर तुमने इतना समय कैसे विताया ? इस वारे में हमारा कौतुक है, इसलिए कहो। क्योंकि

"पुण्य करने वालों का जलती आग में गिरना श्रेयस्कर है, पर एक क्षण भी दुश्मन का साथ ठीक नहीं।"

यह सुनकर स्थिरजीवी ने कहा, "भविष्य के फल के लोभ से सेवक कैष्टों की परवाह नहीं करता। कहा भी है —

"भयभीतों को जो-जो रास्ता हितकर होता है, उस-उस रास्ते पर भयंकर होते हुए भी अपनी निपुण वुद्धि के अनुसार चलना चाहिए। हाथी की सूंड़ की तरह, धनुष की डोरी के निशान से अंकित, वड़े कामों में चतुर कुशल हाथों में किरीटी ने स्त्रियों के समान कंगन वांधे।

"विद्वान् मनुष्य को सशक्त होने पर भी आगामी की राह देखते हुए वज्रपात के समान विपम, नीच और पापी जनों के वीच रहना चाहिए। वड़े वलवान भीम ने भी हाथ में कडछुल पकड़-कर, धुएँ से गंदे होकर मेहनत से क्या मत्स्यराज के घर में रसोइये की तरह रसोई नहीं वनाई थी?

"समय जानने वाले विद्वान् को जव-तव दुःख पड़ने पर हृदयनिहित अच्छा या वुरा काम करना चाहिए। गांडीव की गहरी टंकार से जिसके हाथ सख्त पड़ गए हैं ऐसा अर्जुन क्या नाचा-गाया नहीं?

"सिद्धि चाहने वाला पुरुप स्वयं सत्त्वयुक्त और उत्साही हो फिर भी उसे अपने को अंकुश में रखकर दैव की चाल के प्रति स्थिरता दिखलानी चाहिए। इन्द्र की सम्पत्ति के साथ वरावरी करने वाले वैभव से भाइयों का जिसने सत्कार किया था ऐसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर को क्या विराट राजा के महल में लम्वे अरसे तक दुःख नहीं उठाना पड़ा?

"रूप, अभिजन से युक्त कुन्ती के दो वलवान पुत्रों को विराट द्वारा गो-पालन की नौकरी वजानी पड़ी।

"जवानी के गुणों से युक्त अप्रतिम रूप वाले, अच्छे कुल में पैदा हुए और वहुत धन की इच्छा रखने वाले मनुष्य को भाग्यवश

होकर पड़ते दिन हैं। विताने युवतियां जिसका सैरंध्री कहकर तिरस्कार करती थीं, ऐसी द्रौपदी ने मत्स्यराज के घर में क्या चन्दन नहीं विसा था?"

मेघवर्ण ने कहा, "तात! दुश्मन के साथ रहने को मैं तलवार की धार जैसा मानता हूं।" उसने कहा, "देव! यह ठीक है पर उन-जैसे मूर्खों की मंडली मैंने और कहीं नहीं देखी। सिवाय महाबुद्धिमान और अनेक में चतुर रक्ताक्ष के वहां कोई बुद्धिमान नहीं था। उसने मेरे चित्त की बात ठीक-ठीक जान ली। जो दूसरे मूर्ख मंत्री थे वे केवल नाम-मात्र के थे। राजनीति का उन्हें ज्ञान नहीं था और उन्हें यह भी पता नहीं था कि

"दुश्मन का संग चाहने वाला दास दुष्ट होता है। गुप्त-दूत के धर्म से नित्य उद्वेग देने वाला और दूपित होता है।

"आसन, शयन, यान, भोजन, पान इत्यादि से शत्रु दृष्ट और अदृष्ट में भेद न मानने वाले दूसरे शत्रुओं का नाश करते हैं।

"इसलिए बुद्धिमान अर्थ, धर्म और काम के निवासस्थान अपने को सब प्रयत्नों से रक्षा करते हैं, क्योंकि प्रमाद से नाश होता है।"

अथवा ठीक ही कहा है—

"बदपरहेजी करने वाले को कौन रोग नहीं सताते? कुटिलता आदि मूर्ख मंत्रियों को कहां आती है? लक्ष्मी किसको घमंडी नहीं बनाती? मृत्यु किसे नहीं मारती? स्त्री की वासना किसे पीड़ा नहीं देती?

"लोभी का यश नष्ट हो जाता है, खल की मित्रता नष्ट हो जाती है। नष्ट क्रिया वाले का कुल, धन पैदा करने वाले का धन, व्यसनियों का विद्याबल, कंजूसों का सुख और अभिमानी मंत्री वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।

हे राजा, आपने यह जो कहा है कि मैंने दुश्मन के साथ असिधारा-व्रत का पालन किया है उसका मैंने स्वयं अनुभव किया है। कहा भी है—

"अपमान को आगे करके और मान को पीछे करके बुद्धिमान अपना

स्वार्थ साधता है। स्वार्थ छोड़ना मूर्खता है। बुद्धिमान समय पर दुश्मन को कन्धे पर चढ़ाता है। बड़े काले सांप ने बहुत से मेढकों को मार डाला।"

मेघवर्ण ने कहा, "यह कैसे ?" स्थिरजीवी कहने लगा—

मेढक और काले सांप की कथा

"वरुण पर्वत के पास एक देश में मन्दविष नाम का एक बूढ़ा सांप रहता था। एक बार उसने अपने मन में सोचा कि 'मुझे कैसे सुख से अपनी जीविका चलानी चाहिए।' इसके बाद उसने बहुत से मेढकों से भरे हुए तालाब में जाकर अपने को वीतराग जैसा दिखलाया। उसे ऐसे खड़े देख कर पानी से निकलकर एक मेढक ने पूछा, "मामा ! आज तुम पहले जैसे भोजन की खोज में क्यों नहीं घूमते ?" उसने कहा, "भद्र! मेरे ऐसे मन्द-भाग्य को भोजन की इच्छा कैसी ? आज रात में भोजन की खोज में घूमते हुए मैंने एक मेढक को देखा और उसे पकड़ने की तैयारी की। वह भी मुझे देखकर मृत्यु के डर से पढ़ने में लगे हुए ब्राह्मणों के बीच में घुस गया और मुझे पता नहीं लगा कि वह कहां गया। उसके लोभ से व्याकुल मैंने तालाब के किनारे जल में खड़े किसी ब्राह्मण के लड़के का अंगूठा डस लिया और वह तुरन्त मर गया। इस पर उसके पिता ने मुझे श्राप दिया, 'अरे दुरात्मा, तूने बिना कसूर के मेरे पुत्र को डसा है, इस दोष से तू मेढकों की सवारी बनेगा और उनकी कृपा से तेरी जीविका चलेगी।' इसलिए मैं तुम सबकी सवारी बनने के लिए आया हूं।"

उस मेढक ने दूसरे मेढकों से यह बात कह दी। उन सबों ने खुशी-खुशी जाकर जलपाद नामक मेढकों के राजा को यह खबर कर दी। मंत्रियों से घिरा हुआ वह भी इस बात को आश्चर्यमयी घटना मानकर जल्दी से तालाब से निकलकर मन्दविष सर्प के फन पर चढ़ गया। बाकी भी उमर के अनुसार उसकी पीठ पर सवार हो लिए। बहुत कहने से क्या, जिन्होंने उसके ऊपर जगह नहीं पाई वे उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। मन्दविष

ने भी उनके संतोष के लिए अनेक प्रकार की चालें दिखलाईं। उसके शरीर के स्पर्श से सुखी होकर जलपाद ने उससे कहा,

"मन्दविष ने जो सुख मुझे दिया वह सुख मुझे हाथी, घोड़े, रथ, आदमी अथवा नाव पर भी चढ़ने से नहीं मिला।"

एक दिन मन्दविष बहाना करके धीरे-धीरे चलने लगा। यह देखकर जलपाद ने कहा, "आज तुम पहले की तरह क्यों नहीं चलते?" मन्दविष ने कहा, "देव! आज बिना भोजन के मुझ में भार उठाने की शक्ति नहीं है।" इस पर उसने कहा, "भद्र! छोटे मेढकों को खा ले।" यह सुनकर खुशी मन से मन्दविष ने कहा, "मुझे ब्राह्मण का शाप है, फिर भी आपकी बात से मैं प्रसन्न हूं।" इस तरह रोज रोज मेढकों को खाता हुआ वह कुछ दिनों में मजबूत हो गया। खुशी होकर और भीतर-भीतर हँसते हुए उसने कहा—

"इन बहुत से मेढकों को मैंने धोखा देकर अपने वश में कर लिया है; मुझसे खाए जाने पर ये कितने दिनों तक चलेंगे।"

जलपाद भी मन्दविष की बनावटी बातों पर मोहित होकर कुछ समझ न सका। इसी बीच में एक दूसरा बड़ा काला सांप उस जगह आया और उसे मेढकों की सवारी बना हुआ देखकर आश्चर्य में पड़ गया और कहा, "मित्र, जो हमारे भोजन हैं उन्हें तू कैसे उठाए फिरता है? इसका मेल नहीं खाता।" मन्दविष ने कहा—

"मैं यह सब जानता हूं कि मेढकों से मेरा मेल नहीं। घृतान्ध ब्राह्मण की तरह मैं कुछ दिनों तक बाट जोह रहा हूं।"

उसने कहा, "यह कैसे?" मन्दविष कहने लगा—

घी से अंधे ब्राह्मण की कथा

"किसी नगर में यज्ञदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। दूसरे से प्रेम करती हुई उसकी छिनाल स्त्री नित्य विट को घी-शक्कर से घेवर बनाकर अपने पति की चोरी से देती थी। एक समय उसे ऐसा

करते हुए देखकर उसके पति ने कहा, "भद्रे यह क्या बात है ? तू रोज यह माल कहां ले जाती है, सच कह।" हाज़िरजवाबी से वात वनाकर उसने पति से कहा, "यहां से पास में देवी का मंदिर है। वहीं मैं उपवास करके नित्य नये-नये खाने के पदार्थ ले जाती हूं।" उसके देखते-देखते वह सब चीजें लेकर देवता के मंदिर की ओर चल दी। उसने यह मान लिया कि उस का पति उसे देवी का भोग मान लेगा– 'मेरी ब्राह्मणी देवी के भोग के लिए नित्य नये भोजन वनाकर ले जाती है।' देवी-मंदिर में जाकर स्नान के लिए नदी में उतरकर जव तक वह नदी में स्नान करने लगी तव तक दूसरे रास्ते से उसका पति वहां आकर देवी के पीछे छिपकर वैठ गया। स्नान करने के वाद ब्राह्मणी देवी के मंदिर में आकर स्नान, अनुलेपन, माला, धूप और वेलपत्रिका से देवी-पूजा करते हुए प्रणाम करके वोली, "देवी ! किस तरह मेरा पति अंधा हो जायगा ?' यह सुनकर अपनी आवाज वदलकर देवी के पीछे वैठे हुए ब्राह्मण ने कहा, 'यदि रोज-रोज तू अपने पति को घेवर खिलाए तो वह शीघ्र अंधा हो जायगा।' नकली वचन से ठगी जाकर वह दुष्टा भी उस ब्राह्मण को नित्य घेवर देने लगी।

एक दिन ब्राह्मण ने कहा, "भद्रे ! मैं ठीक-ठीक नहीं देख सकता।" यह सुनकर उसने सोचा कि देवी के प्रसाद से ऐसा हुआ है। इसके वाद उसका प्यारा विट उसके पास 'अंधा ब्राह्मण मेरा क्या करेगा,' यह मानकर प्रतिदिन आने लगा। एक दिन आदत के अनुसार उसे भीतर घुसता देखकर ब्राह्मण ने उसके वाल पकड़कर लाठी और पैर से उसे इतना मारा कि वह मर गया। उसने अपनी दुष्टा स्त्री की नाक काटकर उसे भी निकाल दिया।

इसलिए मैं कहता हूं कि मैं यह सव जानता हूं कि मेढकों से मेरा मेल नहीं। धृतांध ब्राह्मण की तरह मैं कुछ दिनों तक वाट जोह रहा हूं।"

इसके वाद मन्दविष ने हँसते हुए कहा, "मेढकों का अनेक तरह का स्वाद होता है।" यह सुनकर जलपाद घवरा गया। उसने क्या कहा, यह सुनकर वह फौरन उसके पास जाकर वोला, "भद्र ! तुमने यह, खिलाफ वात

कैसे कहीं ?" अपनी वात छिपाने के लिए उसने कहा, "कुछ भी नहीं।" उसकी नकली वात के फेर में पड़कर जलपाद उसका असली मतलब नहीं समझ सका। बहुत कहने से क्या लाभ ? उसने सबको खाकर मेढकों को निर्मूल कर दिया।

इसलिए में कहता हूँ कि बुद्धिमान समय पर दुश्मन को पीठ पर चढ़ाता है। बड़े काले सांप ने बहुत से मेढकों को मार डाला।

हे राजा, जिस तरह मन्दविष ने अपने बुद्धि-बल से मेढकों को मार डाला, उसी तरह मैंने भी सब वैरियों को मार डाला। यह ठीक ही कहा है कि

"वन में जलती हुई अग्नि जड़ों को बचा देती है पर मृदु और शीतल वायु उन्हें उखाड़ फेंकता है।"

मेघवर्ण ने कहा, "तात, यह ठीक है, जो बड़े होते हैं वे महान् आपत्ति आने पर भी आरंभ किये हुए काम को नहीं छोड़ते।

कहा भी है—

"नीतिरूपी गहने पहने हुए बड़ों की बड़ाई इसी में है कि वे दुःख आने पर भी आरंभ किये हुए काम को नहीं छोड़ते।

और भी

"नीच पुरुष विघ्न के भय से काम को नहीं शुरू करते। मध्यम पुरुष काम शुरू करने के बाद विघ्न आने से रुक जाते हैं। पर हजारों विघ्नों से अटकाये जाने पर भी उत्तम पुरुष शुरू किये हुए काम को नहीं छोड़ते।

शत्रु को निर्मूल करके तुमने मेरा राज्य निष्कंटक बना दिया है। अथवा नीति शास्त्र जानने वालों के लिए यह ठीक ही है।

कहा है कि

"बाकी कर्जा, अनबुझी आग, बची बीमारी और उसी तरह बचा हुआ शत्रु फिर-फिर से बढ़ते हैं। इसलिए इन चीजों को बाकी नहीं रहने देना चाहिए।"

उसने कहा, "देव ! आप भाग्यवान हैं, जिसके सब आरम्भ किये हुए काम पूरे होते हैं। केवल शूरता ही सब काम पूरा नहीं कर सकती, पर बुद्धिमानी से अगर काम किया जाय तो फतह होती है।

कहा भी है कि

"हथियारों से मारा गया दुश्मन वस्तुतः मारा गया नहीं कहा जा सकता। बुद्धि से यदि वह मारा गया हो तो वह ठीक-ठीक मारा गया कहलाता है। हथियार तो एक शरीर-मात्र को मारता है, पर बुद्धि उसके कुल, वैभव तथा यश को मारती है।

"काम शुरू करने पर बुद्धि बढ़ती है, स्मृति मजबूत होती है, समृद्धि को खींचने वाला यंत्र कभी टूटता नहीं, सब तर्क ठीक उतरते हैं। मनुष्य का प्रशंसनीय काम में प्रेम उत्पन्न होता है, तथा चित्त की उन्नति होती है।

कहा भी है—

"त्यागी, शूर और विद्वानों के साथ से लोगों में गुण बढ़ता है, गुण से धन, धन से लक्ष्मी, लक्ष्मी से आज्ञा और उससे राज्य होता है।"

मेघवर्ण ने कहा, "अवश्य ही नीति-शास्त्र का यह हाथों-हाथ फल है, जिसे पालन करते हुए आपने घुसकर परिवार सहित अरिमर्दन को समाप्त कर दिया।" स्थिरजीवी ने कहा—

"तीक्ष्ण उपायों से भी जो अर्थ मिल सकता है उसका भी शुरू में सहारा लेना पड़ता है। अत्यन्त ऊंचे तने वाले वट वृक्ष को विना पूजे हुए कोई नहीं काटता।

अथवा स्वामी ! यह कहने से क्या कि समय में काम न करने पर भी कोई बात दुःख और कठिनता से की जा सकती है। ठीक ही कहा है कि

"जिन्होंने निश्चय नहीं किया है, उद्योग करने में डरपोक, कदम-कदम पर दोष दिखलाने वाले, फल के लिए आपस में झगड़ने वाले, इस लोक में हँसी के पात्र होते हैं।

"छोटे से काम का भी बुद्धिमान अनादर नहीं करते, जैसे 'मैं इस

छोटे से काम को बिना किसी यत्न के कर सकता हूं। इसमें मेरी क्या प्रतिष्ठा होगी,' यह मानकर जो काम की उपेक्षा करते हैं, ऐसे अभिमानी पुरुष आपत्ति के आने पर मामूली काम में परिताप और दुःख पाते हैं।

आज से अपने मालिक के शत्रु को जीतकर मैं पहले की तरह सो सकूंगा। कहा भी है —

"घर को निस्सर्प करके अथवा सर्प को निकालकर सुख से सोया जा सकता है। सदा सांप देखने से मुश्किल से नींद आती है।

और भी

"व्यापारों को बढ़ाकर बड़प्पन पाये हुए संबंधियों द्वारा आशीर्वाद प्राप्त किये हुए, काम में नीति बरतने वाले, साहस से मनचाही जगह पर चढ़ने वाले, मान के लिए पराक्रम करने वाले, जब तक अपना काम नहीं कर लेते तब तक जोश से भरे हुए उनके दिलों में शांति कैसे आ सकती है?

आरम्भ किये हुए व्यापार के खतम हो जाने पर मेरा हृदय आराम पा रहा है। इसलिए आज से इस निष्कंटक राज्य को प्रजापालन में तत्पर होकर लड़के-पोते के क्रम से युक्त लक्ष्मी को नित्य भोगो। और भी —

"जो राजा रक्षादि गुणों से प्रजा का पालन नहीं करता, बकरे के स्तन की तरह उसका राज्य निरर्थक होता है।

"जिस राजा को गुण से प्रेम, दुर्गुणों में अनादर और अच्छे नौकरों की चाह होती है, वह चमर से हिलते हुए वस्त्रों वाली, तथा सफेद छतरी से सजी हुई राजलक्ष्मी को बहुत दिनों तक भोगता है।

'मुझे राज्य मिल गया है,' यह मानकर लक्ष्मी के मद से तुम्हें अपने को ठगना नहीं चाहिए। राजा की विभूतियां चलती-फिरती रहती हैं। बांस पर चढ़ने की तरह राजलक्ष्मी भी मुश्किल से उठती है, क्षण ही में गिर जाती है। पारे के रस के समान अनेक यत्नों से रखने पर भी वह नहीं रहती। बहुत प्रार्थना करने पर भी वह ठगती है। बन्दरों की तरह वह चंचल होती

है। कमल के पत्ते पर पड़े हुए पानी की तरह वह अनगढ़ी है। हवा की चाल की तरह वह चपल है। वदमाशों के साथ की तरह वह अस्थिर है। सर्प की तरह वह दुरुपचार है। संध्याकालीन वादल की तरह उसमें क्षणिक ललाई है। जल के वुलवुलों की तरह वह स्वभाव से ही नाशवान है। शरीर की प्रकृति की तरह वह कृतघ्न है तथा सपने में मिली हुई धनराशि की तरह क्षण में दिखलाई देकर नष्ट हो जाने वाली है। और भी —

"जैसे ही राज्याभिषेक होता है वैसे ही वुद्धि कठिनाइयों के सुलझाने में लग जाती है। राज्याभिषेक के समय पानी के घड़े पानी के साथ विपदाएँ भी गिराते हैं।

आपत्ति में कोई वस्तु वड़ी नहीं है। कहा भी है—

"राम का वनवास, वलि का वांधा जाना, पांडवों का वन-गमन, यादवों की मृत्यु, अर्जुन का नाट्याचार्य होना, नल राजा का राज्यच्युत होना, लंकेश्वर का पतन, काल वश सव लोग यह सहते हैं, कौन किसकी रक्षा कर सकता है?

"इन्द्र के मित्र दशरथ आज स्वर्ग में कहां हैं? समुद्र की लहरें वांधने वाले राजा सगर आज कहां हैं? हाथ से पैदा वैन्य आज कहां है? कहां हैं सूर्य पुत्र मनु? वलवान काल ने इन सव को जगा कर पुनः उनकी आंखें बन्द कर दीं।

"त्रिलोक को विजय करने वाले मांधाता कहां गए? राजा सत्यव्रत कहां हैं? देवताओं के राजा नहुप कहां हैं? विद्वान् कृष्ण कहां हैं? इन्द्रासन पर वैठने वाले रथ और हाथी वालों को महात्मा काल ने ही वनाया और उसी ने उन्हें नष्ट कर दिया।

और भी —

"वही राजा है, वे ही मंत्री हैं, वे ही स्त्रियां हैं, वे ही कानन वन हैं, पर वे सव काल की क्रूर दृष्टि से नष्ट हो गए।"

इस तरह मतवाले हाथी के कान की तरह चंचल राजलक्ष्मी को पाकर न्याय-तत्पर होकर आप राज भोगिए।"

लब्धप्रणाश

लब्धप्रणाश नाम का चौथा तंत्र आरम्भ होता है। उसका यह पहला श्लोक है —

"काम आ जाने पर जिसकी बुद्धि छीजती नहीं, वह पानी में गए बन्दर की तरह आपत्ति पार कर जाता है—

इस बारे में ऐसा सुनने में आता है —

किसी समुद्र के किनारे जामुन का हमेशा फलने वाला एक बड़ा पेड़ था। उस पर रक्तमुख नामक बन्दर रहता था। पेड़ के नीचे एक समय कराल-मुख नाम का मगर समुद्र से निकलकर कोमल बालू से भरे तीर पर बैठ गया। रक्तमुख ने उससे कहा, "आप अतिथि हैं इसलिए मेरे द्वारा दिये गए अमृततुल्य जामुन आप खाएं। कहा भी है —

"वैश्वदेव के बाद आया अतिथि प्रिय हो अथवा अप्रिय, मूर्ख हो अथवा पंडित, वह स्वर्ग की गति देता है।

" मनु ने कहा है—वैश्व देव के बाद और श्राद्धों में आये हुए अतिथि के चरण, गोत्र, विद्या और कुल नहीं पूछे जाते।

" दूर रास्ता चलकर आने के श्रम से थके हुए तथा वैश्वदेव के बाद आये हुए अतिथि की जो पूजा करता है, उसे स्वर्ग मिलता है।

" जिसके घर से बिना पूजा के उसाँस भरता हुआ अतिथि वापस

जाता है उससे पितरों के साथ सब देवगण अपना मुख फेर लेते हैं।"

यह कहकर उसने उसे जामुन के फल दिये। मगर भी उन्हें खाकर उसका देर तक संग-साथ करके पुन: अपने घर चला गया। इस तरह रोज-रोज बन्दर और मगर जामुन की छाया में बैठकर तरह-तरह की शास्त्र-चर्चा में अपना समय बिताते थे। वह मगर भी खाने से बचे जामुन अपने घर लौटकर स्त्री को देता था।

एक दिन मगरी ने मगर से पूछा, "अमृत की तरह ये फल तुझको कैसे मिलते हैं?" उसने कहा, "मेरा एक परम मित्र रक्तमुख नाम का बन्दर है, वह प्रेम से इन फलों को देता है?" मादा ने कहा, "जो हमेशा अमृत की तरह ऐसे फल खाता है उसका दिल भी अमृतमय हो गया होगा। इसलिए अगर अपनी स्त्री की तुझे आवश्यकता है तो उसका दिल तू मुझे दे दे, जिसे खाकर बुढ़ापे और मृत्यु से छूटकर मैं तेरे साथ भोग करूं।" मगर ने कहा, "भद्रे! ऐसा मत कह। वह मेरा भाई हो गया है और दूसरे फलदाता। इसलिए वह मारा नहीं जा सकता। झूठा हठ छोड़। कहा भी है—

"एक जगह वाणी मनुष्य को जन्म देती है और दूसरी जगह माता। पर वाग्बंधु सहोदर भाई से भी अधिक बन्धु गिना गया है।"

मगरी ने कहा, "तूने कभी भी मेरी बात नहीं टाली। जरूर कोई बंदरिया होगी, जिसके प्रेम में तू वहां सारा दिन जाता है। मैंने अब तुझे अच्छी तरह से जान लिया क्योंकि

"तू खुशी से मेरी बात का जवाब नहीं देता। मुझे मनचाही चीज नहीं देता। रात में अनेक बार आग की लपट की तरह गरम-गरम साँसें जोर से छोड़ता है। गला भेंटने में ढिलाई दिखलाता है और चुम्बन में आदर नहीं करता। इसलिए हे धूर्त! तेरे हृदय में मुझसे भी बढ़कर कोई दूसरी प्रियतमा बसी है।"

उस मगर ने अपनी पत्नी का पैर पकड़ लिया और उसे गोद में

रखकर बड़े गुस्से में भरी उससे दीनतापूर्वक कहने लगा—

"तेरे पैर पड़कर दासता स्वीकार कर लेने पर भी हे प्राणप्रिये, गुस्सेखोर, तू किसलिए गुस्सा करती है ?"

उसने भी उसकी बातें सुनकर आँसू भरी आँखों से कहा —

"हे धूर्त! नकली भावों से सुन्दर बनी हुई वह स्त्री सैकड़ों मनोरथों के साथ तेरे हृदय में बसती है, मेरे लिए वहाँ कोई जगह नहीं है। फिर पैरों में पड़कर तू मेरी हँसी क्यों उड़ाता है ?

फिर वह तेरी प्राणप्यारी नहीं है तो मेरे कहने पर भी तू क्यों उसे नहीं मारता। अगर वह बन्दर है तो तेरे साथ उसका इतना स्नेह किसलिए ? अधिक क्या कहूं, अगर उसका जिगर नहीं मिला तो मैं आमरण उपवास करूंगी, यह तू जान लेना।" इस तरह उसका निश्चय जानकर चिंतित हृदय से मगर ने कहा, "यह ठीक ही कहा है —

"सरेस का, मूर्ख का, स्त्रियों का, केकड़े का, मछलियों का, नील का और शराब पीने वाले का एक ही ग्रह होता है, अर्थात् जिनसे वे चिपटते हैं उनसे अलग नहीं होते।

इसलिए मैं क्या करूं ? मैं उसको कैसे मार सकता हूं ?" इस तरह सोचते-विचारते वह बन्दर के पास गया। बन्दर भी उसे देर से आया देखकर घबराते हुए बोला, "मित्र, तू देर करके क्यों आया है ? किसलिए खुशी-खुशी बात नहीं करता, न सुभाषित ही पढ़ता है ? " उसने कहा, "तेरी भौजाई ने मुझसे ये कठोर बातें कही हैं, 'अरे कृतघ्न ! तू मुझे अपना मुंह मत दिखला, क्योंकि तू रोज अपने मित्र के मत्थे खाता है, पर अपना घर दिखलाकर भी उसके उपकार का बदला नहीं देता। तेरे ऐसों के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है। कहा है कि

"ब्रह्महत्या करने वाले, शराब पीने वाले, चोरी करने वाले तथा व्रत भंग करने वाले के लिए सत्पुरुषों ने प्रायश्चित्त कहा है, पर कृतघ्न के लिए प्रायश्चित्त नहीं है।

इसलिए तू मेरे देवर को बदला चुकाने के लिए घर ला, नहीं तो तेरे

साथ परलोक में ही मेरी मुलाकात होगी।' उसके ऐसा कहने पर मैं तेरे पास आया हूँ। आज उसके साथ तेरे लिए कलह में मेरा सारा समय बीत गया। इसलिए तू मेरे घर चल। तेरी भौजाई चौक पूरकर महीन वस्त्र और मणिमाणिक के गहने पहनकर दरवाजे पर वंदन वार बाँधकर उत्कंठा से तेरी राह देखती खड़ी है।" वन्दर ने कहा, "मित्र ! मेरी भौजाई ने ठीक ही कहा है। कहा है कि

"बुद्धिमान मनुष्य बुनकर-जैसे स्वार्थी मित्र को त्याग देते हैं जो लालच से दूसरे को (बुनकर जिस तरह तार खींचता है उसी तरह) अपनी तरफ खींचता है (पर स्वयं उसके पास नहीं जाता)।

और भी

"देना और लेना, छिपी वात कहना और पूछना, खाना और खिलाना प्रेम के ये छः प्रकार के लक्षण हैं।

पर हम तो वनचर हैं, तेरा घर पानी में है फिर मैं वहां कैसे जा सकता हूं। इसलिए तू मेरी भौजाई को यहां ले आ, जिससे उसे प्रणाम करके उसका आशीर्वाद ले सकूं।" उसने कहा, "हे मित्र! समुद्र के उस पार एक रम्य किनारे पर मेरा घर है, इसलिए निर्भय होकर मेरी पीठ पर चढ़कर चल।" यह सुनकर उसने खुशी से कहा, "भद्र! अगर यही वात है तो फिर देर क्यों करता है ? जल्दी कर। मैं तेरी पीठ पर वैठता हूं।" ऐसा कह लेने के वाद मगर को अगाव समुद्र में जाते हुए देखकर डरे हुए वन्दर ने कहा, "भाई ! तू धीरे-धीरे चल, पानी के झकोरों से मेरा शरीर भीग गया है।" यह सुनकर मगर ने सोचा, गहरे पानी में पहुँचकर यह मेरे वश में आ गया है, मेरी पीठ से यह तिल-भर भी हट नहीं सकता। इससे मैं उससे अपना मतलव कहूँगा जिससे वह अपने इष्टदेवता का स्मरण करे। मगर ने कहा, "मित्र ! मैं तुझे अपनी पत्नी की वात से विश्वास दिलाकर मारने के लिए लाया हूं, इसलिए तुझे अपने इष्टदेवता का स्मरण करना चाहिए।"

वन्दर ने कहा, "भाई ! मैंने तेरा क्या नुक्सान किया है जिससे तू मुझे

मारने की सोचता है ?" मगर बोला, "अरे, उसे अमृतमय रस वाले फलों के स्वाद से मीठे बने तेरे हृदय को खाने की इच्छा हुई है, इसीलिए मैंने ऐसा किया है।" तुरन्त सोचने वाले वन्दर ने कहा, "भद्र! यदि ऐसी बात है तो तूने मुझसे वहीं पर ऐसा क्यों नहीं कहा, क्योंकि मैं अपना हृदय हमेशा जामुन के पेड़ के खोखले में छिपाकर रखता हूं, उसे मैं अपनी भौजाई को दे देता। विना हृदय वाले मुझको तू यहां किसलिए ले आया है ?" यह सुनकर मगर खुशी से बोला, "अगर ऐसी बात है तो तू अपना हृदय मुझे दे दे, जिससे मैं उसे खिलाकर उस दुष्ट पत्नी का अनशन तोड़ूं। मैं तुझे उस जामुन के पेड़ के पास पहुँचा दूंगा।" यह कहकर वह जामुन के पेड़ के पास लौट आया। वन्दर, जिसने जान बचाने के लिए अनेक देवताओं की मिन्नतें मानी थीं, तीर पर पहुँच गया, फिर एक लम्बी छलांग से जामुन के पेड़ पर पहुँचकर वह सोचने लगा, "चलो, प्राण तो बचे अथवा यह ठीक ही कहा है—

"अविश्वासी का विश्वास नहीं करना चाहिए और विश्वासी का भी विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास करने से पैदा हुआ भय मूल को भी काट डालता है।

आज मेरा पुनर्जन्म का दिन है।" यह सोच ही रहा था कि मगर ने कहा, "मित्र! अपना हृदय दे जिसे खिलाकर मैं तेरी भौजाई का अनशन तोड़ूं।" हँसकर झिड़कते हुए वन्दर ने कहा, "अरे मूर्ख दगावाज, तुम्हें धिक्कार है। क्या कभी किसी के दो हृदय होते हैं? इसलिए जल्दी भाग, फिर कभी जामुन के पेड़ के नीचे मत आना। कहा भी है—

"एक वार दुष्टता करने वाले मित्र के साथ जो फिर मेल करना चाहता है वह गर्भ धारण करके जैसे खच्चरी मरती है, उसी तरह मरता है।"

यह सुनकर मगर शरमाकर सोचने लगा, "मुझ मूर्ख ने अपनी तबीयत की बात उसे क्यों बताई ? फिर वह किसी तरह माने तो मैं फिर उसका विश्वासी बनूं।" उसने कहा, "मित्र! मैंने हँसी में तेरा विचार जाना था। तेरे हृदय की उसे कोई जरूरत नहीं है, इसलिए पाहुने की तरह तू मेरे घर चल। तेरी

भौजाई उत्कंठा से तेरा रास्ता देख रही होगी।" बन्दर ने कहा, "अरे दुष्ट! अरे दुष्ट! भाग जा। मैं नहीं जाता। कहा है कि

"भूखा कौनसा पाप नहीं करता, क्षीण मनुष्य निर्दयी हो जाते हैं। भद्रे! प्रियदर्शन से कहो कि गंगदत्त पुनः कूएँ में नहीं आयगा।"

मगर ने कहा, "यह कैसे?" उसने कहा —

मेढकों के राजा और साँप की कथा

किसी कूएँ में गंगदत्त नाम का मेढ़कों का राजा रहता था। एक समय वह रिश्तेदारों से तंग आकर रंहट की घड़ी पर चढ़कर बाहर निकल आया। वह सोचने लगा, "किस तरह मैं उन रिश्तेदारों को नुक्सान पहुँचाऊं? कहा भी है —

"आपत्ति में जिसने अपकार किया हो, और तकलीफ में जिसने हँसी की हो, उन दोनों को नुक्सान पहुँचाने वाले पुरुष का मैं फिर से जन्म मानूंगा।"

इस तरह सोचते हुए उसने वांबी में घुसते हुए एक काले सांप को देखा। उसे देखकर उसने फिर सोचा, "इसे उस कूएँ में ले जाकर मैं सब रिश्तेदारों को मरवा डालूंगा। कहा भी है —

"अपना काम साधने के लिए शत्रु के सामने शत्रु को और जोरदार के सामने जोरदार को भिड़ाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने में दुश्मन को मारने में कोई तकलीफ न होगी।

उसी तरह —

"कांटे से जिस तरह कांटा निकाला जाता है, बुद्धिमान को उसी तरह दुःख देने वाले तीखे शत्रु को तीखे शत्रु द्वारा सुख के लिए निर्मूल करना चाहिए।"

ऐसा विचार करके उसने वांबी के द्वार पर जाकर उसे पुकारा, "आओ प्रियदर्शन! आओ!" यह सुनकर सर्प ने सोचा, "जो मुझे ऐसे पुकारता है, वह अपनी जाति का नहीं हो सकता और यह सर्प की आवाज

भी नहीं है। इस मृत्युलोक में मेरी किसी दूसरे से दोस्ती भी नहीं है, इसलिए इस किले में मैं तब तक रहूँगा जब तक मुझे यह पता न लगे कि यह कौन है। कहा भी है—

"बृहस्पति का कहना है कि जिसके शील, कुल और स्थान का पता न हो उसके साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए।

शायद मंत्र, बाजा अथवा औषधि में चतुर कोई मुझे बुलाकर बंधन में फंसाना चाहता है, अथवा कोई आदमी दुश्मनी साधकर खाने के लिए मुझे पुकारता है।" उसने कहा, "अरे! तू कौन है?" उत्तर मिला "मैं गंगदत्त नामक मेढकों का राजा तेरे पास दोस्ती के लिए आया हूँ।" यह सुनकर सांप ने कहा, "अरे! यह बात वैसी ही झूठी है जैसे तिनकों और आग का साथ। कहा भी है—

"जिसका जिससे वध हो वह किसी तरह सपने में भी उसके पास नहीं आता, फिर तू ऐसा क्यों बकता है?"

गंगदत्त ने कहा, "यह सच्ची बात है। तू हमारा स्वभाव से ही शत्रु है, पर शत्रुओं से हारकर मैं तेरे पास आया हूँ। कहा है कि

"जब सर्वनाश उपस्थित हो और प्राणों के लाले पड़ जायें तब दुश्मन को भी प्रणाम करके जान और धन बचाना चाहिए।"

सांप ने कहा, "तुझे किसने हराया यह कह।" उसने कहा, "रिश्तेदारों ने।"

सर्प ने कहा, 'तेरा डेरा बावली, कूआं, तालाब या झील कहां है, इसका पता बता।" उसने कहा, "संगीन कूएं में।" सर्प ने कहा, "हम बिना पैर के हैं, इसलिए वहां नहीं घुस सकते। घुसकर भी वहां ऐसी जगह नहीं है जहां ठहरकर मैं तेरे रिश्तेदारों को मार सकूं। कहा भी है कि

"अपना भला चाहने वाले को जो वस्तु निगली जा सके, खाने के बाद जो पच जाय, और पचने के बाद जो फायदा पहुँचाए, उसी चीज को खाना चाहिए।"

गंगदत्त बोला, "तू मेरे साथ चल, मैं तुझे आसानी से वहां पहुँचा दूँगा। उस कूएँ के बीच में पानी से लगा हुआ एक कोटर है उसमें रहकर तू खेल-में ही मेरे रिश्तेदारों को मार सकेगा।" यह सुनकर सांप ने सोचा, "बूढ़े हो जाने पर किसी तरह से कभी एक चूहा मिल जाता है। इस कुलांगार ने मुझे सुख से जीने का उपाय बता दिया है; इसलिए मैं जाकर उन मेढकों को खा जाऊंगा। अथवा ठीक ही कहा है—

"जिसका बल छीज गया हो और जिसका कोई सहारा न हो, ऐसे बुद्धिमान मनुष्य को सहूलियत के साथ मिलने वाली रोजी पकड़नी चाहिए।"

यह सोचकर उसने कहा, "अगर यह बात है तो तू आगे हो ले। जिससे हम दोनों वहाँ चलें।" गंगदत्त ने कहा, "हे प्रियदर्शन! मैं तुझे अच्छी तरह से वहां ले चलूंगा और स्थान दिखलाऊंगा। पर तुझे मेरे साथियों को बचाना होगा। केवल जिन्हें मैं दिखलाऊंगा तू उन्हें ही खाना।" सर्प ने कहा, "आज से तू मेरा मित्र हो गया है, इसलिए डर मत। तेरे कहने के अनुसार ही मैं तेरे रिश्तेदारों को खाऊंगा।" यह कहकर वह बिल से निकला और गंगदत्त से गले मिलकर उसके साथ चल पड़ा। कूएं पर पहुंचकर रँहट के रास्ते वह सर्प को अपने घर लाया। उस काले सांप को खोखले में रखकर गंगदत्त ने उसे अपने रिश्तेदारों को दिखला दिया। बाद में वह धीरे-धीरे उन्हें खा गया। मेढकों के खत्म हो जाने पर सांप ने कहा, "भद्र! तेरे शत्रु खत्म हो गए, अब मुझे और भोजन बता, क्योंकि तू ही मुझे यहां लाया है।" गंगदत्त ने कहा, "भद्र! तूने अपने दोस्त का बड़ा काम किया है, अब फौरन रहठ के घड़े के रास्ते वापस चला जा।" सर्प ने कहा, "अरे गंगदत्त! तूने यह ठीक नहीं कहा। अब मैं वहां कैसे जाऊं? मेरे बिल को दूसरे ने घेर लिया होगा इससे मेरे यहां रहने पर अपने दल के एक मेढक को तू बारी-बारी मुझे दे, नहीं तो मैं सबको खा जाऊंगा।" यह सुनकर गंगदत्त घबराकर सोचने लगा, "अरे! मैंने इस सांप को यहां लाकर क्या किया? अगर मैं इसे मना करूंगा तो यह सबको खा जायगा। अथवा ठीक ही कहा है —

"अपने से अपार ताकत वाले दुश्मन के साथ जो मित्रता करता है वह स्वयं ही जहर खाता है इसमें कोई शक नहीं।

इसलिए मैं उसे हर रोज अपना एक दोस्त दूंगा। कहा है कि

"सर्वस्व लेने को तैयार शत्रु को, जिस तरह समुद्र वडवानल को सहन करता है, उसी तरह समझदार आदमी थोड़ी सी चीज देकर उसका संतोष कर देता है।

उसी प्रकार

"जोरावर के मांगने पर जो कमजोर एक दाना भी मन से नहीं देता अथवा दिखाई हुई चीज नहीं देता, बाद में वह अंगुली न दिखाने पर भी उसे आंटे की एक खारी (एक विशेष तरह का नाप) देता है।

उसी प्रकार

"सब चीजों के समाप्त होने की संभावना आ पड़ने पर चतुर आदमी आधा छोड़ देता है और आधे से अपना काम चलाता है, क्योंकि सर्वनाश उसके लिए दुस्सह हो जाता है।

"थोड़े से के लिए बुद्धिमान आदमी बहुत का नाश नहीं करता। थोड़े से बहुत की रक्षा यही पांडित्य है।"

इस तरह निश्चय करके वह एक-एक मेढक को सांप के पास जाने का हुक्म देता था। वह भी उन्हें खाकर चुपके-चुपके दूसरों को भी खा जाता था। अथवा ठीक ही कहा है—

"जैसे गंदे कपड़े होने से जहां-तहां भी बैठा जा सकता है, उसी तरह आचार-भ्रष्ट मनुष्य अपने बचे-खुचे चरित्र की भी रक्षा नहीं करता।"

एक दिन वह सर्प दूसरे मेढकों को खाकर गंगदत्त के लड़के यमुनादत्त को भी खा गया। उसे खाया जानकर गंगदत्त जोर-जोर से धिक् धिक् कहकर रोने लगा और रोते हुए किसी तरह रुकता ही न था। इस पर उसकी स्त्री ने कहा—

"अरे निरर्थक रोने वाले ! अपने साथियों का ही नाश करने वाला तू रोता क्यों है ? तेरे साथियों के नाश हो जाने पर अब तुझे कौन बचायेगा ? अब भी तू यहां से बाहर निकलने और उसे मारने का उपाय सोच ।"

इस पर भी गंगदत्त ने उसकी बात न मानी । कुछ दिनों में प्रियदर्शन ने सब मेढकों को खा लिया, केवल अकेला गंगदत्त बच गया । इस पर प्रियदर्शन बोला, "अरे गंगदत्त ! मैं भूखा हूं, सारे मेढक खत्म हो गए । तू मुझे यहां ले आया है, इसलिए मुझे कुछ खाना दे ।" उसने कहा, "अरे मित्र! मेरे रहते हुए तुझे कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए । यदि तू मुझे बाहर भेजे तो मैं दूसरे कूएं में रहने वाले मेढकों को फँसाकर यहां ले आऊंगा ।" उसने कहा, "भाई की जगह होने से तुझे मैं नहीं खा सकता । अगर तू ऐसा करेगा तो तू मेरे पिता के स्थान पर हो जायगा, इसलिए ऐसा ही कर ।"

बहुत से देवताओं की मिन्नत मानता हुआ गंगदत्त भी यह सुनकर रहट के घड़े के रास्ते उस कूएं के बाहर निकल गया । प्रियदर्शन उसके लौटने की बाट जोहते हुए पड़ा रहा । बहुत देरतक गंगदत्त के न आने पर प्रियदर्शन ने एक दूसरे खोखले में रहने वाली गोह से कहा, "भद्रे! मेरी थोड़ी सी मदद कर । गंगदत्त को तू बहुत दिनों से जानती है,इसलिए किसी तालाब में जाकर और उसको खोजकर उससे मेरा संदेशा कह, 'अगर दूसरे मेढक न भी आएं तो तू जल्दी से अकेला ही लौट आ । मैं तेरे बिना नहीं रह सकता । अगर मैं तेरे साथ कुछ बुरा व्यवहार करूं तो तुझे मेरी सौगंध है '।" उसके कहे अनुसार गोह ने भी गंगदत्त को जल्दी से खोजकर कहा, "भद्र गंगदत्त! तेरा मित्र प्रियदर्शन तेरी बाट जोह रहा है। इसलिए जल्दी चल। और वह तेरा नुक्सान नहीं करेगा, इसकी उसने कसम खाई है इसलिए तू बेधड़क चल ।" यह सुनकर गंगदत्त ने कहा—

"भूखा आदमी कौनसा पाप नहीं करता । कमजोर आदमी निर्दयी हो जाते हैं । हे भद्रे! तू प्रियदर्शन से जाकर कह, गंगदत्त फिर उस कूएँ में नहीं आयेगा ।"

यह कहकर गोह को उसने विदा कर दिया ।

इसलिए हे दुष्ट जलचर! मैं भी गंगदत्त की तरह फिर तेरे घर कभी नहीं जाऊंगा।" यह सुनकर मगर ने कहा, "अरे मित्र! यह ठीक नहीं, मेरे घर जाकर तू मेरे कृतघ्नता के दोष को दूर कर, नहीं तो मैं तेरे ऊपर प्राण दे दूंगा।" वन्दर ने कहा, "अरे मूर्ख ! क्या मैं लम्बकर्ण गधा हूँ जो आफत आई देखकर भी खुद वहां जाकर अपनी जान दे दूँ ?

"वह आया और सिंह का पराक्रम देखकर भागा, पर वह विना कान और हृदय का मूर्ख था जो भागकर फिर से आया।"

मगर वोला, "भद्र ! वह लम्बकर्ण कौन था ? आफत आई देखकर भी वह किस तरह मरा ? यह सव मुझसे कह।" वन्दर कहने लगा —

सिंह और गधे की कथा

"किसी जंगल में कराल केसर नाम का एक सिंह रहता था। हमेशा उसकी वात मानने वाला धूसरक नाम का सियार उसका नौकर था। एक समय हाथी के साथ लड़ाई लड़ते हुए सिंह के शरीर में वहुत से संगीन घाव लग गए, जिनसे वह एक कदम भी नहीं चल सकता था। उसके न चल सकने से भूखे रहकर धूसरक कमजोर पड़ गया। एक दिन उसने सिंह से कहा, "स्वामी ! भूख से व्याकुल होकर मैं एक कदम भी नहीं चल सकता। इसलिए मैं कैसे आपकी सेवा कर सकता हूं ?" सिंह ने कहा', "अरे जा, किसी जानवर की खोज कर जिसे मैं ऐसी हालत में भी मार सकूं।" यह सुनकर सियार खोजता हुआ किसी पास के गांव में जा पहुंचा। वहां उसने लम्बकर्ण नाम के एक गधे को तालाव के किनारे पतली दूव के अंकुरों को कष्टपूर्वक खाते हुए देखा। इस पर उसके पास जाकर सियार ने कहा, "मामा! मेरा नमस्कार ग्रहण करो। वहुत दिनों के वाद दिखलाई पड़े। कहो, इतने कमजोर क्यों हो गए हो ?" इस पर उसने कहा, "अरे भांजे ! क्या कहूं? निर्दयी धोवी वड़े वोझ से मुझे तकलीफ देता है। एक मुट्ठी घास भी नहीं देता। मैं केवल धूल मिले हुए घास के अंकुर खाता हूं, फिर मेरा शरीर कैसे पुष्ट

हो सकता है ?" सियार ने कहा, "मामा! अगर यही बात है तो फिर उस खूबसूरत जगह चलो जहां नदी है और पन्ने की तरह घास है। वहां पहुंचकर मेरे साथ बातचीत का आनन्द लेते हुए रहना।" लम्बकर्ण ने कहा, "अरे भांजे! तूने ठीक कहा, पर हम देहाती हैं और जंगली जानवर हमें मारते हैं। फिर उस सुन्दर जगह से क्या फायदा ?" सियार ने कहा, "मामा! ऐसा मत कहो, वह देश मेरे बाहुओं से रक्षित है। किसी दूसरे का वहां प्रवेश नहीं है। धोबियों से सताई हुई वहां तीन गधियां हैं। मोटी-ताजी और जवान होकर उन्होंने मुझसे यह कहा है अगर मैं उनका सच्चा मामा हूं तो किसी गांव में जाकर उनके लायक पति ढूंढ लाऊं। इसीलिए मैं तुम्हें वहां ले जा रहा हूं।" सियार की यह बातें सुनकर कामातुर गधे ने उससे कहा, "भद्र, अगर यही बात है तो आगे चल, मैं तेरे पीछे चलूंगा।" अथवा यह ठीक ही कहा है कि

"मनोहर शरीरवाली एक स्त्री छोड़कर कोई चीज विष और अमृत नहीं रह जाती। उसके प्रसंग से जीवन मिलता है और उसके वियोग से मृत्यु।

और भी

"जिसके संग और दर्शन बिना भी केवल उसका नाम सुनने से ही काम उत्पन्न होता है उस स्त्री से आंख लड़ने पर जो न पिघले तो यह आश्चर्य की ही बात है।"

इस तरह वह चलकर सियार के साथ सिंह के पास पहुंच गया। पीड़ित सिंह भी उसे देखकर जैसे उठने को हुआ वैसे ही गधा भागने लगा। उसे भागते हुए देखकर सिंह ने पंजा मारा, पर अभागे की कोशिश की तरह उसका वार व्यर्थ गया।

ऐसे समय गुस्सा होकर सियार ने सिंह से कहा, "यह तुम्हारा वार कैसा कि एक गधा भी तुम्हारे सामने से भाग गया, फिर तुम कैसे हाथी से लड़ोगे? मैंने तुम्हारी ताकत देख ली।" शरमीली हँसी से सिंह ने कहा, "अरे! मैं क्या करूं? मैं मारने के लिए तैयार नहीं था, नहीं तो हाथी भी मेरा वार

नहीं सह सकता था।" सियार ने कहा, "मैं फिर एक वार उसे तुम्हारे पास लाऊंगा। तुम्हें आक्रमण करनें के लिए तैयार होकर वैठना चाहिए।" सिंह ने कहा, "भद्र! मुझे प्रत्यक्ष देखकर वह भागा है, फिर वह कैसे आयगा? इसलिए दूसरे जानवर की खोज कर। सियार ने कहा, "तुम्हें इससे क्या? तुम केवल वार के लिए तैयार वैठो।" उसके वाद सियार ने गधे के रास्ते चलते हुए उसे एक जगह चरते हुए देखा। सियार को देखकर गधा वोला, "अरे भांजे! तू मुझे अच्छी जगह ले गया। मैं तो मौत के चंगुल में फंस गया था। अच्छा यह तो वता कि वह कौन जीव है जिसके भयंकर वज्र-समान पंजे के वार से मैं वच निकला?" यह सुनकर हँसते हुए सियार ने कहा, "भद्र! तुझे आते देखकर गधी तुझे प्रेम से भेंटने को खड़ी हुई, पर तू डरपोक भाग निकला। वह तेरे विना नहीं रह सकती। तुझे भागते देखकर रोकने के लिए उसने पंजा मारा, किसी और दूसरी वजह से नहीं, इसलिए वापस चल। तेरे विना वह विना खाए जान देने वैठी है और कहती है, 'यदि लम्वकर्ण मेरा पति न हुआ तो मैं आग या पानी में घुसकर प्राण दे दूंगी। मैं उसका वियोग नहीं सह सकती।' इसलिए कृपाकर वहां चल, नहीं तो तुझे स्त्री-हत्या का पाप लगेगा और भगवान काम भी तुझ पर कोप करेंगे।

कहा भी है

"झूठे फल को खोजने वाले जो कुवुद्धि मूर्ख सव इच्छाओं को पूरी करने वाली जयिनी, कामदेव की स्त्री रूपी महामुद्रा, को छोड़कर चल देते हैं, उनके ऊपर कामदेव ने निर्दयतापूर्वक वार करके उन्हें नंगा तथा सिरमुंडा वना दिया है; कितनों को गेरुवा कपड़ा पहनने वाला, जटाधारी और वहुतों को कापालिक वना दिया है।"

विश्वासपूर्वक उसकी वातें सुनकर गधा फिर से उसके साथ चल पड़ा। अथवा ठीक ही कहा है—

"जानते हुए भी आदमी दुर्भाग्यवश निन्दनीय काम करता है। इस संसार में निन्दनीय काम किसे अच्छा लगता है?"

उसी समय वार करने को तैयार बैठे सिंह ने लम्बकर्ण को मार डाला। उसे मारने के बाद सियार को रखवाला बनाकर वह नदी में नहाने को चला गया। लालच और जल्दी के मारे सियार ने गधे का हृदय और कान खा लिए। इसके बाद नहा-धोकर और देवता की पूजा करके, पितरों को पानी देकर जब सिंह वहाँ आया तो उसने कान और हृदय के बिना गधे को देखा। यह देखकर सिंह गुस्से से जलते हुए बोला, "अरे पापी! तूने यह अनुचित काम क्यों किया? हृदय और कान खाकर तूने गधे को जूठा कर दिया है।" सियार ने आजिजी से कहा, "स्वामी! ऐसा मत कहिए। क्योंकि यह गधा बिना हृदय और कान का था, जिससे वह यहां आकर और आपको देखकर भी फिर दूसरी बार आया।" इस तरह उसकी बात का विश्वास करके सिंह ने उसके साथ हिस्सा बँटाते हुए गधे को खा लिया।

इसलिए मैं कहता हूं कि "वह आया और सिंह का पराक्रम देखकर
पीछे भागा, पर बिना कान और हृदय का मूर्ख था जो भागकर
फिर आया।

इसलिए अरे मूर्ख! तूने कपट किया है, पर युधिष्ठिर की तरह सच्ची बात कहकर उसे खोल दिया है। अथवा ठीक ही कहा है कि

"अपना स्वार्थ छोड़कर जो कमअक्ल और दम्भी आदमी सच बोलता
है, वह दूसरे युधिष्ठिर की तरह अपने स्वार्थ से गिर जाता है।"

मगर ने कहा, "यह कैसे?" बन्दर कहने लगा —

युधिष्ठिर कुम्हार की कथा

"किसी नगर में एक कुम्हार रहता था। एक समय नशे में जोर से दौड़ते हुए वह घड़े के टूटे धारदार खपड़े पर गिर पड़ा। खपड़े की ठोकर से उसका सिर फूट गया और लोहू-लुहान होकर वह मुश्किल से उठकर अपने घर वापस आया। बाद में अपथ्य करने से उसका घाव बिगड़ गया और बहुत मुश्किल से अच्छा हुआ।

एक समय जब देश में अकाल पड़ रहा था, वह कुम्हार भूख-प्यास से

व्याकुल होकर बहुत से राज-सेवकों के साथ परदेस जाकर किसी राजा का सेवक हो गया। उस राजा ने उसके सिर पर गहरे घाव का निशान देखकर सोचा, "यह जरूर कोई वीर आदमी है, इसीलिए इसके सिर पर घाव हुआ है।" इसके बाद राजा उसकी इज्जत करके दूसरे राजपूतों से भी अधिक उस पर कृपादृष्टि रखने लगा। राजपूत भी उस पर राजा की बहुत मेहरबानी देखकर उससे डाह करने लगे। पर राजा के डर से वे उसे कुछ कहते नहीं थे।

एक दिन लड़ाई का मौका आ पहुँचने पर राजा सब शूरवीरों का सम्मान करने लगा। हाथी सजने लगे, घोड़ों पर साज पड़ने लगे और सिपाही तैयार होने लगे। ऐसे समय उस राजा ने कुम्हार से अकेले में जाकर समयानुसार प्रश्न किया, "हे राजपूत! क्या लड़ाई में तेरे सिर पर यह चोट लगी थी?" उसने कहा, "देव! यह हथियार की चोट नहीं है। मैं जात का कुम्हार हूँ मेरे घर में बहुत से खपड़े पड़े थे, एक दिन शराब पीकर दौड़ते हुए मैं खपड़ों पर गिर गया, उसकी चोट लग जाने से इस तरह मेरा सिर विकृत दिखाई देता है।" यह सुनकर राजा ने कहा, "अरे! राजपूत की नकल करने वाले इस कुम्हार ने मुझे धोखा दिया है, इसलिए इसे गरदनियां दो।" उसके ऐसा कहने पर कुम्हार ने कहा, "ऐसा मत कीजिए, लड़ाई में मेरे हाथ का जौहर देखिए।" राजा ने कहा, "तुझमें सब गुण हैं फिर भी तू चल दे। कहा है कि

"हे पुत्र! तू वीर है, विद्वान है, देखने में सुन्दर है, पर जिस खानदान में तू पैदा हुआ है, उसमें हाथी नहीं मारा जाता।"

कुम्हार बोला, "यह कैसे?" राजा कहने लगा—

सिंहनी और सियार के बच्चे की कथा

"किसी वन में सिंह का एक जोड़ा रहता था। एक समय सिंहनी को दो बच्चे हुए। सिंह रोज-रोज जानवरों को मारकर सिंहनी को देता था। एक दिन उसे कुछ नहीं मिला और वन में घूमते हुए सूरज डूब गया। घर

लौटते हुए उसे एक सियार का बच्चा मिला। उसे बच्चा जानकर जतन से अपने दाढ़ों के बीच रखकर सिंह ने उसे जीता-जागता सिंहनी को दे दिया। इस पर सिंहिनी ने कहा, "हे कान्त! क्या तुम हमारे लिए भोजन लाए हो?" सिंह ने कहा, "आज मुझे सियार को छोड़कर और कोई जानवर नहीं मिला। मैंने उसे बच्चा जानकर नहीं मारा और फिर वह अपनी जाति का है। कहा भी है—

"जान जाती हो तब भी स्त्री, संन्यासी, ब्राह्मण, बालक और विशेष करके विश्वासी आदमी के ऊपर कभी वार नहीं करना चाहिए।

इसलिए तू इसे खाकर अपना उपवास तोड़, सवेरे मैं और कुछ पैदा करूंगा।" उसने कहा, "हे कान्त! तुमने इसे बच्चा जानकर नहीं मारा, फिर मैं कैसे इसे पेट के लिए मार सकती हूं?

"जान जाने का मौका आ पड़ने पर भी कर्तव्य छोड़कर बुरा काम नहीं करना चाहिए, यही सनातन धर्म है।

इसलिए यह मेरा तीसरा बेटा होगा।" यह कहकर सिंहनी ने उसे अपना दूध पिला-पिलाकर मोटा-ताज़ा कर दिया। वे तीनों बच्चे भी बिना अपनी जाति जाने एक साथ खाते, पीते, घूमते अपना बचपन बिताने लगे। एक समय घूमता हुआ एक जंगली हाथी उस वन में आ गया। उसे देखकर सिंह के दोनों बच्चे क्रोधित होकर जब उसकी ओर चल पड़े तब सियार के बच्चे ने कहा, "अरे! यह हाथी तुम्हारे खानदान का दुश्मन है, इसलिए इसके सामने तुम्हें नहीं जाना चाहिए।" यह कहकर वह घर की ओर भागा। अपने बड़े भाई के भागने पर उन दोनों की हिम्मत भी टूट गई। अथवा ठीक ही कहा है—

"धीरज वाले और उत्साही एक ही पुरुष से सेना युद्ध में उत्साह दिखलाती है। अगर वह भागे तो सेना में भी भगदड़ पड़ जाती है।

और भी

"किसी वजह से महा बलवान, शूरवीर, धीरज धरने वाले और

उत्साही सिपाहियों की राजा इच्छा करता है और कायरों को छोड़ देता है।"

उन दोनों ने भी घर पहुँचकर हँसते हुए अपने पिता के सामने बड़े भाई की हरकत कही, "हाथी को देखकर यह दूर से भाग गया।" यह सुनकर सियार के बच्चे को गुस्सा चढ़ आया और उसके होठ फड़कने लगे, आँखें लाल हो गईं, भौंहों पर बल आ गए और उन तीनों को धिक्कारते हुए उसने डांटा। इस पर सिंहनी ने उसे अकेले में ले जाकर समझाया कि "वत्स! तुम्हें ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। ये तेरे छोटे भाई हैं।" इस पर और भी क्रोधित होकर वह कहने लगा, "क्या मैं इनसे शौर्य में, रूप में और विद्या में कम हूँ जिससे ये मेरी हँसी उड़ाते हैं। इसलिए मुझे इन्हें जरूर मार डालना चाहिए।" यह सुनकर उसकी जान बचाने के लिए भीतर-ही-भीतर हँसती हुई सिंहनी ने कहा—

"हे पुत्र! तू वीर है, विद्वान है, देखने में सुन्दर है, पर जिस खानदान में तू पैदा हुआ है उसमें हाथी नहीं मारा जाता।

हे वत्स! अब तू सुन। तू सियार का बच्चा है। मैंने दया करके दूध पिला कर तुझे पाला-पोसा है। इसलिए इन दोनों को तेरे सियार होने का पता न लगे, इसी बीच तू जल्दी से जाकर अपनी जाति से मिल जा, नहीं तो इन दोनों से मारे जाकर तुझे मृत्यु का रास्ता पकड़ना पड़ेगा।" यह सुनकर डर से घबराकर वह उसी समय भाग गया।

इसलिए जब तक ये राजपूत न जानें कि तू कुम्हार है इसी बीच में तू भाग जा, नहीं तो वे तुझे तकलीफ देंगे।" कुम्हार यह सुनकर जल्दी से भाग गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि

"अपना स्वार्थ छोड़कर जो कमअक्ल और दम्भी आदमी सच बोलता है, वह दूसरे युधिष्ठिर की तरह अपने स्वार्थ से गिर जाता है।

मूर्ख तुझे धिक्कार है कि तूने स्त्री के लिए ऐसा काम किया। स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिए। कहा भी है—

"जिसके लिए मैंने अपना कुल छोड़ा, अपना आधा जीवन हार गया, वह मुझे छोड़ती है। कौन आदमी स्त्रियों का विश्वास कर सकता है ?"

मगर ने कहा, "यह कैसे ?" बन्दर कहने लगा—

ब्राह्मणी और पंगु की कथा

"किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसे अपनी स्त्री प्राणों से भी प्यारी थी। वह भी प्रतिदिन घर वालों के साथ लड़ने-झगड़ने से कभी नहीं हटती थी। इस लड़ाई से परेशान होकर वह ब्राह्मण अपनी स्त्री के प्रेम के कारण अपने घरवालों को छोड़कर अपनी ब्राह्मणी के साथ दूर देश को चला गया। घनघोर जंगल के बीच ब्राह्मणी ने उससे कहा, "आर्यपुत्र! मुझे प्यास सता रही है, थोड़ा पानी खोजिए।" उसकी बात सुनकर पानी लेकर जब वह वापस आया तो उसे मरा हुआ पाया। स्नेह की बहुलता से शोक करता हुआ जब वह रो रहा था तब आकाश से उसे यह बात सुनाई दी, "हे ब्राह्मण! अगर तू अपनी जान का आधा दे दे तो तेरी ब्राह्मणी जी जायगी।" यह सुनकर पवित्र होकर तिवाचे से ब्राह्मण ने अपनी जान का आधा दे दिया। बात के साथ-ही-साथ ब्राह्मणी जी उठी। वे दोनों पानी पीकर और जंगली फल खाकर आगे चल पड़े। इस तरह घूमते-फिरते किसी नगर के एक बगीचे में पहुँचकर ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा, "भद्रे! जब तक मैं खाने का सामान लेकर लौटूं तब तक तू यहीं ठहरना।" यह कहकर वह शहर में चला गया।

उस बगीचे में रँहट घुमाते हुए एक पंगु मीठे सुर में गीत गा रहा था। उसे सुनकर कामबाण से घायल होकर उस ब्राह्मणी ने उसके पास जाकर कहा, "भद्र! अगर तू मेरे साथ भोग नहीं करेगा तो तुझे स्त्री मारने का पाप लगेगा।" पंगु ने कहा, "मुझ लूले-लंगड़े के साथ तू क्या करेगी ?" वह बोली, "ऐसा कहने से क्या ? तुझे मेरे साथ अवश्य संगम करना चाहिए।" यह सुनकर उसने वैसा ही किया। इसके बाद स्त्री ने कहा,

"आज से जिंदगी भर के लिए मैंने अपना शरीर तुझे सौंप दिया है। यह जानकर तू हमारे साथ चल।" उसने कहा, "ठीक है।"

बाद में ब्राह्मण खाने का सामान लेकर आया और अपनी स्त्री के साथ खाने लगा। उसने कहा, "यह पंगु भूखा है, इसे भी थोड़े से कौर दे दे।" उसके ऐसा करने पर ब्राह्मणी ने कहा, "हे ब्राह्मण! तुम विना सहारे के हो! जब तुम दूसरे गांव को जाते हो तो मेरे साथ कोई बात भी करने वाला नहीं रहता। इसलिए इस पंगु को लेकर हमें चलना चाहिए।" उसने कहा, "मैं अपने को तो संभाल ही नहीं सकता, फिर इस पंगु को कौन चलावे।" उसने कहा, "पेटी में रखकर मैं इसे ले चलूंगी।" उसकी बनावटी बातों से मोहित होकर ब्राह्मण ने भी यह बात मान ली।

इसके बाद एक दिन कुएं की जगत पर बैठे ब्राह्मण को उस पंगु को प्यार करने वाली स्त्री ने धक्का मारकर कुएं में गिरा दिया और उस पंगु को लेकर किसी नगर में घुसी। चोरी रोकने के लिए इधर-उधर घूमते हुए राजपुरुषों ने उसके सिर पर एक पेटी देखकर उसे जबरदस्ती छीनकर राजा के पास लाए। उन्होंने जब उसे खोला तो उसमें पंगु दिखलाई पड़ा। वह ब्राह्मणी भी रोती-कलपती राजपुरुषों के पीछे-पीछे वहां आई। राजा ने उससे पूछा कि "यह कैसी बात है?" वह बोली, "यह मेरा बीमार पति है। इसके रिश्तेदार इसे दुःख देते थे, इसलिए इसके प्रेम से व्याकुल होकर मैं इसे अपने सिर पर चढ़ाकर आपके पास लाई हूं।" यह सुनकर राजा ने कहा कि "हे ब्राह्मणी! तू मेरी बहन है। दो गांव लेकर अपने पति के साथ सुख भोगते हुए रह।"

भाग्यवश किसी अच्छे आदमी ने ब्राह्मण को कुएं से बाहर निकाला और वह घूमते-घूमते उसी शहर में आया। अपने पति को देखकर बदमाश स्त्री ने राजा को खबर दी, "हे राजन्। मेरे पति का दुश्मन आया है।" राजा ने उसको मारने की आज्ञा दी। ब्राह्मण बोला, "हे राजा! इस स्त्री ने मुझसे कुछ लिया है। अगर आप धर्मवत्सल राजा हैं तो उसे वापस दिलवाइए।" राजा ने कहा, "भद्रे! तूने जो उसके पास से लिया है उसे वापस दे दे।"

वह बोली, "देव! मैंने इसके पास से कुछ नहीं लिया है।" ब्राह्मण ने कहा, "मैंने तिवाचा धराकर अपनी जान का आधा तुझे दिया है, वही तू मुझे लौटा दे।" बाद में राजा के डर से तीन बार कहकर 'तेरी जान पीछे लौटाती हूं' ऐसा कहते ही स्त्री की जान निकल गई। पीछे राजा ने चकित होकर कहा, "यह क्या ?" इस पर ब्राह्मण ने उसे अपनी पूरी दास्तान सुनाई। इसलिए मैं कहता हूं कि "जिसके लिए मैंने अपना कुल छोड़ा, अपना आधा जीवन हार गया, वह मुझे छोड़ती है। कौन आदमी स्त्रियों का विश्वास कर सकता है ?"

बन्दर ने फिर कहा, "एक बड़ी अच्छी कहानी सुनी जाती है।

"स्त्रियों के मांगने पर मनुष्य क्या नहीं देता और क्या नहीं करता ? घोड़ा न होने पर भी वह घोड़े जैसा हिनहिनाता है तथा पर्व न होने पर भी सिर मुंडाता है।"

मगर ने कहा, "यह कैसे ?" बन्दर कहने लगा—

नन्द और वररुचि की कथा

"प्रख्यात बल और पौरुष से युक्त, अनेक राजाओं के मुकुट की किरणों से जिसका पादपीठ रंग जाता था, शरद्-ऋतु के चन्द्रमा के समान जिसका यश था, ऐसा समुद्र तक पृथ्वी का स्वामी नन्द नाम का राजा था। सब शास्त्रों और तत्वों को समझने वाला उसका मंत्री वररुचि था। प्यार की लड़ाई में उसकी स्त्री उससे कुपित हो गई। अपनी प्यारी पत्नी को उसने मनाने का बहुत यत्न किया, पर वह खुश न हुई। पति ने कहा, "भद्रे! जिस तरह तू खुश हो वही कह, मैं करूंगा।" इस पर उसने धीरे-धीरे कहा, "यदि तू सिर मुंड़ाकर मेरे पैरों पर गिरे तो मैं प्रसन्न हो जाऊंगी।" उसके ऐसा करने पर वह प्रसन्न हो गई।

नन्द की स्त्री उसी तरह गुस्से होकर उसके मनाने पर भी नहीं मानती थी। राजा ने कहा, "भद्रे! तेरे बिना मैं क्षण भी जी नहीं सकता। तेरे पैरों पर गिरकर मैं तुझे मनाऊंगा।" उसने कहा, "अगर मैं तेरे मुंह

में दहाना लगाकर और पीठ पर चढ़कर तुझे दौड़ाऊं और तू घोड़े की तरह हिनहिनाए तो मैं खुश हो जाऊंगी।" राजा ने ऐसा ही किया।

सवेरे सभा में बैठे हुए राजा के पास वररुचि आया। उसे देखकर राजा ने पूछा, "अरे वररुचि! किस पर्व में तुमने अपना सिर मुंडाया?" उसने जवाब दिया—

"स्त्रियों के मांगने पर मनुष्य क्या नहीं देता और क्या नहीं करता? घोड़ा न होने पर भी वह घोड़े जैसा हिनहिनाता है। पर्व न होने पर भी वह सिर मुंडाता है।

इसलिए अरे दुष्ट मगर! तू भी नन्द और वररुचि की तरह स्त्री के कहने में हो गया है। हे भद्र! तूने आकर मुझे मारने का विचार किया, पर तेरी बकवाद के कारण वह भेद प्रकट हो गया। अथवा ठीक ही कहा है कि

"मैना और सुग्गे अपनी बकवाद से ही बंधते हैं पर बगुले नहीं फंसते। इसलिए चुप रहने से ही सब काम ठीक हो जाता है।"

अथवा कहा है कि

"बाघ के चमड़े से ढका हुआ गधा छिपाया हुआ भयंकर रूप दिखलाते हुए रक्षा करने पर भी बात से ही मारा गया।"

मगर बोला, "यह कैसे?" बन्दर कहने लगा—

गधे और धोबी की कथा

"किसी नगर में शुद्धपट नाम का एक धोबी रहता था। उसके पास एक ही गधा था। वह भी घास बिना बहुत ही कमजोर हो गया था। उस धोबी ने एक समय वन में घूमते हुए एक मरा बाघ देखा। उसे देखकर उसने सोचा, "यह बड़ा अच्छा हुआ। गधे को इस बाघ का चमड़ा पहनाकर रात में जौ के खेत में छोड़ दूंगा, जिससे इसे बाघ जानकर खेत के रखवाले बाहर न निकलेंगे।" उसके ऐसा करने के बाद गधा मनमानी तरह से जौ खाता था और सवेरे धोबी उसे अपने घर ले आता था। इस तरह कुछ समय बीतने पर वह मोटा-ताजा हो गया और उसे अस्तबल ले जाने

में काफी मेहनत पड़ने लगी। एक दिन वह मतवाला दूर से ही गधी का रेंकना सुनकर ऊंचे सुर से रेंकने लगा। इस पर खेत के रखवालों ने उसे वाघ के चमड़े में गधा जानकर लाठी, तीर, और पत्थरों से मार डाला।

इसलिए मैं कहता हूं कि "वाघ के चमड़े से ढका हुआ गधा भयंकर रूप दिखाते हुए रक्षा करने पर भी वात से ही मारा गया।"

मगर के साथ जब वह वात कर रहा था उसी वीच में एक जलचर ने आकर मगर से कहा, "अरे मगर! अनशन करती हुई तेरी स्त्री तेरे देर करने पर प्रीत टूटने के डर से मर गई।"

विजली गिरने की तरह उसकी वातें सुनकर अत्यंत व्याकुल होकर मगर रोता हुआ कहने लगा, "अरे! मुझ अभागे पर यह कैसी विपत्ति आ पड़ी। कहा है कि

"जिसके घर में माता और मीठा वोलने वाली पत्नी नहीं है, उसे वन में चला जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए वन और घर एक समान है।

इसलिए मित्र! तू मुझे क्षमा कर। मैं तेरा अपराधी हूँ। अव मैं उसके वियोग से आग में जल मरूंगा।"

यह सुनकर हंसकर वन्दर ने कहा, "अरे! मैं पहले से ही जानता था कि तू स्त्री के वश में है और उससे जीता गया है, अव मुझे उसका पूरा विश्वास हो गया। अरे वेवकूफ! आनंद में भी तू क्यों दुखी है? ऐसी स्त्री के मरने पर तो तुझे खुशी मनानी चाहिए। कहा है कि

"जो पत्नी दुष्ट आचरण की हो, और जिसे हमेशा कलह भाता हो, उसे चतुर आदमियों को पत्नी के रूप में दारुण जरा जानना चाहिए।

"इसलिए इस दुनिया में जो अपनी भलाई चाहता हो उसे हर कोशिश से स्त्रियों का नाम भी छोड़ देना चाहिए।"

"उसके भीतर जो होता है वह जीभ पर नहीं होता। जो जीभ पर होता है उसे वह वाहर नहीं निकालती। वह जो वोलती है वह

करती नहीं। स्त्रियों का स्वभाव ही विचित्र है!

"झूठे ज्ञान से नितम्बिनी स्त्री को सुन्दरी जानकर जो उसके पास जाता है, ऐसा आदमी दिये में पतंगे की तरह जल जाता है।

"जवान स्त्रियां गुंजाफल की तरह स्वाभाविक रीति से ही भीतर जहर से भरी और बाहर से सुन्दरी होती हैं।

"डंडे से मारने पर अथवा हथियार से टुकड़े करने पर, चीजें भेंट देने पर और प्रशंसा करने पर भी स्त्रियां वश में नहीं आतीं।

"यह सब बात रहने दो, स्त्रियों की दूसरी तुच्छता की बात ही क्या करनी! अपने से पैदा पुत्र को भी गुस्से से वे मार डालती हैं।

"मूर्ख आदमी रूखी युवती में स्नेह-सम्भार को, उसकी कठोरता में मिठास की, और उसकी नीरसता में रस की कल्पना करता है।"

मगर बोला, "अरे मित्र! यह तो ठीक है,पर मैं क्या करूं? मेरे ऊपर तो दो आफतें आ पड़ी हैं। एक तो मेरा घर बरबाद हुआ और दूसरे तेरे जैसे मित्र से खटपट हुई। अथवा अभाग्यवश ऐसा ही होता है।

कहा भी है कि

"जितनी मेरी चतुराई है, उससे दुगुनी तेरी है, पर तेरा जार अथवा पति इन दोनों में से एक भी बाकी नहीं रहा। अरी नंगी स्त्री, अब तू क्या देखती है।"

बन्दर बोला, "यह कैसे?" मगर कहने लगा —

खेतिहर की स्त्री, धूर्त और सियारिन की कथा

"किसी नगर में एक किसान पति और पत्नी रहते थे। अपने पति के बूढ़े होने से उस खेतिहर की स्त्री की तबीयत हमेशा दूसरे में लगी रहती थी और इसलिए स्थिर होकर वह घर में नहीं बैठती थी, केवल दूसरे आदमियों की खोज में इधर-उधर घूमा करती थी। एक दिन दूसरे के धन हड़पने वाले किसी ठग ने उसे देखा और अकेले में उससे कहा कि "सुभगे! मेरी स्त्री मर

गई है, तुझे देखकर मुझे कामवेग हुआ है, इसलिए मुझे रति-दक्षिणा दे।" इस पर वह बोली, "हे सुभग, अगर ऐसी बात है तो ठीक है। मेरे पति के पास बहुत धन है। बुढ़ापे से वह चल भी नहीं सकता। उसका धन लेकर मैं आती हूं, जिससे तेरे साथ दूसरी जगह जाकर मनमानी मौज उड़ाऊंगी।" उसने कहा, "मुझे भी यह ठीक लगता है। सवेरे तू इस जगह जल्दी से आना, जिससे किसी अच्छे नगर में जाकर तेरे साथ मैं जीवन का सुख ले सकूं।" "ऐसा ही हो," कहकर और प्रतिज्ञा करके हँसती हुई वह स्त्री अपने घर जाकर रात में अपने पति के सो जाने पर सब मालमता लेकर सवेरे निश्चित स्थान पर जा पहुँची। धूर्त भी उसे आगे करके चाल बढ़ाता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चल दिया।

दो योजन चलने के बाद उन्हें एक नदी मिली। उसे देखकर धूर्त ने सोचा, "ढलती जवानी वाली इस स्त्री को लेकर मैं क्या करूंगा? शायद कोई पीछे से आ जाय तो फिर गजब हो जायगा। मैं केवल इसका मालमता लेकर चल दूं।" यह निश्चय करके उसने उस स्त्री से कहा, "प्रिय! यह नदी मुश्किल से पार की जा सकती है इसलिए मैं यह धन उस पार रखकर फिर लौट आता हूं। इसके बाद तुझे अकेले पीठ पर चढ़ाकर मैं सुख से पार उतार दूंगा।" उसने कहा, "सुभग! ऐसा ही कर।" यह कहकर उसने उसे अपना सब मालमता सौंप दिया। बाद में उस धूर्त ने कहा, "प्रिये! अपने पहने कपड़े भी तू मुझे दे दे जिससे पानी में तू बेखटके चल सके।" उसने वैसा ही किया और वह धूर्त मालमता और कपड़े के जोड़े लेकर अपने मनचाहे देश को चला गया।

वह स्त्री अपने गले पर दोनों हाथ रखकर नदी के किनारे उत्सुकता से बाट जोहती हुई जब तक बैठी रही तब तक कोई सियारिन मुंह में मांस का लोथड़ा लिये हुए वहां आ पहुंची। जब तक वह नदी के किनारे देखे उसी समय एक बड़ा मच्छ पानी से बाहर निकला। उसे देखकर मांस का लोथड़ा छोड़कर वह सियारिन उसकी तरफ दौड़ी। उसी बीच में मांस के लोथड़े को देखकर एक गिद्ध उसे लेकर आकाश में उड़ गया। सियारिन को देखकर मच्छ भी पानी में घुस गया। अपना श्रम व्यर्थ जाता देखकर

तथा गीध की ओर देखती हुई सियारिन से उस नंगी औरत ने हँसकर कहा,

"गीध मांस का टुकड़ा लेकर उड़ गया। मत्स्य पानी में घुस गया। मत्स्य और मांस खोकर हे सियारिन ! अब तू क्या देखती है ?"

यह सुनकर पति, धन, और जार से अलग हुई उस स्त्री का मजाक उड़ाते हुए सियारिन ने कहा—

"जितनी मेरी चतुराई है उससे दुगुनी तेरी है, पर तेरा जार अथवा पति इन दोनों में से एक भी बाकी नहीं रहा। अरी नंगी स्त्री! अब तू क्या देखती है ?"

मगर जब यह कह रहा था उसी बीच में एक दूसरे जलचर ने आकर निवेदन किया, "अरे! एक दूसरे बड़े मगर ने तेरे घर पर कब्जा कर लिया है।" यह सुनकर मन में दुःखित होकर उसे घर से निकालने का उपाय सोचते हुए वह बोला, "अरे मेरा भाग्य तो देखो,

"मित्र मेरा शत्रु हुआ, मेरी औरत मरी, और मेरा घर दूसरे ने दबा लिया। अब क्या होगा ?

अथवा यह ठीक ही कहा है कि

"चोट लगने पर उसमें ठोकर लगती है, अन्न खत्म हो जाने पर भूख बढ़ती है। आपत्ति में दुश्मनी बढ़ती है। विधाता के वाम हो जाने पर आदमियों पर यही आफत पड़ती है।

अब मैं क्या करूं ? कैसे उसके साथ लड़ूं ? अथवा साम से ही उसे समझाकर घर से निकाल बाहर करूं ? अथवा भेद या दान का प्रयोग करूं? अथवा अपने मित्र बन्दर से पूछूं। कहा है कि

"पूछने लायक और हितैषी बड़ों से पूछकर जो काम करता है उसे किसी काम में विघ्न नहीं पड़ता।"

ऐसा सोचकर जामुन के पेड़ पर बैठे हुए उस बन्दर से उसने फिर पूछा, "हे मित्र ! मेरी बदनसीबी तो देख। एक दूसरा बलवान मगर मेरा घर भी दाब बैठा है। इसलिए मैं तुझसे पूछने आया हूं कि क्या करूं। साम इत्यादि उपायों में से यहां कौनसा उपाय लगेगा।" बन्दर बोला, "अरे

कृतघ्न ! मेरे मना करने पर भी तू फिर क्यों मेरे पीछे आता है। मैं तेरे जैसे मूर्ख को नसीहत नहीं दे सकता।" यह सुनकर मगर ने कहा, "मुझ अपराधी के पहले प्रेम की याद करके तू मुझे उपदेश दे।" वन्दर ने कहा, "मैं तुझसे कुछ नहीं कहूंगा। अपनी स्त्री की वात में आकर तू मुझे समुद्र में फेंकने के लिए ले गया था। यह विलकुल अच्छी वात नहीं थी। यद्यपि स्त्री सव लोगों से भी प्यारी होती है, फिर भी स्त्री की वात में आकर मित्र और वंधुओं को समुद्र में नहीं फेंका जाता। अरे मूर्ख! वेवकूफी से तेरा नाश होगा यह मैंने पहले ही कह दिया। जैसे

"अच्छे आदमियों की कही वातों का जो मोह से अनादर करता है, वह सिंह से जैसे ऊंट मारा गया उसी तरह मारा जाता है।"

मगर ने कहा, "यह कैसे ?" वन्दर कहने लगा —

घण्टे और ऊंट की कथा

"किसी नगर में उज्ज्वलक नाम का रथकार रहता था। गरीवी से वहुत तंग आकर उसने सोचा कि 'हमारे घर की दरिद्रता को धिक्कार है। नगर के सव लोग अपने-अपने काम में लगे हैं, लेकिन मेरे लिए इस नगर में कोई काम नहीं है। सव लोगों के चौमंजिले घर हैं मेरे ही नहीं। फिर इस वढ़ई-गिरी से क्या फायदा ?" यह सोचकर वह अपने देश से निकल गया। वन में थोड़ी दूर चलने के वाद उसे गुफा की तरह भयंकर वन में सूर्यास्त के समय अपने दल से छूटी हुई और प्रसव-वेदना से पीड़ित एक ऊंटनी दीख पड़ी। उस गर्भवती ऊंटनी को पकड़कर वह अपने डेरे की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचकर उसने उस ऊंटनी को रस्सी से वांधा, फिर एक तीखी कुल्हाड़ी लेकर उसके लिए पत्ते लाने के लिए वह एक पहाड़ी जगह चला गया। वहां से वहुत-सी कोमल और नई कोपलें काटकर और उन्हें अपने सिर पर लाकर उसके सामने डाल दिया। उसने भी उन्हें धीरे-धीरे खाया। इस तरह रात-दिन खाने से वह मोटी-ताजी हो गई और उसका वच्चा भी एक वड़ा ऊंट हो गया। वढ़ई रोज ऊंटनी के दूध से अपने घर वालों का पालन-पोषण करता था।

प्यार से उस वढ़ई ने ऊंट के वच्चे के गले में एक घंटा वांध दिया।

इसके वाद रथकार ने सोचा, "अव दूसरे छोटे काम करने से क्या फायदा? जव इस ऊंटनी को पालने से मेरे कुटुम्ब का पालन-पोषण भली भांति हो जाता है फिर दूसरे काम से क्या प्रयोजन?" यह सोचकर घर आकर उसने अपनी स्त्री से कहा, "यह रोजगार वहुत फायदे का है। अगर तेरी राय हो तो किसी महाजन से कुछ रुपये लेकर मैं ऊंट खरीदने गुजरात जाऊं। जव तक मैं ऊंटनी खरीदकर लौट न आऊं तव तक तू इन दोनों जानवरों की रक्षा करना।" इसके वाद गुजरात जाकर और एक दूसरी ऊंटनी खरीदकर वह घर लौटा। वहुत कहने से क्या, ऐसा करके उसने वहुत से ऊंट और ऊंटों के वच्चे इकट्ठे कर लिए। ऊंटों का वड़ा दल वनाकर उसने एक रखवाला रख लिया। उसे वह साल में एक ऊंट का वच्चा तनख्वाह में देता था और सुवह-शाम उसे ऊंटनी का दूध पीने को देता था। इस तरह से वह वढ़ई ऊंटनी और उनके वच्चों का व्यापार करते हुए सुखी रहने लगा। ऊंट के वच्चे नगर के पास वाले उपवन में चरने के लिए जाते थे तथा मन-भर कोमल लताएं खाकर और वड़े तालाव में पानी पीकर शाम के समय खेलते-कूदते घर आते थे। पहले वाला ऊंट का वच्चा अभिमान से उनके पीछे आकर मिल लेता था। इस पर ऊंट के वच्चों ने कहा, "अरे! यह वेवकूफ ऊंट हमारे दल से पीछे रहकर घंटा वजाता हुआ आता है। अगर कभी किसी दुष्ट जानवर के मुंह लग जायगा तो अवश्य उसकी मृत्यु हो जायगी।"

उस वन में घूमते-फिरते किसी सिंह ने घंटा वजना सुनकर देखा तो ऊंटनी के वच्चों का दल चला जा रहा था। उनमें से एक पीछे रहकर खेलते-कूदते और लताएं चरते ठहर गया। तव तक दूसरे ऊंट के वच्चे पानी पीकर अपने घर चले गए। उसने वन से निकलकर चारों ओर देखा फिर भी उसे रास्ते का पता नहीं चला। दल से अलग होकर धीरे-धीरे चिल्लाता हुआ जव वह कुछ दूर आगे वढ़ा तो उसी आवाज का पीछा करते हुए सिंह भी उस पर वार करने के लिए आ गया। जव वह ऊंट पास में आया तो सिंह ने झपट कर उसका गला पकड़ लिया और उसे मार डाला।

इसलिए मैं कहता हूँ कि "अच्छे आदमियों की कही बातों का जो मोह से अनादर करता है, वह सिंह से जैसे ऊंट मारा गया, उसी तरह मारा जाता है।"

यह सुनकर मगर ने कहा, "भद्र !

"नीति शास्त्र में चतुर लोग कहते हैं कि सात कदम साथ चलने से मित्रता होती है। इसलिए दोस्ती को आगे करके मैं जो कहता हूं वह सुन।

"उपदेश देने वाले और हित चाहने वाले लोगों को इस लोक में और परलोक में दुःख नहीं होता।

इसलिए उपदेश देकर मुझ कृतघ्न पर कृपा कर। कहा भी है —

"उपकारियों के प्रति जो अच्छा व्यवहार करता है, उसके अच्छेपन का क्या गुण ? अपकारियों पर जो कृपा करता है उसे ही अच्छे लोग साधु कहते हैं।"

यह सुनकर बन्दर ने कहा, "भद्र ! अगर यही बात है तो तू उसके साथ जाकर लड़ाई कर। कहा भी है —

"लड़ाई लड़ने वालों के दो अपूर्व गुण होते हैं उसे तू जान; मरने पर तुझे स्वर्ग मिलेगा और जीने पर घर और यश।"

"अच्छे लोगों से झुककर, वीर को भेद से, नीच को थोड़ा दे-लेकर, और बराबरी की ताकत वाले को पराक्रम से जीतना चाहिए।"

मगर ने कहा, "यह कैसे ?" बन्दर कहने लगा —

सियार और सिंह की कथा

"किसी वन में महाचतुरक नाम का एक सियार रहता था। एक समय वन में एक मरा हुआ हाथी उसे मिला। उसके आसपास वह चक्कर मारने लगा, पर उसका मोटा चमड़ा वह चीर न सका। उसी समय इधर-उधर घूमता हुआ कोई सिंह वहां आ गया। उसे आया देखकर सियार ने जमीन से सिर लगाकर, हाथ जोड़कर और गिड़गिड़ाकर उससे कहा, "स्वामी !

में आपका रखवारा हूं, यहां ठहरकर आपके लिए इस हाथी की रक्षा कर रहा हूं, इसलिए मालिक आप इसे खाइये।" उसे नमते देखकर सिंह ने कहा, "अरे! दूसरे से मारा गया शिकार मैं कभी नहीं खाता। कहा है कि

"दुःखों से घिरकर भी कुलीन नीति का रास्ता नहीं लांघते; जैसे वन में पशुओं का मांस खाने वाले सिंह भूखे रहने पर भी घास नहीं चरते।

इसलिए मैंने यह मरा हाथी तुझे बख्श दिया।" यह सुनकर सियार ने खुशी-खुशी कहा, "मालिकों को नौकरों से ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए। कहा भी है कि

"अन्तिम अवस्था आ जाने पर भी शुद्धता के वश होकर मालिक अपने गुण नहीं छोड़ता। शंख आग में जलकर भी बाहर निकले फिर भी उसकी सफेदी नहीं जाती।"

सिंह के जाने पर एक बाघ आया। उसे भी देखकर सियार ने सोचा, "अरे! उस बदमाश को तो मैंने खुशामद करके टाला फिर इसको कैसे टालूं? यह बलवान है इसलिए बिना कपट के यह सीधा नहीं जा सकता। कहा भी है—

"जहां साम और दाम का प्रयोग न हो सके वहां कपट करना चाहिए, क्योंकि वह लोगों को वश में ला सकता है।

सब गुणों से भरे-पूरे रहने पर भी मनुष्य कपट से बंध जाता है। कहा है कि

"स्वच्छ, अविरुद्ध, गोल तथा अत्यन्त सुन्दर होने पर भी मोती भीतर से भेदा जाकर बिंध जाता है।"

इस तरह सोचकर बाघ के सामने जाकर अभिमान से कंधों को ऊंचा करके सियार ने जल्दी से कहा, "मामा, आप क्यों मौत के मुंह में घुस आए? इस हाथी को सिंह ने मारा है। मुझे इसकी रखवाली करने में लगाकर वह नदी में नहाने गया है। जाते-जाते उसने मुझे हुक्म दिया है, यदि कोई आवे तो चुपके-चुपके मुझे उसकी खबर देना, जिससे मैं यह जंगल बिना बाघ का कर दूं। इसके पहले एक बाघ ने मुझसे मारे गए एक हाथी को खाकर जूठा कर दिया था, उस दिन से मैं बाघों के प्रति बहुत नाराज हूं।" यह सुनकर

डरे हुए वाघ ने कहा, "अरे भांजे ! मेरी जान वचा, तू सिंह के आने के वहुत देर वाद तक भी मेरी वात मत कहना।" यह कहकर वह भाग गया।

वाघ के चले जाने पर एक चीता आया। उसे भी देखकर सियार ने सोचा, "यह चीता मजवूत दाँतों वाला है। इसके द्वारा हाथी का चमड़ा चिरे, ऐसा मैं करूंगा।" यह निश्चय करके उसने चीते से कहा, "अरे भांजे! तू इतने दिनों के वाद क्यों दिखलाई दिया? तू भूखा-सा लगता है। तू मेरा मेह-मान है। सिंह से मारा गया यह हाथी यहां पड़ा है। उसकी आज्ञा से मैं इसकी रखवाली कर रहा हूं। जव तक सिंह न आवे इसी वीच तू इस हाथी का मांस खाकर और तृप्त होकर भाग जा।" उसने कहा, "मामा! अगर यही वात है तो मुझे मांस खाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि जीने पर तो सैकड़ों सुख मिलते हैं। कहा है कि

"जो खाया जा सके, जो खाने के वाद पचे, और पचने के वाद गुण-कारक हो, वही अपनी भलाई चाहने वाले आदमी को खाना चाहिए।

इसलिए वही खाना चाहिए जो खाने लायक हो; इसलिए मैं यहां से भागता हूं।" सियार ने कहा, "अरे अधीर! तू निश्चिन्त होकर खा, उसके आने की खवर मैं दूर से ही दे दूंगा।" उसके ऐसा कहने पर चीते ने हाथी के चमड़े को चीर दिया। यह जानकर सियार ने कहा, "अरे भांजे ! तू भाग, सिंह आ गया।" यह सुनकर चीता जान लेकर भागा। उसके किये हुए छेद से जव तक वह मांस खाये तव तक क्रोध से भरा हुआ एक दूसरा सियार वहां आ गया। उसे अपने वरावरी का जानकर पहले वाले सियार ने यह श्लोक पढ़ा—

"अच्छे लोगों से झुककर, वीर को भेद से, नीच को थोड़ा दे-लेकर और वरावर ताकत वाले को पराक्रम से जीतना चाहिए।"

वाद में उसने उसे अपने तेज दांतों से चीरकर भगा दिया और वहुत दिनों तक हाथी का मांस खाता रहा।

इसलिए तू अपने सजातीय दुश्मन को लड़ाई में हराकर भगा दे, नहीं

तो वाद को जड़ पकड़ लेने पर वह तुझे मार देगा। कहा भी है—

"गायों में सम्पत्ति की संभावना करनी चाहिए, ब्राह्मणों में तप की संभावना करनी चाहिए और स्त्रियों में चपलता की संभावना करनी चाहिए तथा जाति से भय की संभावना करनी चाहिए।

और भी

"वहां अच्छे-अच्छे खाते हैं, नगर की स्त्रियों का आचार-विचार शिथिल है, पर विदेश में एक ही दोष है कि अपने जाति वाले वहां विरुद्ध होते हैं।" मगर ने कहा, "यह कैसे?" बन्दर कहने लगा—

कुत्ते की कथा

"किसी नगर में चित्रांग नाम का एक कुत्ता रहता था। वहां बहुत दिनों तक अकाल पड़ा। अन्न के अभाव से कुत्तों की जाति धीरे-धीरे मरने लगी। इस पर चित्रांग भूखा-प्यासा भय से परदेश चला गया। वहां किसी नगर के एक गृहस्थ की घरनी की लापरवाही से वह प्रतिदिन घर में घुसकर तरह-तरह के भोजन करके तृप्त हो जाता था। पर घर के बाहर निकलने पर दूसरे कुत्ते उसे चारों ओर से घेरकर दांतों से उसके शरीर पर चारों ओर घाव कर देते थे। इस पर उसने सोचा, "अपना देश ही अच्छा है, जहां अकाल पड़ने पर भी सुख से तो रह सकते हैं; वहां कोई लड़ाई तो नहीं करता, इसलिए मैं अपने नगर को लौट जाऊंगा।" यह सोचकर वह अपने नगर को चल पड़ा। परदेश से उसे लौटा जानकर उसके सब रिश्तेदारों ने उससे पूछा, "अरे चित्रांग! हमसे परदेश की बातें कह। वह देश कैसा है? लोगों का व्यवहार कैसा है? भोजन कैसा मिलता है? तेरे साथ लोगों का व्यवहार कैसा था?" वह बोला, "परदेश का हाल-चाल मैं क्या कहूं,

"वहां अच्छे-अच्छे खाने हैं, नगर की स्त्रियों का आचार-विचार शिथिल है, पर विदेश में एक ही दोष है कि अपनी जाति वाले वहां विरुद्ध होते हैं।"

मगर भी यह सुनकर मरने-मारने की ठानकर और बन्दर को

आज्ञा लेकर अपने घर की ओर गया। वहां अपने घर में घुसे जलचर के साथ युद्ध करके उसे मारकर वह सुख से रहने लगा। अथवा ठीक ही कहा है कि

"विना पुरुषार्थ के मिली हुई लक्ष्मी अगर सुखपूर्वक भोगी जा रही है तो उससे क्या? भाग्यवश मिली हुई घास तो बूढ़ा बैल भी खा लेता है।"

अपरीक्षितकारक

"जैसा नाई ने किया वैसा बिना ठीक-ठीक देखे, जाने, सुने या परखे मनुष्य को काम नहीं करना चाहिए।"

इस बारे में ऐसा सुना गया है —

दाक्षिणात्य जनपद में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर है। वहां मणिभद्र नाम का सेठ रहता था। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष संबंधी काम करते-करते अभाग्य से उसका धन समाप्त हो गया। धन छीजने से उसका अपमान होने लगा और इसलिए उसे बहुत दुःख हुआ। एक बार रात में सोये-सोये वह विचार करने लगा, "इस दरिद्रता को धिक्कार है। कहा भी है कि

"शील, पवित्रता, क्षमा, देने की आदत, मीठा स्वभाव, अच्छे खानदान में जन्म, ये सब गुण गरीब आदमी को नहीं शोभते।

"मान, दर्प, विज्ञान, विलास अथवा सुबुद्धि ये सब चीजें जैसे धन खत्म हो जाता है वैसे ही चली जाती हैं।

"जिस तरह वसन्त की हवा लगने से जाड़े की शोभा प्रतिदिन कम होती जाती है उसी तरह बराबर कुटुम्ब के पालन की चिंता से बुद्धिमानों की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

"घी, नोन, तेल, चावल, कपड़े, और ईंधन की बराबर चिंता करने से

बुद्धिमान पर गरीब पुरुष की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

"बिना तारे के जैसे आकाश, जैसे सूखा हुआ तालाब, श्मशान की तरह भयंकरता, गरीब का घर सुन्दर होने पर भी रूखा लगता है।

"जिस तरह पानी के बुलबुलों का बराबर पानी में पैदा होकर उसी में समा जाने से पता नहीं लगता, उसी तरह गरीब साधारण आदमी के रहने पर भी उसका पता नहीं लगता।

"अच्छे कुल वाले और चतुर सुजन को छोड़कर लोग कुल-चातुर्य और शीलविहीन पर धनवान मनुष्य की कल्पतरु की तरह रोज खुशामद करते हैं।

"इस संसार में पहले किये हुये अच्छे काम भी कुछ काम के नहीं होते। बड़े खानदान में पैदा हुए विद्वान् पुरुष भी जिसके पास जब पैसा होता है तब उसकी दासता करते हैं।

"अपनी तबीयत से गरजते हुए समुद्र को भी लोग 'यह हल्का है' यह नहीं कहते। इस संसार में धनवान लोग जो कुछ भी करते हैं वह सभी अलज्जाकर माना जाता है।"

यह निश्चय करके उसने फिर सोचा, "मैं अनशन करके अपने प्राण दे दूंगा, तकलीफ में जीने से क्या फायदा?" यह सोचकर वह सो गया। बाद में सपने में पद्मनिधि ने जैन साधु के रूप में उसे दर्शन देकर कहा, "अरे सेठ! वैराग्य मत कर, तेरे पुरखों द्वारा उपार्जित मैं पद्मनिधि हूं। इसी रूप में मैं सवेरे तेरे घर आऊंगी वहां तू डंडे से मेरे सिर पर चोट करना जिससे मैं सोने की होकर कभी नहीं छीजूंगी।"

सवेरे उठकर सपने की याद आते ही वह चिंता रूपी चक्र पर चढ़ गया। "अरे! यह सपना सच्चा होगा कि झूठा नहीं जानता। यह जरूर झूठा होगा, क्योंकि मैं बराबर धन की ही चिंता किया करता हूं। कहा भी है कि

"बीमार, शोकातुर, चिंताग्रस्त, कामार्त और मतवाले का देखा सपना बेमतलब का होता है।"

इसी बीच उसकी स्त्री ने पैर धोने के लिए किसी नाई को बुलाया। उसी समय पहले कहे अनुसार एक जैन साधु सहसा प्रकट हुआ। सेठ ने उसे देखकर खुशी-खुशी पास में पड़ी हुई लकड़ी उसके सिर पर मारी। वह भी सोना होकर उसी दम जमीन पर गिर गया। सेठ ने उसे छिपाकर घर में रख दिया और नाई को संतोष देकर कहा, "मेरा दिया हुआ यह धन और वस्त्र तू ले। किसी से यह बात मत कहना।"

नाई भी अपने घर जाकर सोचने लगा, "अवश्य ही सब नंगे सिर पर लाठी मारने से सोने के हो जाते हैं। इसलिए मैं सवेरे बहुत से नंगों को बुलाकर डंडे से मारूंगा, जिससे मुझे बहुत सा सोना मिल जाय।" इस प्रकार सोचते हुए बड़े ही कष्ट से उसकी रात कटी। बाद में बड़े सवेरे उठकर वह एक बड़ा डंडा लेकर जैन विहार में जाकर, जिनेन्द्र की तीन बार प्रदक्षिणा करके, जमीन पर घुटने टेककर, मुंह के सामने दुपट्टे का एक छोर रखकर ऊंचे स्वर से यह श्लोक पढ़ने लगा —

"केवल ज्ञानी जिनों की जय हो, जिनका चित्त काम-विकारों के पैदा होने के लिए ऊसर के समान है।

और भी

"वही जीभ है जो जिन की स्तुति करती है, वही चित्त है जो जिन में लगता है और जो हाथ उनकी पूजा करते हैं वे ही प्रशंसनीय हैं।

और भी

"ध्यान का बहाना करके किस स्त्री का सोच करता है? एक क्षण के लिए आंख खोलकर कामबाण से पीड़ित जनों को देखकर त्राता होते हुए भी तू रक्षा नहीं करता। तुझसे बढ़कर निर्दयी आदमी दूसरा कौन है? मार की पत्नियों ने जलन से जिसने इस तरह कहा ऐसे जिन-बुद्ध तेरी रक्षा करें।"

इस तरह स्तुति करने बाद उसने मुख्य जैन साधु के पास जाकर, जमीन पर घुटने टेककर कहा, "आपको नमस्कार है।" ऐसा कहते हुए धर्म बढ़ने का

आशीर्वाद लेकर,व्रतों का उपदेश प्राप्त करके तथा अपने दुपट्टे की गांठ वांधकर उस नाई ने विनयपूर्वक कहा, "भगवन् ! आज आप सव मुनियों के साथ मेरे घर विहार कीजिए।" जैन मुनि ने कहा , "अरे श्रावक! धर्म जानते हुए भी तू ऐसा क्यों कहता है ? क्या हम ब्राह्मण जैसे हैं कि हमें न्योता देता है ? काल योग्य परिचर्या लेकर सदा घूमते हुए भक्त श्रावक को देखकर हम उसके घर जाते हैं और उसके घर केवल जान वचाने के लिए थोड़े प्रमाण में भोजन करते हैं। इसलिए चल दे , फिर ऐसी वात मत कहना ।" यह सुनकर नाई ने कहा, "मैं आपका धर्म जानता हूं। आप लोगों को वहुत से श्रावक वुलाते हैं। मैंने पुस्तकों के वेष्ठन के लिए वहुत से कीमती कपड़े तैयार कराए हैं तथा पुस्तकों को लिखने के लिए लेखकों को धन देने के लिए वहुत सा धन इकट्ठा किया है। इस वारे में आपको जैसा जंचे वैसा कीजिए।"

इसके वाद नाई अपने घर चला गया और वहां पहुंचकर खैर का एक डंडा तैयार करके दरवाजे के दोनों पल्ले लगाकर डेढ़ वजने के समय फिर एक वार विहार के आगे आकर खड़ा होगया और गुरु की प्रार्थना करके क्रम से वाहर निकले हुए यतियों को अपने घर लाया। वे सव भी कपड़ों के लालच से भक्त और परिचित श्रावकों को छोड़कर खुशी मन से उस नाई के पीछे चले। अथवा ठीक ही कहा है कि

"अकेले घर छोड़ने वाले,करपात्री और दिगम्बर भी इस लोक में
लालच् से खिच जाते हैं, यह तमाशा तो देखो।

"वूढ़े होने पर मनुष्य के वाल पक जाते हैं, वूढ़े आदमी के दांत भी
कमजोर हो जाते हैं और आंख—कान भी। उसमें एक लालच ही
जवान होती जाती है।"

इसके वाद उसने उन सवको घर में ले जाकर चुपके से दरवाजा वन्द करके लाठी की मार से उनके सिर तोड़ डाले। मार पड़ने पर कुछ तो मर गए। जिनके सिर टूट गये वे चिल्ला-चिल्लाकर दुहाई देने लगे। उनका रोना-चिल्लाना सुनकर कोतवाल ने सिपाहियों से कहा, "अरे! इस नगर में वड़ा शोर-गुल क्यों मच रहा है ? इसलिए जल्दी जाओ।" वे सव उसकी आज्ञा से

उसके साथ जल्दी से नाई के घर पहुंचे। वहां उन्होंने लहू से सने शरीर वाले इधर-उधर भागते हुए नंगे जैन साधुओं को देखकर पूछा, "अरे! यह क्या बात है?" उन सबने उस नाई की बात कही। इस पर सिपाही नाई को बांधकर बचे-खुचे जैन साधुओं के साथ उसे कचहरी (धर्माधिष्ठान) लाए।

न्यायाधीशों ने नाई से पूछा, "अरे! तूने यह कैसा कुकृत्य किया? उसने कहा, "मैं क्या करूं, मणिभद्र सेठ के घर मैंने ऐसी घटना देखी थी।" और उसने मणिभद्र के घर जो देखा था सो सब कहा। इस पर मणिभद्र को बुलाकर न्यायाधीशों ने कहा, "हे सेठ! तुमने एक जैन साधु को क्यों मारा?" उसने जैन साधु वाली घटना ब्यौरेवार उन्हें बतला दी। इस पर उन्होंने कहा, "इस दुष्ट नकलची नाई को फांसी पर चढ़ा दो।" ऐसा होने के बाद उन्होंने कहा—

"जैसा नाई ने किया वैसा बिना ठीक देखे, जाने, सुने या परखने के बिना मनुष्य को काम नहीं करना चाहिए।

अथवा ठीक ही कहा है कि

"बिना सोचे-समझे कोई काम नहीं करना चाहिए। सोच-समझकर ही काम करना चाहिए, नहीं तो जैसे ब्राह्मण को नेवले के लिए दुःख हुआ वैसा ही बाद में दुःख होगा।"

मणिभद्र ने कहा, "यह कैसे?" न्यायाधीश कहने लगे—

ब्राह्मण और नेवले की कथा

"किसी नगर में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी ने एक लड़के को जन्म दिया। उसी दिन एक नेवली बच्चा देकर मर गई। बच्चों को प्यार करने वाली ब्राह्मणी ने दूध पिलाकर और बदन की मालिश करके उस नेवले को अपने लड़के की तरह पाला-पोसा, पर वह इसलिए उसका विश्वास नहीं करती थी कि कहीं अपने जाति-दोष से वह लड़के को नुकसान न पहुंचावे। ऐसा उसे मन में भय था। कहा भी है कि

"दुर्विनीत, बदसूरत, मूर्ख, बदचलन और दुष्ट पुत्र भी आदमियों

का दिल प्रसन्न करने वाला होता है ।

"लोग कहते हैं 'चंदन ठंडा है,' पर पुत्र के अंगों का स्पर्श चंदन से भी अधिक ठंडा है ।

"लोग पुत्र के लाड़-प्यार की जितनी इच्छा करते हैं उतनी मित्र के, पिता के, हितेच्छु के, और पालक के सम्बंध की परवाह करते ।"

एक समय खाट पर अपने वच्चे को सुलाकर पानी का घड़ा लेकर ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा, "ब्राह्मण! मैं पानी लेने तालाव पर जाती हूं, तुम इस न्योले से वच्चे को वचाना।" उसके जाने के वाद ब्राह्मण भी घर सूना छोड़कर भीख मांगने कहीं निकल गया। इसी वीच भाग्यवश वहां एक काला सांप विल से निकला। न्योले ने अपने स्वभाव-शत्रु के पास जाकर भाई को वचाने के लिए लड़ाई की और उसके टुकडे-टुकड़े कर डाले। इसके वाद खून लगे मुंह से अपना काम वताने के लिए खुशी-खुशी वह माता के पास गया। उसके मुंह में खून लगा देखकर शंकित चित्त से 'इस दुरात्मा ने मेरे लड़के को खा लिया,' यह मानकर गुस्से से उसके ऊपर ब्राह्मणी ने जल का घड़ा पटक दिया। इस तरह न्योले को मारकर रोती-कलपती जव वह घर आई तो अपने वच्चे को सोता देखा और पास में सांप के टुकड़े-टुकड़े देखकर अपने लड़के के मरने-जैसे अफसोस में वह अपना सिर पीटने लगी। इसके वाद जव दान-दक्षिणा लेकर ब्राह्मण वापस लौटा तो उसे देखकर पुत्र-शोक से दुखी ब्राह्मणी वकने लगी, "अरे लालची! लालच के मारे तूने मेरा कहा नहीं किया, इसलिए अव पुत्र की मृत्यु-जैसे वृक्ष का फल खा।

अथवा ठीक ही कहा है कि

"वड़ा लालच नहीं करना चाहिए, लालच छोड़ना ही चाहिए, अत्यन्त लालची के सिर के ऊपर चक्का घूमता है।"

ब्राह्मण ने कहा, "वह कैसे?" वह कहने लगी —

चक्रधर की कथा

"किसी शहर में चार ब्राह्मण-पुत्र आपस में मित्र होकर रहते थे। गरीवी

से उन चारों ने आपस में सलाह की, "इस गरीबी को धिक्कार है। कहा भी है कि

"बाघ और हाथियों से भरे, बिना आदमियों के और कांटों से भरे वन में रहना, घास की सेज और पहनने के लिए छाल ही अच्छे हैं, पर सगे-सम्बंधियों के बीच गरीब होकर रहना ठीक नहीं।

और भी

"जिसके पास धन न हो, ऐसा आदमी अगर मालिक की भरपूर सेवा करे तो भी वह उससे द्वेष करता है, सद्बांधव उसे एकाएक छोड़ देते हैं, उसके गुण नहीं शोभते, पुत्र उसे छोड़ देते हैं, आपत्तियां बढ़ती हैं, अच्छे कुल की स्त्री भी उसकी ठीक तरह से सेवा नहीं करती, आदमी के नीतिकल्पित पराक्रम भी अमित्र हो जाते हैं।

"आदमी बहादुर, खूबसूरत, सुभग अथवा हाजिर-जवाब हो, चाहे उसे शस्त्रों और शास्त्रों का ज्ञान मिला हो, पर बिना धन के उसे इस लोक में मान नहीं मिल सकता।

"वही समूची इन्द्रियां हैं, वही नाम है, वही अकुंठित बुद्धि है, वही वचन है, यह सब होते हुए भी धन की गरमी से अलग होने पर आदमी एक क्षण में कुछ-का-कुछ हो जाता है, यह बात बड़ी विचित्र है।

इसलिए धन पैदा करने हमें जाना चाहिए इस तरह आपस में सलाह करके स्वदेश, नगर और बंधु-बांधवों से भरे अपने घर छोड़कर चल पड़े। अथवा ठीक ही कहा गया है कि

"इस संसार में चिंता से जिस आदमी की अक्ल घबरा गई हो वह सत्य छोड़ देता है, साथियों से अलग हो जाता है तथा अपनी माता और जन्म-भूमि को छोड़कर मनचाहे परदेश को जाता है।"

इस तरह घूमते-घामते वह अवंती पहुंचे। वहां सिप्रा नदी के जल में नहाकर और महाकाल को प्रणाम करके जब वे लौट रहे थे तो भैरवानन्द नामक योगी उनके सामने आ गए। ब्राह्मण-विधि से उनका सम्मान

करके वे उनके साथ उनके मठ गये। वहां उन्होंने उनसे पूछा, "तुम सव कहाँ से आ रहे हो ? कहां जा रहे हो ? तुम्हारा प्रयोजन क्या है ?" उन सवने कहा, "हम सव सिद्धियात्रिक हैं। हमारा निश्चय है कि हम वहीं जायेंगे जहां या तो धन मिलेगा या मौत। कहा भी है —

"मौका मिलने पर अपने को जोखिम में डालकर साहसी पुरुष दुष्प्राप्य और मनचाहा धन पैदा करते हैं।

और भी

"पानी कभी आसमान से गिरता है, खोदने पर वह पाताल से मिलता है, इसलिए भाग्य का भरोसा नहीं करना चाहिए। पुरुषार्थ ही वलवान है।

"पुरुष के पुरुपार्थ से ही पूरी-पूरी कामयावी होती है, और जिसे 'दैव' कहा है, वह अदृश्य नायक पुरुष का गुण है।

"साहसिक वड़े लोगों से भय पाते हैं पर अपने प्राणों को तिनके जैसा मानते हैं। अहो! उदार पुरुपों का यह आचरण अद्भुत है।

"अपने अंगों को विना दुःख दिये इस संसार में तरह-तरह के सुख नहीं मिलते। मधु को मारने वाले विष्णु ने समुद्र मथने से ही थकी अपनी वाहुओं से लक्ष्मी का आलिंगन किया था।

"पानी में रहकर जो सदा चार महीने सोता है, ऐसे विष्णु के नर-सिंह हो जाने पर भी उनकी पत्नी चंचला क्यों न हो ?

"पुरुष जव तक पुरुषार्थ नहीं करता तव तक उसे परमात्मा नहीं मिल सकता ; जव सूर्य तुला राशि में आता है तव वह इस संसार में वादलों पर विजय पाता है।

इसलिए आप हमसे धन पाने का कोई उपाय यथा विवर-प्रवेश, शाकिनी साधन, श्मशान सेवन, महामांस वेचना (आदमी का गोश्त) और साधकवर्ति इत्यादि उपायों में से कहिए। सुना गया है कि आप में अपूर्व शक्ति है। कहा भी है —

"वड़े ही वड़े काम कर सकते हैं ; समुद्र विना कौन वड़वानल धारण

कर सकता है ।"

भैरवानन्द ने भी उनकी सफलता के लिए अनेक उपायों से चार सिद्ध वर्तियां बनाकर उन्हें दीं और कहा, "हिमालय की ओर जाओ। वहां पहुंचकर जहां बत्ती गिरे वहां बिना शक खजाना मिलेगा । वहां खोदकर तया गड़ा धन लेकर वापस लौट आना ।" ऐसा करने के बाद जाते हुए उनमें से एक के हाथ से वत्ती गिर गई। उस जगह खोदने से तांबे की जमीन मिली। इस पर उसने कहा, "भरपूर तांबा ले लो।" दूसरों ने कहा, "अरे बेवकूफ ! इससे क्या होगा ? बहुत सा तांबा भी हमारी गरीबी दूर नहीं कर सकेगा, इसलिए उठ हम आगे चलें।" उसने कहा, "आप सब जाइए मैं आगे नहीं बढ़ूंगा।" यह कहकर भरपूर तांबा लेकर पहला लौट गया और बाकी तीनों आगे चले। थोड़ी दूर चलने के बाद अगुवा के हाथ से वत्ती गिर गई। खोदने पर वहां चांदी की जमीन निकली। उसने खुश होकर कहा, "खूब चांदी ले लो, अब आगे नहीं चलना चाहिए।" उन दोनों ने कहा, "अरे पीछे तांबे की जमीन, और आगे चाँदी की जमीन है, इसलिए इसके आगे जरूर सोने की जमीन होगी। अधिक होने पर भी इससे गरीबी तो मिटेगी नहीं। इसलिए हमें आगे जाना चाहिए।" यह कहकर दोनों आगे को चले गए और उनका साथी अपनी ताकत के अनुसार चांदी इकट्ठा करके लौट गया। उन दोनों के जाते-जाते एक के हाथ से बत्ती गिर पड़ी। खुश होकर जब उसने जमीन खोदी तो सोने की जमीन मिली। उसने कहा, "मनमाना सोना ले लो। सोने से अच्छी कौनसी चीज हो सकती है ?" उस साथी ने कहा, "अरे मूर्ख! क्या तू नहीं जानता कि पहले तांबा, उसके बाद चांदी और उसके बाद सोना मिला ? इसके बाद जरूर जवाहरात होंगे जिनमें एक के मिलने से गरीबी दूर हो जायगी। इसलिए उठ, हमें आगे बढ़ना चाहिए। यह बोझ ढोने से क्या फायदा ?" उसने कहा, "तू जा। मैं यहां ठहरकर तेरी बाट जोहूंगा।"

ऐसी बात तय हो जाने पर वह अकेला आगे बढ़कर गर्मी के सूरज की रोशनी से संतप्त और प्यास से व्याकुल सिद्धि मार्ग को भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। बाद में भटकते-भटकते लोहू-लुहान शरीर वाले एक आदमी

को जिसके सिर पर चक्र घूम रहा था, देखा। उसने जल्दी से उसके पास जाकर उससे पूछा, "तू कौन है? तेरे सिर पर यह चक्र क्यों चक्कर खा रहा है? अगर कहीं पानी मिले तो वता?" उसके ऐसा कहने पर वह चक्र उसका सिर छोडकर व्राह्मण के सिर आ धमका। व्राह्मण ने कहा, "यह क्या?" उसने जवाव दिया, "मेरे सिर पर भी वह ऐसे ही सवार हो लिया था।" व्राह्मण ने कहा, "फिर यह मेरे सिर से कैसे उतरेगा; मुझे वड़ी तकलीफ हो रही है।" उसने जवाव दिया, "तेरी तरह जव कोई दूसरा सिद्धिवर्ति लेकर यहां आकर तुझसे वात करेगा तो उसके सिर चढ़ जायगा।" व्राह्मण ने कहा, "तू यहां कितने दिनों तक था।" उसने जवाव दिया, "इस समय दुनिया में कौन राजा है?" व्राह्मण ने जवाव दिया, "वीणावत्स राजा।" उसने कहा, "कालसंख्या तो में नहीं जानता, पर जिस समय राम राज्य कर रहे थे उसी समय गरीवी से परेशान होकर सिद्धिवर्ति लेकर में इस रास्ते से आया था। वहां एक दूसरे आदमी कों सिर पर चक्र लिये देखकर मैंने पूछा और इसीलिए मेरी यह हालत हो गई।" व्राह्मण ने कहा, "भद्र! इस हालत में तुझे खाना-पीना कैसे मिलता था?" उसने कहा, "भद्र! कुवेर ने अपना खजाना गायव होते देखकर सिद्धों को ऐसी धमकी दी है, इसलिए यहां कोई सिद्ध नहीं आता। जो कभी आ जाता है तो वह भूख, प्यास, नींद, वुढ़ापे और मृत्यु से अलग होकर केवल इसी तरह दुःख उठाता है। मुझे आज्ञा दे मैं छूट गया हूं, अव में अपने घर जाऊंगा।" यह कहकर वह चला गया।

व्राह्मण के देर लगने पर सुवर्णसिद्धि उसे खोजते हुए उसके पैरों के निशानों के पीछे-पीछे चलता-चलता एक वन में पहुंचा और उसे लोहू-लुहान शरीर से, सिर पर एक चक्र को घूमते और रोते-चिल्लाते, देखा। उसके पास जाकर उसने आंखें भीगी करके कहा, "भद्र! यह सव कैसे हुआ?" उसने कहा, "अभाग्य से।" उसने कहा, "इसका कारण कहो।" उसके ऐसा पूछने पर उसने चक्र का सव हाल-चाल कह दिया। यह सुनकर उसकी निन्दा करते हुए उसने कहा, "अरे! वहुत मना करने पर भी तूने मेरी वात नहीं मानी। अव क्या किया जाय? विद्वान और कुलीन भी मूर्ख होते हैं। अथवा

ठीक ही कहा है —

"विद्या नहीं पर बुद्धि बड़ी गिनी जाती है; वेवकूफ आदमी सिंह में जान डालने वालों की तरह मारे जाते हैं।"

चक्रधर ने कहा, "यह कैसे ?" सुवर्णसिद्धि कहने लगा —

सिंह को जिलाने वाले ब्राह्मण की कथा

"किसी शहर में चार ब्राह्मण मित्रतापूर्वक रहते थे। उनमें से तीन शास्त्रज्ञ पर मूर्ख थे। एक शास्त्र न पढ़े हुए भी बुद्धिमान था। एक बार मित्रों ने आपस में सलाह की, "उस विद्या से क्या गुण जिससे विदेश जाकर और वहाँ के राजा को प्रसन्न करके धन न पैदा किया जा सके ? इसलिए हमें पूरब की ओर जाना चाहिए।" कुछ रास्ता चलने के बाद उनमें से सबसे बड़े ने कहा, "हम चारों में से चौथा मूर्ख पर बुद्धिमान है। विद्या बिना केवल बुद्धि से राजा से दान नहीं मिल सकता, इसलिए हम अपने पैदा धन से इसे कुछ न देंगे। उसे घर जाने दो।" इस पर दूसरे ने कहा, "हे सुबुद्धि! विद्या न होने से तू अपने घर लौट जा।" इस पर तीसरे ने कहा, "हमारे लिए ऐसा करना ठीक नहीं। हम सब लड़कपन से आपस में खेले-कूदे हैं। इसलिए उसे साथ चलने दो, हमारे पैदा किये धन में वह बराबर का हिस्सेदार होगा। कहा है कि

"जो लक्ष्मी केवल वहू की तरह हो और जिसका पथिक मामूली वेश्या की तरह उपभोग न कर सके उससे क्या ?

और भी

"यह मेरा है यह दूसरे का है, ऐसा छोटी तबीयत वाले मानते हैं। उदार चरित्र वालों के लिए तो सारी दुनिया कुटुम्ब की तरह है।

इसलिए इसे भी साथ चलने दो।"

इस तरह चलने पर रास्ते के जंगल में उन्होंने सिंह की हड्डियां पड़ी देखीं। इस पर एक बोला, "आज मैं अपनी विद्या की ताकत आजमाऊँगा।

यह जीव मरा पड़ा है, अपनी विद्या के प्रभाव से हम इसे जिला देंगे।" इस पर एक ने उत्सुकता से हड्डियां इकट्ठी कीं, दूसरे ने चमड़ा, मांस और लहू पैदा किया। जब तीसरा उसमें जान फूंकने जा रहा था तो सुबुद्धि ने मना किया, "अरे ठहर ! तू कहता है यह सिंह बन रहा है। अगर तू इसे जिला देगा तो वह सबको मार डालेगा।" उसने जवाब दिया, "धिक्कार है तुझे, मूर्ख! मैं अपनी विद्या को विफल कैसे कर सकता हूं ?" इस पर उसने कहा, "फिर मेरे पेड़ पर चढ़ने तक ठहर।" ऐसा करने पर जब सिंह के जान पड़ी तो उसने उठकर तीनों को मार डाला और सुबुद्धि पेड़ से नीचे उतरकर अपने घर चला गया।

इसीलिए मैं कहता हूं कि "विद्या नहीं, बुद्धि बड़ी गिनी जाती है; बेवकूफ आदमी सिंह में जान डालने वालों की तरह मारे जाते हैं।

और भी कहा है —

"सब शास्त्रों में कुशल होने पर भी लोकाचार न जानने वाले मूर्ख पंडितों की तरह सबकी हँसी होती है।"

चक्रधर ने कहा, "यह कैसे ?" उसने कहा—

मूर्ख पंडित की कथा

"एक नगर में चार पंडित मित्रतापूर्वक रहते थे। एक बार आपस में उनकी राय हुई, "अरे! हम सबको परदेश जाकर विद्या से धन पैदा करना चाहिए।" दूसरे दिन सब ब्राह्मण आपस में निश्चय करके विद्या पढ़ने कन्नौज चले गए। वहाँ पाठशाला में जाकर वे पढ़ने लगे। इस तरह बारह वर्षों तक ध्यान लगाकर पढ़ने से वे पंडित हो गए। इस पर चारों ने आपस में मिलकर कहा, "हम सारे सब विद्याओं में पंडित हो गए, अब उपाध्याय से पूछकर हमें घर चलना चाहिए।" यह कहकर सब ब्राह्मण उपाध्याय की आज्ञा लेकर अपने पोथी-पत्रों के साथ निकल पड़े। चलते-चलते दो रास्ते आ जाने पर वे बैठ गए। उनमें से एक बोला, "हमें किस रास्ते से चलना चाहिए?" इसी बीच में उस शहर में कोई बनिया मर गया था और उसे

श्मशान ले जाने के लिए बहुत से लोग जा रहे थे। उन चारों में से एक ने पुस्तक देखी, उसमें लिखा था, 'महाजन जिस रास्ते जाते हों वही मार्ग है।' "बस हमें महाजनों के रास्ते पर चलना चाहिए।" महाजनों के साथ जाते हुए उन्होंने श्मशान में कोई गधा देखा। दूसरे ने पोथी खोली तो उसमें लिखा था—

"उत्सव, दुःख, भुखमरी, दुश्मन की चढ़ाई, राजद्वार और श्मशान में जो साथ देता है, वही असली मित्र है।

इसलिए यह गधा हमारा असली दोस्त है।" इस पर कोई उससे गले मिलने लगा और कोई उसके पैर धोने लगा। इतने में चारों ओर देखते हुए उन पंडितों को कोई ऊंट दिखाई दिया। उन्होंने कहा, "यह क्या है?" इस पर तीसरे ने पोथी खोलकर कहा—

"धर्म की चाल तेज होती है; इसलिए यह धर्म है।"

चौथे ने कहा—

"मित्र को धर्म से जोड़ देना चाहिए, इसलिए अपने इस मित्र को हमें धर्म से मिला देना चाहिए।" बाद में उन्होंने गधे को ऊंट के गले से बांध दिया। यह बात किसी ने धोबी तक पहुंचा दी और जब वह उनकी मरम्मत करने पहुंचा तो वे भागे। थोड़े रास्ते चलने के बाद उन्हें एक नदी मिली। उसके बीच एक पलास के पत्ते को तैरते देखकर एक पंडित ने कहा—

"यह आने वाला पत्ता हमें पार उतार देगा।"

यह कहकर जैसे ही वह पत्ते पर गिरकर नदी में बहने लगा तो उसे बहते हुए देखकर एक दूसरे ने उसके बाल पकड़कर कहा—

"सर्वनाश होने पर पंडित आधा छोड़ देते हैं और आधे से काम चलाते हैं, क्योंकि सर्वनाश दुस्सह है।"

यह कहकर उसने उसका सिर काट डाला।

चलते-चलते वे किसी गांव में पहुंचे। देहाती उन्हें न्योता देकर अपने घर ले गए। एक को खाने में घी-खांड से बनी फेनी मिली। यह सोचकर

पंडित ने कहा—'लम्बी तानने वाला खत्म हो जाता है।' यह कहकर खाना छोड़कर वह चल दिया।

दूसरे को मैदे की वड़ी रोटी मिली। उसने कहा—'खूव लम्बा-चौड़ा वहुत नहीं जीता!' वह भी खाना छोड़कर भागा।

तीसरे को भोजन में वड़े खाने को मिले। उसनें भी कहा—'छिद्रों में वड़े अनर्थ होते हैं।'

इस तरह वे तीन भूखे-प्यासे पंडित लोगों से हँसे जाकर अपने देश को लौट गए।"

स्वर्णसिद्धि ने कहा, "लोक-व्यवहार न जानते हुए मेरे मना करने पर भी तू नहीं ठहरा, इसीलिए तेरी यह हालत हुई है। इसलिए मैं कहता हूं कि

"सब शास्त्रों में कुशल होने पर भी लोकाचार न जानने से मूर्ख पंडितों की तरह सवकी हँसी होती है।"

यह सुनकर चक्रवर ने कहा, "यह कोई सवव नहीं है। वड़े चतुर भी अभाग्य से दुःख पाते हैं और थोड़ी अक्ल वाले भी एक जगह मजे उड़ाते हैं। कहा है कि

"अरक्षित भी यदि दैव से रक्षित है तो वह वच सकता है। अगर सुरक्षित भी भाग्य का मारा हुआ है तो उसका नाश होता है। वन में छोड़ा हुआ अनाथ भी जीवित रहता है और घर में सुखपूर्वक रक्षित का भी नाश हो जाता है।"

और भी

"सौ अक्ल सिर पर चढ़ा है, हजार अक्ल लटक रहा है, हे भद्र! मैं वेचारा एकवुद्धि साफ पानी में खेल रहा हूं।"

सुवर्णसिद्धि ने कहा, "यह कैसे?" उसने कहा—

मच्छ की कथा

"किसी तालाव में शतवुद्धि और सहस्रवुद्धि नाम के दो मच्छ रहते थे।

उनकी एकवुद्धि नामक मेढक से दोस्ती हो गई। ये तीनों कभी ताल के किनारे कभी वालू पर वातचीत का मजा लेकर फिर पानी में घुस जाते थे। एक समय जव वे वातचीत कर रहे थे तव हाथों में जाल तथा सिर पर वहुत सी मछलियां लादे हुए कुछ धीवर सूरज डूवने के समय आए। उस तालाव को देखकर उन्होंने आपस में सलाह की, "इस तालाव में वहुत मछलियां हैं और कम पानी। इसलिए सवेरे हम सव यहां आयंगे।" यह कहकर वे अपने घर वापस चले गए। मच्छ आपस में दुखी होकर सलाह करने लगे। इस पर मेढक वोला, "अरे शतवुद्धि! क्या तूने धीवर की वात सुनी? अव क्या करना चाहिए, भागना या ठहरना? जैसा करना ठीक हो वैसी ही आज्ञा कर।" यह सुनकर सहस्रवुद्धि ने हँसकर कहा, "अरे मित्र! डर मत। वात सुनने ही से कोई नहीं डरता। कहा भी है—

"सर्पों का, वदमाशों का, और खलों का मतलव नहीं गठता इसी से तो दुनिया खड़ी है।

एक तो वे यहां आयंगे ही नहीं। अगर आयंगे तो मैं अपनी चतुराई से सवको वचा लूंगा, क्योंकि मैं तरह-तरह की पानी की चालें जानता हूं।" यह सुनकर शतवुद्धि ने कहा, "अरे तूने ठीक कहा, तू सच ही सहस्रवुद्धि है। अथवा ठीक ही कहा है —

"इस संसार में चतुर के लिए कोई चीज अगम्य नहीं है, क्योंकि चाणक्य ने अपनी वुद्धि से तलवार लिये हुए नन्दों को मारा था।"

और भी

"जहां वायु और सूर्य की किरणों की गति नहीं होती वहाँ भी वुद्धिमान की वुद्धि सदा वड़ी जल्दी से घुस जाती है।

इसलिए केवल वात सुनने से ही वाप-दादों का घर छोड़ा नहीं जा सकता। कहा भी है

"खराव जगह भी जहां अपना जन्म हुआ हो वहां पुरुष को जो सुख मिलता है, वह सुख सुन्दर चीजों को छूने से मनोहर वने हुए स्वर्ग में भी नहीं मिलता।"

मेढक ने कहा, "भलेमानसो! मुझ भागने वाले की एक ही वुद्धि है इसलिए मैं अपनी पत्नी के साथ किसी दूसरे तालाव को जाता हूं।" यह कहकर वह मेढक रात में किसी दूसरे तालाव में चला गया। धीवरों ने सवेरे आकर वुरे-भले जलचर, मच्छ, कछुए, मेढक, केकड़े इत्यादि पकड़ लिए। अपनी स्त्रियों के साथ शतवुद्धि सहस्रवुद्धि ने भी भागते हुए चालों के जानने से टेढ़े मेढ़े जाकर अपने को कुछ देर तक वचाया। पर अन्त में जाल में फँसकर वे मारे गए। दोपहर में वे सव धीवर खुश होकर अपने घर लौट गए। भारी होने से एक धीवर शतवुद्धि को अपन कंधे पर डाल और सहस्रवुद्धि को लटका कर ले चला। वावली के किनारे उन्हें इस तरह ले जाते देखकर मेढक ने अपनी स्त्री से कहा —

"सौ अक्ल सिर पर चढ़ा है और हजार अक्ल लटक रहा है। हे भद्रे! मैं वेचारा एकवुद्धि साफ पानी में खेल रहा हूं।"

इसलिए मैं कहता हूं, 'सौ अक्ल सिर पर चढ़ा है और हज़ार अक्ल लटक रहा है।' केवल वुद्धि ही सव-कुछ नहीं है।" सुवर्णसिद्धि ने कहा, "ऐसा होने पर भी मित्र की वात नहीं टालनी चाहिए। तूने क्या किया? मना करने पर भी लालच और विद्या के घमंड में तू नहीं ठहरा। अथवा ठीक ही कहा है—

"मामा! तुमने खूब गाया, मेरे मना करने पर भी तू नहीं रुका। तेरे गले में यह अपूर्व मणि वँधी है जो तेरे गाने का इनाम है।"

चक्रधर ने कहा, "यह कैसे?" सुवर्णसिद्धि कहने लगा—

गवैये गधे और सियार की कथा

"किसी नगर में उद्धत नाम का एक गधा रहता था। वह हमेशा धोवी के यहां वोझ ढोकर रात में मनमानी तौर से घूमता था और सवेरे वंधने के डर से स्वयं धोवी के घर आ जाता था, तो धोवी उसे वांध देता था। रात में खेतों में घूमते हुए उसकी एक सियार से दोस्ती हो गई। वह मोटाई से वाड़ तोड़कर ककड़ी के खेत में सियार के साथ घुस जाता था और वे दोनों मनमानी

तौर से ककड़ियां खाकर सवेरे अपने घर लौट आते थे। एक दिन उस मतवाले गधे ने खेत के बीच सियार से कहा, "अरे भांजे! देख कैसी साफ रात है, इसलिए मैं गाऊंगा। बता कौनसा राग गाऊं?" उसने कहा, "मामा! ऐसा अनर्थ करने से क्या फायदा? हम दोनों चोरी करते हैं। चोरों और जारों को छिपा रहना चाहिए। कहा भी है कि

"खांसने वाले को चोरी छोड़ देनी चाहिए। ऊंघता आदमी अगर जीना चाहे तो उसे भी चोरी छोड़ देनी चाहिए। रोगी आदमी अगर जीना चाहे तो उसे जीभ का लालच छोड़ देना चाहिए।

फिर तेरे गीत में मधुर स्वर नहीं है। शंख की आवाज की तरह वह दूर से सुन पड़ता है। इस खेत के रखवाले सोए हुए हैं,वे या तो उठकर हमें बांध देंगे या मार डालेंगे। इसलिए ये अमृत समान ककडियां खा और न करने लायक काम न कर।" यह सुनकर गधा बोला, "अरे! तू वन में रहने वाला गीत का रस नहीं जानता, इसलिए ऐसा कह रहा है। कहा है कि

"शरद् ऋतु की चांदनी में और प्रियजनों के निकट होने पर गीत की झंकार धन्यजनों के कानों में ही घुसती है।"

सियार बोला, "मामा! यह तो ठीक है, पर तू गीत नहीं जानता, केवल रेंकता है। फिर अपने को नुकसान पहुंचाने वाले ऐसे गीत से क्या मतलब?" गधा बोला, "अरे मूर्ख! तुझे धिक्कार है। क्या मैं गीत नहीं जानता? उसके भेद सुन—

"सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनाएं, उनचास ताल, तीन मात्राएं और तीन लय होती हैं।

"इसके बाद यतियों के तीन स्थान, छः मुख, नौ रस, छत्तीस राग और चालीस भाव होते हैं।

"गीत के ये ८५ से अधिक अंग गिने जाते हैं और प्राचीन काल में स्वयं भरत ने इन्हें कहा है।

"देवों को भी इस लोक में गीत के सिवाय और कोई दूसरी चीज नहीं भाती। सूखे तांत के स्वर से आनन्द फैलाकर रावण ने

त्रिलोचन शंकर को प्रसन्न किया।

इसलिए हे भांजे! मुझे अनभिज्ञ कहकर तू क्यों रोकता है?" सियार ने कहा, "मामा! अगर ऐसी वात है तो मैं वाड़े के वाहर वैठकर रखवालों के ऊपर नजर रखता हूं, तू मनमानी तरह से गा।" इसके वाद गधे की आवाज सुनकर खेत के रखवाले क्रोध से दांत पीसते हुए दौड़े। गधे को देखकर लाठी से उन्होंने उसे इतना मारा कि वह जमीन पर गिर गया। इसके वाद उसके गले में ऊखल वांधकर वे सो गए। अपनी जाति के स्वभाव के अनुसार दर्द दूर हो जाने पर गधा एक क्षण में खड़ा हो गया। कहा है कि

"कुत्ते, घोड़े और विशेषकर गधे पर मार की पीड़ा एक क्षण से अधिक नहीं रहती।"

वाद में वह ऊखल लिये हुए खेत की वाड़ तोड़ता हुआ भागने लगा। उस समय सियार ने उसे देखकर दूर से मुस्कराते हुए कहा—

"मामा! तुमने खूव गाया, मेरे मना करने पर भी तू नहीं रुका। तेरे गले में यह अपूर्व मणि वंधी है जो तेरे गाने का इनाम है।"

यह सुनकर चक्रधर ने कहा, "अरे मित्र! यह ठीक है। अथवा ठीक ही कहा है—

"जिसके पास अपनी वुद्धि नहीं होती, जो मित्र का कहा नहीं करता, वह मंथर वुनकर की तरह नष्ट हो जाता है।"

सुवर्णसिद्धि ने पूछा, "यह कैसे?" वह कहने लगा—

मंथर वुनकर की कथा

"किसी शहर में मंथर नामक वुनकर रहता था। कपड़े वुनते हुए कभी उसके वुनने के काठ टूट गए। इस पर वह कुल्हाड़ी लेकर वन में काठ के लिए गया। घूमते हुए सड़क के किनारे उसने एक शिशपा का पेड़ देखा। इस पर उसने सोचा, 'यह वड़ा पेड़ दीख पड़ता है इसके काटने से वुनने के वहुत से सामान वन जायंगे।' यह सोचकर उसने उस पर कुल्हाड़ी चला दी। उस पेड़ पर किसी वृक्ष देवता का आवास था। उसने वुनकर से कहा, "अरे!

मेरा आश्रय यह पेड़ सदा रक्षा योग्य है, क्योंकि समुद्र की तरंगों को छूती हवा के झोकों के आनन्द लेकर बड़े सुख से मैं यहां रहता हूं।" बुनकर ने कहा, "अब मैं क्या करूं? बिना काठ के सामान के मेरे बच्चे भूखे मरेंगे, इसलिए आप कहीं दूसरी जगह भागिए। मैं तो इस पेड़ को काटूंगा।" देवता ने कहा, "मैं तुझसे प्रसन्न हूं। अपना मनचाहा वर मांग ले जिससे यह पेड़ बच जाय।" बुनकर ने कहा, "अगर यह बात है तो घर जाकर मैं अपने मित्रों और स्त्री से सलाह लेकर लौट आऊंगा।" देवता के 'ऐसा ही हो' कहने पर वह बुनकर खुशी-खुशी अपने घर लौटा और आगे चलकर गांव में घुसते हुए अपने मित्र नाई को देखा और उससे देवता की बात कही, "अरे मेरे दोस्त! मुझे कोई देवता सिद्ध हो गया है। बता उससे मैं क्या मांगूं? मैं यह तुझसे पूछने आया हूं।" नाई ने कहा, "भद्र! अगर ऐसी बात है तो उससे तू राज्य मांग जिससे तू राजा हो और मैं तेरा मंत्री। हम दोनों सुख भोगकर परलोक का सुख भोगेंगे। कहा भी है कि

"नित्य दानशील राजा कीर्ति पाकर उसके प्रभाव से पुनः स्वर्ग में देवताओं से होड़ करता है।"

बुनकर ने कहा, "यह बात ठीक है, फिर भी घरनी से पूछूं।" उसने कहा, "भद्र! स्त्री के साथ सलाह करना शास्त्र के विरुद्ध है, क्योंकि वे कमअक्ल होती हैं। कहा भी है कि,

"बुद्धिमानों को स्त्रियों को भोजन-वस्त्र देना, गहने देना, और ऋतुकाल में उनके साथ रति करना चाहिए; उनके साथ सलाह-मशवरा नहीं करना चाहिए।

"भार्गव का कहना है कि जहां स्त्री है, शत्रु हैं, बालकों की जहां प्रशंसा होती है, वह घर छीज जाता है।

"पुरुष जब तक अकेले में स्त्रियों की बात नहीं सुनता तभी तक वह प्रसन्न मुख वाला और बड़ों की बातों पर प्रेम करने वाला होता है।

"ये सब स्वार्थी स्त्रियां केवल अपने सुख में आसक्त होती हैं। अगर

सुख का कारण न हो तो उसे अपना पुत्र भी प्यारा नहीं होता।"

वुनकर ने कहा, "फिर भी मुझे उससे पूछना चाहिए, वह पतिव्रता है और विना उससे पूछे मैं कुछ नहीं करता।" यह कहकर जल्दी से जाकर उसने अपनी स्त्री से कहा, "प्रिये! आज मुझे एक देवता सिद्ध हो गया है, वह मन-माना वर देता है। मैं तुझसे पूछता हूं कि उससे क्या वर मॉंगूं। मेरे मित्र नाई ने कहा है कि मैं उससे राज्य मॉंगूं।" उसने कहा, "नाई की क्या वुद्धि? उसकी वात मानकर तू काम न कर, कहा भी है—

"वुद्धिमान चारण, वंदी, नाई, वालक और भिक्षुओं के साथ वुद्धि-
मानों को सलाह नहीं करनी चाहिए।

अथवा और राज्य की व्यवस्था यह वड़ी दुखदायिनी है। संधि, विग्रह, यान, क्योंकि आसन, संशय और द्वैवीभाव कारणों से वह आदमी को कभी सुख से रहने नहीं देती। क्योंकि

"जैसे ही राज्याभिषेक होता है वैसे ही वुद्धि दुःखों में लग जाती
है। राजाओं के अभिषेक के समय घड़े जल के साथ ही मानो
आपत्ति गिराते हैं।

और भी

"राज्य के लिए राम का वन-गमन, पांडवों का वनवास, यादवों
की मृत्यु, राजा नल का राज्य छोड़ना, सौदास की ऐसी अवस्था
(मनुष्य भक्षक की तरह दशा), सहस्रार्जुन का मारा जाना
तथा रावण की हँसाई देखकर राज्य की इच्छा नहीं करना
चाहिए।

"जिस राज्य के लिए भाई, पुत्र तथा उसके सम्वंधी भी राजा को
मारना चाहते हैं ऐसे राज्य को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।"

वुनकर ने कहा, "तूने ठीक कहा। अव वता कि उससे क्या मांगूं?" उसने कहा, "तू हर दिन एक कपड़ा वुनता है, उससे घर का खर्च चलता है। इसलिए तू उससे दो दूसरे हाथ और एक सिर मांग जिससे आगे पीछे दोनों तरफ कपड़ा वुन सके। एक कपड़े से तो पहले की तरह घर का खर्च चलेगा

और दूसरे के दाम से खास काम चलाना। इससे तेरी जाति में वाहवाही होगी और तू अच्छी तरह से रहेगा। और तुझे इस लोक और परलोक दोनों ही के सुख मिलेंगे।" यह सुनकर उसने खुशी-खुशी कहा, "साधु! पतिव्रते साधु! तूने बहुत ही ठीक कहा। मैं यही करूंगा। यही मेरा निश्चय है।"

इसके बाद उसने देवता से जाकर प्रार्थना की, "यदि आप मुझे मनचाहा वर देना चाहते हैं तो दो हाथ और एक सिर दीजिए।" उसके इतना कहते ही उसी दम उसके दो सिर और चार बांहें हो गईं। खुशी-खुशी जब वह अपने घर आ रहा था तब लोगों ने उसे राक्षस मानकर लाठियों और पत्थरों से मार डाला।

इसलिए मैं कहता हूं कि "जिसके पास अपनी बुद्धि नहीं होती, जो मित्र का कहना नहीं करता, वह मंथर बुनकर की तरह नष्ट हो जाता है।"

चक्रधर ने कहा, "यह ठीक है, सब लोग अश्रद्धेय आशारूपी पिशाचिनी के पास जाकर हँसी के पात्र होते हैं। अथवा किसी ने ठीक ही कहा है कि

"भविष्यकाल के लिए जो असंभाव्य प्रचार करता है वह सोमशर्मा के पिता की तरह पीला होकर सोता है।"

सुवर्णसिद्धि ने पूछा, "वह कैसे?" वह कहने लगा—

हवाई किले बांधने वाले कल्पित सोमशर्मा के पिता की कथा

"किसी नगर में कृपण नाम का ब्राह्मण रहता था। उसने भीख मांगे-सत्तू को खाकर बाकी से एक मटका भर दिया। उस मटके को खूंटी से टांगकर उसके नीचे अपनी खाट बिछाकर वह हमेशा एकटक देखा करता था। एक रात सोते हुए वह सोचने लगा, "जब यह घड़ा सत्तू से भर जायगा तब अकाल पड़ने पर इससे सौ रुपये पैदा करूंगा। उससे मैं दो बकरियां खरीदूंगा। उनके छः छः महिने पर ब्याने से बकरियों का झुंड खड़ा हो जायगा। इन बकरियों से गायें खरीदूंगा तथा गायों से भैंसे आदि और भैंसों से घोड़ियां। घोड़ियों के ब्याने पर घोड़े पैदा होंगे। उनके बेचने से बहुत सा सोना मिलेगा। सोने से चौमंजिला मकान बनवाऊंगा। इसकेबाद कोई ब्राह्मण मेरे घर आकर

मुझे अपनी जवान और रूपवती कन्या देगा। उससे मुझे लड़का होगा। उसका नाम मैं सोमशर्मा रखूंगा। उसके घुटनों के वल चलने लायक होने पर मैं पुस्तक पढ़ता हुआ कहूंगा, 'इसे घोड़साल के पीछे ले जाओ, जिससे मैं पढ़ सकूं।' इसके बाद सोमशर्मा मुझे देखकर अपनी मां की गोद से चलता हुआ घोड़ों के खुरों के पास से होता हुआ मेरी ओर आयगा, इस पर मैं गुस्से से ब्राह्मणी से कहूंगा, 'अपने बच्चे को पकड़।' घर के काम में लगे रहने से वह मेरी वात न सुनेगी। इस पर मैं उठकर उसे एक लात मारूंगा।" इसी ध्यान में लगे हुए ब्राह्मण ने एक लात मारी जिससे घड़ा फूट गया और सत्तुओं से उसका शरीर पीला पड़ गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि, "भविष्य काल के लिए जो असंभाव्य प्रचार करता है, वह सोमशर्मा के पिता की तरह पीला होकर सोता है।" सुवर्णसिद्धि ने कहा, "ठीक। इसमें क्या दोष है? सब लोग लोभ से पीड़ित रहते हैं। कहा भी है कि

"जो लालच से काम करता है और नतीजे के वारे में नहीं सोचता,
चन्द्र राजा की तरह उसकी हँसी होती है।"

चक्रवर ने पूछा, "यह कैसे?" उसने कहा—

चन्द्र राजा और वन्दरों के दल की कथा

"किसी नगर में चन्द्र नामक राजा रहता था। उसके लड़के वन्दरों के दल के साथ रोज खिलवाड़ करते हुए उन्हें खाना-पीना देकर पुष्ट करते थे। वन्दरों का सरदार शुक्र, वृहस्पति और चाणक्य के समान वुद्धिमान होने से सवको नीति पढ़ाता था। उस राजमहल में छोटे राजकुमारों के चढ़ने लायक मेढ़ों का एक दल था। उनमें से एक मेढ़ा चटोरपन से रात-दिन रसोई में जो कुछ भी देखता घुसकर खा जाता था। रसोईदार भी काठ, मिट्टी, कांसे, जिस किसी के वने वरतन पाते थे उससे उसे मारते थे। उस वन्दरों के सरदार ने यह देखकर सोचा, "रसोईदारों और मेढों की लड़ाई की वला वन्दरों के सिर आयेगी। इस मेढ़े को अन्न का स्वाद लग

गया है और गुस्सेवर रसोईदार जो कुछ पाते हैं उससे इसे मारते हैं। कोई चीज न मिलने पर अगर वे जलती लकड़ी से मारेंगे तो उससे मारा यह मेढा आप-से-आप जल उठेगा। जलते हुए वह अस्तवल की ओर भागेगा और फूस से भरा अस्तवल जल उठेगा। फिर घोड़े भी आग से जलने लगेंगे। शालिहोत्र ने भी यह कहा है कि वन्दर की चरवी से घोड़ों की जलन शांत हो सकती है। ऐसा ही होगा इसमें संदेह नहीं," यह सोचकर अकेले में सब वन्दरों को बुलाकर उसने कहा—

"जहां मेढ़े के साथ रसोईदारों की लड़ाई होती है, इसमें शक नहीं कि वहां वन्दरों का नाश होगा।

"जिस घर में नित्य अकारण कलह हो उस घर को, जिन्हें अपनी जान प्यारी हो, छोड़ देना चाहिए।

और भी

"कलह से महल खतम हो जाते हैं, गाली-गलीज से मित्रता, बुरे राजा से राष्ट्र, और बुरे काम से राजाओं का यश।

सवके खतम होने के पहले ही हमें यह महल छोड़कर वन में चल देना चाहिए।" उसकी अविश्वसनीय वात सुनकर अभिमानी बंदरों ने हंसकर कहा, "अरे बुढ़ापे से आपकी अक्ल मारी गई है, जिससे आप ऐसा कहते हैं।" कहा भी है—

"विशेपकर वच्चे और वूढ़े का मुंह विना दांत का होता है, नित्य लार वहती है और वुद्धि उमड़ती नहीं।

हम सव राजपुत्रों के हाथों से दिये गए अमृत के समान, स्वर्ग के समान तरह-तरह के खानों को छोड़कर जंगल में कसैले, कड़वे, तीखे, नमकीन और रूखे फलों को नहीं खायंगे।" इस पर आंखें भरकर उसने कहा, "अरे मूर्खो! तुम सव इस सुख का नतीजा नहीं जानते? पारे के रसास्वादन की तरह यह सुख तुम्हारे लिए जहर हो जायगा। मैं स्वयं अपने कुल का नाश नहीं देख सकता, इसलिए मैं अभी जंगल में चला जाता हूं। कहा भी है—

"वे धन्य हैं जो मित्र को दुःख में पड़े, अपने ही जगह में दुःख, देश-

भंग और खानदान की सफाई नहीं देखते।"

यह कहकर सबको छोड़कर वन्दरों का वह सरदार जंगल में चला गया। उसके जाने के दूसरे ही दिन वह मेढ़ा रसोई में घुसा। रसोईदार को जब कुछ नहीं मिला तो उसने अवजली लकड़ी से उसे मारा जिससे उसके शरीर में आग लग गई और वह मिमियाता हुआ पास में ही घोड़ों के अस्तवल में घुस गया। जमीन पर वहुत घास-फूँस पड़े रहने से और उस पर उसके लोटने से चारों ओर आग लग गई, जिससे कितने ही घोड़ों की आंखें फूट गईं और वे मर गए, और कितनों ने अपने वंधन छुड़ाकर अवजले शरीर से इधर-उधर हिनहिनाते हुए लोगों की भीड़ में गड़वड़ी डाल दी। इससे राजा ने दुखी होकर घोड़ों के वैद्यों को वुलाकर पूछा, "वताइए, इन घोड़ों की दाह शांत करने का क्या कोई तरीका है?" शास्त्रों को देखकर उन्होंने जवाव दिया, "इस वारे में भगवान् शालिहोत्र ने कहा है—

"जैसे सूर्योदय से अंधेरा नष्ट हो जाता है उसी तरह वन्दरों की चरवी से आग की दाह से घोड़ों में उत्पन्न दोष नष्ट हो जाते हैं।"

दाह-दोष से मरने के पहले ही इनका इलाज करवाइए।"

यह सुनकर राजा ने सव वन्दरों को मरवाने की आज्ञा दे दी। वहुत कहने से क्या? वे वन्दर लाठी, पत्थर तथा दूसरे हथियारों से मार डाले गए।

वन्दरों का वह सरदार पुत्र, पौत्र, भतीजों, भांजों इत्यादि का मारा जाना सुनकर वड़ा दुखी हुआ और खाना-पीना छोड़कर एक वन से दूसरे वन में घूमने लगा। उसने सोचा, "किस तरह मैं उस राजा की वुराई का वदला लूं। कहा है कि

"दूसरों द्वारा किये गए अपने कुल का अपमान जो डर अथवा स्वार्थ से सहन करता है उसे पुरुषाधम जानना चाहिए।"

प्यास से व्याकुल वह वूढ़ा वन्दर घूमता हुआ कमल से भरे एक तालाव पर पहुंचा। वहां जव उसने आंखें गड़ाकर देखा तो उसे पता लगा कि वन-चरों के पैरों के निशान उस तालाव में जाते तो हैं पर निकलते नहीं। इस पर उसने सोचा, "अवश्य ही यह दुष्ट जलचर का घर है, इसलिए कमल की नाल

से मैं दूर से ही जल पीऊंगा।" उसके ऐसा करने पर तालाब के बीच से गले में रत्नमाला पहने हुए एक राक्षस निकलकर उससे बोला, "अरे! जो तालाब में घुसता है वह मेरा खाना हो जाता है। तुझसे बढ़कर कोई धूर्त नहीं जो इस तरह पानी पीये। मैं तुझसे खुश हूं। अपनी मनचाही बात मांग।" बन्दर ने कहा, "तू कितना खा सकता है?" राक्षस ने कहा, "सौ, हजार, लाख, जितने भी पानी में घुसें मैं उन्हें खा सकता हूं। बाहर तो सियार भी मुझे हरा सकता है।" बन्दर ने पूछा, "किसी राजा के साथ मेरी बड़ी दुश्मनी है। अगर तू मुझे यह रत्नमाला दे तो मैं सपरिवार राजा को बातों में भुलवाकर और लालच दिखलाकर तालाब में घुसाऊंगा।" उसकी विश्वसनीय बात सुनकर उसने उसे रत्नमाला देकर कहा, "अरे मित्र! जैसा ठीक हो वैसा करो।" बन्दर को रत्नमाला गले में पहने लोगों ने इधर-उधर घूमते देखकर पूछा, "अरे! बंदरों के सरदार, तुम इतने दिनों तक कहां थे, तुम्हें यह रत्नमाला जो तेज सूरज को भी मात करती है, कहां मिली?" बन्दर ने कहा, "किसी जंगल में कुबेर ने एक गुप्त तालाब बनाया है। उसमें रविवार के दिन सूरज उगने पर जो नहाता है, कुबेर की कृपा से वह ऐसी रत्नमाला पहनकर बाहर निकलता है।" राजा ने यह सुनकर बन्दर को बुलाकर पूछा, "अरे सरदार! क्या यह सच है कि रत्नमालाओं से भरा कोई तालाब है?" बन्दर ने कहा, "स्वामी! मेरे गले में पड़ी माला ही इस बात का विश्वास दिलाती है। अगर रत्न माला चाहता है तो मेरे साथ किसी को भेज, मैं उसे दिखला दूं।" यह सुनकर राजा ने कहा, "अगर यही बात है तो मैं खुद अपने साथियों के साथ चलूंगा, जिससे बहुत सी मालाएं मिलें।" बन्दर ने कहा, "ऐसा ही कर।"

इसके बाद राजा के साथ रत्नमालाओं के लालच में उसकी पत्नियां और नौकर चल पड़े। राजा ने डोली पर चढ़कर बन्दर को भी प्रेम से गोद में ले लिया। अथवा ठीक ही कहा है —

"हे तृष्णा देवी, तुझे नमस्कार है, धनवानों को भी तू खराब काम में लगाती है और दुर्गम स्थानों में घुमाती है।

और भी

"सौ का मालिक हजार चाहता है, हजार का मालिक लाख चाहता है, लखपती राज्य चाहता है और राज्यासीन स्वर्ग चाहता है।

"बुढ़ापे से बाल सफेद हो जाते हैं, कमजोर दांत टूट जाते हैं, आँखें कमजोर पड़ जाती हैं, कान बहरे हो जाते हैं, केवल लालच ही जवान हो जाता है।"

सवेरे उस तालाब के पास आकर बन्दर ने राजा से कहा, "देव! सूरज के आधा उगने पर तालाब में पैठने वालों को सिद्धि मिलती है, इसलिए सबको इकट्ठे होकर ही घुसना चाहिए। आप मेरे साथ घुसियेगा जिससे पहले देखे स्थान पर पहुँचकर मैं आपको बहुत सी रत्नमालाएं दिखला सकूं।"

सब लोगों के तालाब में घुसने पर राक्षस ने उन्हें खा डाला। उनके देर करने पर राजा ने कहा, "अरे सरदार! हमारे साथी इतनी देर क्यों लगा रहे हैं?" यह सुनकर जल्दी से वह पेड़ पर चढ़कर राजा से बोला, "अरे बदमाश राजा! पानी में रहने वाले राक्षस ने तेरे साथियों को खा डाला। मुझे परिवार नष्ट होने के बैर का बदला मिल गया। अब तू जा। मालिक जानकर मैंने तुझे वहां नहीं घुसाया। कहा भी है—

"जैसे को तैसा, हिंसक से बदला, दुष्ट के प्रति दुष्टता, इसमें मैं दोष नहीं मानता।

तूने मेरा खानदान उजाड़ डाला और मैंने तेरा। यह सुनकर क्रोध से राजा पैदल पांव आये रास्ते से लौट गया। राजा के जाने के बाद अघाया हुआ राक्षस खुशी-खुशी बन्दर से बोला—

"शत्रु मारा गया, मित्र बना, रत्नमाला भी रह गई, हे साधु बन्दर, तूने अच्छा नाल से पानी पिया।"

इसलिए मैं कहता हूं कि

"जो लालच से काम करता है और नतीजे के बारे में नहीं सोचता, चन्द्र राजा की तरह उसकी हँसी होती है।"

यह कहकर उसने चक्रधर से फिर कहा, "मुझे कह तो मैं घर जाऊं।" चक्रधर ने कहा, "भद्र! विपत्ति के लिए धन इकट्ठा किया जाता है, तो फिर

तू क्यों मुझे इस तरह छोड़कर जाता है ? कहा भी है—

"आपत्ति में पड़े मित्र को छोड़कर जो मित्र निठुराई करता है, वह
कृतघ्न उस पाप से नरक जाता है, इसमें शक नहीं।"

सुवर्णसिद्धि ने कहा, "यह ठीक है, यदि पहुंचने लायक स्थान में अपना वस चलता हो। यह स्थान मनुष्य के लिए अगम्य है और तुझे छोड़ने की मुझमें ताकत नहीं है। और जैसे-जैसे चक्र घूमने की तकलीफ में तेरे चेहरे पर देखता हूं तो मेरा ऐसा मन करता है कि मैं झट चल दूं जिससे मेरे ऊपर कोई वला न आ पड़े। कहा है कि

"हे वन्दर, तेरे मुंह की छाया से पता चलता है कि तुझे विकाल
राक्षस ने पकड़ रखा है, इसलिए जो भागता है वही जीता है।"

चक्रवर वोला—"वह कैसे ?" उसने कहा—

विकाल राक्षस और वन्दर की कथा

"किसी शहर में भद्रसेन नामक राजा रहता था। उसकी सब लक्षणों से युक्त रत्नवती नामक एक कन्या थी जिसे राक्षस हर ले जाना चाहता था और रात को आकर उसके साथ रति-क्रीड़ा करता था। पर मंत्रों से राजकन्या के शरीर की रक्षा होने से वह उसे हर नहीं सकता था। कंप इत्यादि अवस्थाओं से उसी समय कन्या राक्षस के पास आने की अवस्था का अनुभव करती थी। कुछ समय वीतने के वाद एक दिन राक्षस आधी रात में घर के कोने में खड़ा था। उस राजकन्या ने कहा, "सखी! देख यह विकाल मुझे इस समय रोज तंग करता है ? क्या इस वदमाश के रोकने का कोई उपाय है ?" यह सुनकर राक्षस ने सोचा, "ऐसा लगता है कि मेरी ही तरह कोई विकाल नाम का दैत्य इसे हरने को रोज आता है, फिर भी उसे हर नहीं सकता। इसलिए घोड़े का रूप धरकर घोड़ों में रहकर देखूं कि उसकी मूरत और प्रभाव कैसे हैं।"

इस तरह राक्षस घोड़े का रूप धर कर घोड़ों के वीच रहने लगा। उसके ऐसा करने पर एक दिन राजमहल में चोर घुसा। वह चोर सब घोड़ों को देखकर उस राक्षस रूपी घोड़े को सबसे अच्छा मानकर उस पर चढ़ गया। इसके

बाद राक्षस ने सोचा, 'जरूर यही विकाल है। मुझे चोर जानकर वह गुस्से से मारने आया है, अब मैं क्या करूं ?' जब वह सोच ही रहा था कि चोर ने उसके मुंह में लगाम लगाकर उसे चाबुक लगाया, जिससे वह डरकर भागने लगा। दूर जाने पर चोर ने भी उसे लगाम खींचकर रोकना चाहा, पर वह तो पहले से भी तेज भागा। उसे लगाम खिचने की परवाह न करते देखकर चोर ने सोचा, 'ऐसे घोड़े नहीं होते जो लगाम की परवाह न करें। इसलिए इसे जरूर राक्षस होना चाहिए। इसलिए जहां कहीं समतल जमीन दिखलाई देगी मैं अपने को गिरा दूंगा, नहीं तो वह मुझे मार डालेगा।' इस तरह इष्टदेव का स्मरण करते-करते उसका घोड़ा बरगद के पेड़ के नीचे से गुजरा। चोर बरगद की जटा पकड़कर पेड़ से लटक गया। वे दोनों एक दूसरे से अलग होकर प्रसन्न हुए और दोनों को अपने जीने की आशा बँध गई।

उसी बरगद के पेड़ पर राक्षस का कोई मित्र बन्दर रहता था। राक्षस को डरा हुआ देखकर उसने कहा, "अरे मित्र! झूठे डर से तू भागता क्यों है ? यह आदमी तेरे खाने लायक है, उसे खा।" वह भी बन्दर की बात सुनकर अपना असली रूप धरकर शंकित चित्त से गिरते-पड़ते भागा। चोर ने भी उस बन्दर की बोली समझकर गुस्से से उसकी लटकती पूंछ मुंह में लेकर चबा डाली। बन्दर ने भी उसे राक्षस से बड़ा मानकर डर से कुछ नहीं कहा, केवल तकलीफ से आँखें बन्द करके बैठा रहा। राक्षस ने उसे ऐसी अवस्था में देखकर यह श्लोक पढ़ा —

"हे बन्दर, तेरे मुंह की छाया से पता चलता है कि तुझे विकाल राक्षस ने पकड़ रखा है, इसलिए जो भागता है वही जीता है।"

यह कहकर वह भागा।

मुझे आज्ञा दो कि मैं घर जाऊं और तुम यहां रहकर इस लालच रूपी पेड़ के फल खाओ।" चक्रधर ने कहा, "इसका यह कारण नहीं है। भाग्यवश ही आदमियों का शुभ और अशुभ होता है। कहा है कि

"जिसका त्रिकूट दुर्ग हो, राक्षस सिपाही हों, कुबेर धन देने वाले हों, जिसका शास्त्र शुक्राचार्य द्वारा लिखा गया हो, ऐसा रावण भी

भाग्यवश नष्ट हो गया।

और भी

"अन्धा, कुबड़ा, तथा त्रिस्तनी राजकन्या, इन तीनों के काम भाग्य के अनुकूल होने से अन्याय से सिद्ध हुए।"

सुवर्णसिद्धि ने कहा, "यह कैसे?" उसने कहा—

अंधे, कुब्जे और त्रिस्तनी राजकन्या की कथा

"उत्तरापथ में मधुपुर नाम का नगर है। वहां मधुसेन नाम का राजा था। उसे विषय-सुख का अनुभव करते हुए त्रिस्तनी कन्या उत्पन्न हुई। उसका पैदा होना सुनकर राजा ने कंचुकी से कहा, "अरे, तू इस त्रिस्तनी कन्या को दूर वन में ले जाकर छोड़ दे, जिससे किसी को पता न लगे।" यह सुनकर कंचुकी ने कहा, "महाराज! यद्यपि त्रिस्तनी कन्या अनिष्ट करने वाली होती है फिर भी ब्राह्मण को बुलाकर पूछ लेना चाहिए, जिससे लोक-परलोक में निन्दा न हो। जैसे—

"जो दूसरे से बराबर पूछता है, सुनता है और हमेशा उसको याद रखता है, उसकी बुद्धि सूर्य की किरणों से नलिनी की तरह बढ़ती है।

और भी

"जानकार आदमी को भी दूसरे से पूछते रहना चाहिए; बड़े राक्षस से भी पकड़े जाकर सवाल पूछने से ब्राह्मण छूट गया।"

राजा ने कहा, "यह कैसे?" उसने कहा—

राक्षसराज द्वारा पकड़े गए ब्राह्मण की कथा

"देव! किसी जंगल में चण्डकर्मा नामक राक्षस रहता था। जंगल में घूमते हुए उसे कोई ब्राह्मण मिला। राक्षस उसके कंधों पर चढ़कर बोला, "अरे! आगे चल।" ब्राह्मण भी मारे डर के उसे लेकर आगे चला। कमल जैसे मुलायम उसके पैर देखकर ब्राह्मण ने राक्षस से पूछा, "तुम्हारे

पैर इतने मुलायम कैसे हैं ?" राक्षस ने कहा, "मेरा यह प्रण है कि गीले पैर मैं जमीन पर नहीं चलूंगा।" यह सुनकर अपने छुटकारे का उपाय सोचता हुआ ब्राह्मण एक तालाव पर पहुंचा। वहां राक्षस ने कहा, "जब तक मैं नहा-धोकर और पूजा पाठ करके लौट न आऊं, तबतक तू यहां से कहीं न जाना।' उसके जाने पर ब्राह्मण ने सोचा, 'जरूर पूजा-पाठ के बाद वह मुझे खा जायगा। इसलिए मैं जल्दी से भागूं जिससे वह गीले पैर मेरे पीछे न आ सके।' ब्राह्मण ने वैसा ही किया। व्रत टूटने के डर से राक्षस भी उसके पीछे नहीं गया।

इसलिए सब कहते हैं कि "जानकार आदमी को भी दूसरे से पूछते रहना चाहिए। बड़े राक्षस से भी पकड़े जाने पर सवाल पूछने से ब्राह्मण छूट गया।"

उसकी बात सुनकर राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा, "हे ब्राह्मणो! मेरे यहां त्रिस्तनी कन्या का जन्म हुआ है। इसकी शांति का कोई उपाय है या नहीं ?" ब्राह्मणों ने कहा—

देव! सुनिए—

"मनुष्य के यहां कम अथवा अधिक अंगों वाली जो कन्या पैदा होती है, वह अपने पति और शील का नाश करती है।

"इनमें से भी अगर तीन स्तनों वाली कन्या अपने पिता की नजर पड़े, तो वह तुरन्त अपने पिता का नाश कर देती है, इसमें संदेह नहीं।

इसलिए इस लड़की को आपको नहीं देखना चाहिए। अगर कोई इस कन्या के साथ विवाह करे तो उसे इस कन्या को देकर देश से बाहर कर दीजिए। ऐसा करने से आपके दोनों लोक सुधरेंगे।"

उनकी यह बात सुनकर राजा ने डंके की चोट पर मुनादी करा दी, "लोगो! इस त्रिस्तनी कन्या के साथ जो कोई व्याह करेगा, उसे एक लाख सोना उसी समय मिलेगा और उसे देश भी छोड़ना पड़ेगा।" मुनादी किये हुए बहुत दिन बीत गए, फिर भी उस कन्या को लेने को कोई तैयार न

हुआ। वह जवान होने तक छिपे स्थान में रहकर यत्नपूर्वक पल-पुसकर बढ़ने लगी।

उसी नगर में कोई अंधा रहता था। उसका मंथरक नाम का एक कुवड़ा आगे लकड़ी पकड़ने वाला था। उन दोनों ने डुग्गी सुनकर आपस में विचार किया, 'भाग्यवश कन्या मिलती हो तो हमें डुग्गी रोकनी चाहिए, जिससे सोना मिले और उसके मिलने से हमारी जिंदगी सुख से कटे। उस कन्या के दोष से कहीं मैं मर गया तो भी दरिद्रता से पैदा हुई उस तकलीफ से छुटकारा मिल जायगा। कहा है कि

"लज्जा, स्नेह, वाणी की मिठास, बुद्धि, जवानी, स्त्रियों का साथ, अपनों का प्यार, दुःख की हानि, विलास, धर्म, तन्दुरुस्ती, बृहस्पति जैसी बुद्धि, पवित्रता, और आचार-विचार ये सब बातें, आदमियों का पेट-रूपी गढ़ा जब अन्न से भरा होता है, तभी संभव हैं।'

यह कहकर उस अंधे ने मुनादी करने वाले को रोक दिया और कहा, "मैं उस राजकन्या से विवाह करूंगा, यदि राजा मुझे उसे देगा।" बाद में राज कर्मचारियों ने जाकर राजा से कहा, "देव! किसी अंधे ने मुनादी रोक दी है, इस बारे में क्या करना चाहिए?" राजा ने कहा —

"अंधा, बहरा, कोढ़ी और अन्त्यज जो कोई भी विदेश जाने को तैयार हो, वह एक लाख मुहरों के साथ इस कन्या को ग्रहण कर सकता है।

राजा की आज्ञा से त्रिस्तनी को नदी के किनारे ले जाकर एक लाख मुहरों के साथ उसे अंधे को देकर तथा नाव पर बैठाकर मल्लाहों से राज-पुरुषों ने कहा, "अरे! देश से बाहर ले जाकर किसी नगर में सपत्नीक उस अंधे को कुबड़े के साथ छोड़ देना।" ऐसा करने के बाद विदेश में जाकर मल्लाहों द्वारा बताए किसी नगर में तीनों घर खरीदकर सुख से रहने लगे। अंधा केवल पलंग पर पड़ा रहता था; घर का काम-काज कुबड़ा चलाता था। कुछ समय बीतने पर त्रिस्तनी का कुबड़े के साथ सम्बंध हो गया। अथवा ठीक ही कहा है कि

"अगर आग ठंडी हो जाय, चन्द्रमा जलाने वाला हो जाय, समुद्र

मीठा हो जाय, तभी स्त्रियों में सतीत्व पैदा हो सकता है।"

एक दिन त्रिस्तनी ने कुवड़े से कहा, "हे सुभग! यदि अंधा किसी तरह मार दिया जाय तो हम दोनों का समय मौज से कटे, इसलिए कहीं से जहर की खोज कर, जो इसे देकर मैं सुखी हो जाऊं।" उस कुवड़े को घूमते-घामते एक मरा सांप दिखलाई दिया। उसे देखकर खुशी-खुशी घर लाकर वह त्रिस्तनी से कहने लगा, "सुभगे! यह काला सांप मिला है। इसकी बोटी-बोटी करके सोंठ इत्यादि मसाले मिलाकर और पकाकर मछली का मांस कहकर उस अन्धे को दे दे। इससे वह फौरन मर जायगा। उसे मछली का मांस बड़ा प्रिय भी है।" यह कहकर कुवड़ा बाहर चला गया। घर के काम मे व्यस्त उसने भी आग जलाकर काले सांप की बोटी-बोटी करके उसे मट्ठे में मिलाया और अंधे से विनयपूर्वक कहा, "आर्यपुत्र! आपका मनचाही मछली का मांस, जिसे आप हमेशा मांगते रहते हैं, मैं लाई हूं। मछलियां पकने के लिए आग पर चढ़ी हैं। जब तक मैं घर का काम करती हूं, आप कड़छल से उसे चला दीजिए।" यह सुनकर वह भी खुशी-खुशी मुंह चाटता हुआ जल्दी से उठकर कड़-छल से उसे चलाने लगा।

मछली समझकर सांप के मांस को चलाते हुए उसकी विषैली भाप से उसके आंख के मांड़े गल गए। इससे बहुत फायदा मानकर वह अंधा अपनी आंखों पर बराबर उसका बफारा देने लगा।

नजर लौट आने पर उसे वहां केवल सांप के टुकड़े ही दीख पड़े। फिर उसने सोचा, 'अरे! यह क्या बात है? उसने तो मुझसे मछली का मांस कहा था, पर यह तो सांप की बोटियां हैं। इसलिए मैं त्रिस्तनी का चाल चलन दरयाफ्त करूं जिससे यह पता लगे कि मुझे मारने की तदबीर उस कुबड़े की है या किसी और की।' यह सोचकर और अपना भाव छिपाकर वह पहले जैसा ही अंधे की तरह काम करने लगा। उसी समय कुवड़ा बेधड़क आकर आलिंगन और चुम्बन से त्रिस्तनी के साथ भोग करने लगा। जब अंधे ने यह देखा तो उसे कोई हथियार मारने के लिए नहीं मिला। क्रोध

से व्याकुल होकर उसने पहले की तरह आग के पास जाकर कुबड़े के पैर पकड़कर अपने सिर पर जोरों से घुमाते हुए त्रिस्तनी की छाती पर पटक दिया। कुबड़े के गिरने से स्त्री का तीसरा स्तन छाती में घुस गया तथा जोर से घुमाए जाने से कुबड़ा भी सीधा हो गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि

"अंधा, कुबड़ा, तथा त्रिस्तनी राजकन्या इन तीनों के काम भाग्य के अनुकूल होने से अन्याय से सिद्ध हुए।"

सुवर्णसिद्धि ने कहा, "भाई! यह सच्ची बात है। भाग्य अगर अनुकूल हो तो सब काम बनता है फिर भी आदमियों को अच्छों की बात माननी चाहिए। जो ऐसा करते हैं उनका तेरी तरह नाश नहीं होता। इसी तरह

"एक पेट और भिन्न सिर वाले एक दूसरे से फल खाने वाले भारुंड पक्षियों की तरह एकता बिना मनुष्य का नाश हो जाता है।"

चक्रधर ने कहा, "यह कैसे ?" सुवर्णसिद्धि कहने लगा —

भारुंड पक्षी की कथा

"किसी तालाब में एक पेट और अनेक सिरों वाला भारुंड पक्षी रहता था। समुद्र के किनारे घूमते हुए लहर से फेंका हुआ अमृत के समान एक फल उसे मिला। उसे खाकर उसने कहा, "समुद्र की लहरों से फेंके हुए अमृत के समान मैंने बहुत से फल खाये हैं। पर इस फल का और ही स्वाद है। क्या यह पारिजात अथवा हरिचन्दन से पैदा हुआ है अथवा यह कोई अमृतमय फल अनजाने में भाग्यवश यहां आ गिरा है ?" जब वह यह कह रहा था तब उसके दूसरे मुंह ने कहा, "यदि ऐसी बात है तो मुझे भी थोड़ा दे जिससे मैं भी अपनी जीभ को सुखी बना सकूं।" इस पर पहले सिर ने हँसकर कहा, "हम दोनों का पेट तो एक ही है। एक साथ ही उसकी तृप्ति होती है फिर अलग खाने से क्या फायदा ? बाकी बच सके तो अपनी प्रिया को प्रसन्न करेंगे।" यह कहकर उसने बाकी बचा फल भारुंडी को दे दिया। वह भी उसे चखकर खुशी से उसे भेंट चूमकर अनेक तरह से उसकी खुशा-

मर्दें करने लगी। उसी दिन से दूसरा सिर दुखी रहने लगा। एक दिन दूसरे सिर को एक जहरीला फल मिला। उसे देखकर उसने कहा, "अरे! स्वर्ग की चाह न करने वाले पुरुषाधम ! मुझे जहरीला फल मिला है। तेरे अपमान के कारण उसे मैं अभी खाता हूं।" पहले ने कहा, "मूर्ख! ऐसा मत कर। ऐसा करने पर हम दोनों का नाश हो जायगा।" ऐसा कहने पर भी दूसरे सिर ने अपमान के कारण वह फल खा लिया। अधिक कहने से क्या, उस फल के खाने से दोनों ही मर गए।

इसलिए मैं कहता हूं कि

"एक पेट और भिन्न सिर वाले एक दूसरे से फल खाने वाले भारुंड पक्षियों की तरह एकता विना मनुष्य का नाश हो जाता है।"

चक्रधर ने कहा, "यह ठीक है; तू घर जा। पर तुझे अकेले नहीं जाना चाहिए। कहा है कि

"स्वादिष्ट चीजों को अकेले नहीं खाना चाहिए। अगर दूसरे सोये हों तो अकेले जागना नहीं चाहिए। अकेले प्रवास नहीं करना चाहिए और अकेले धन कमाने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

और भी –

"रास्ते में डरपोक का साथ भी कल्याणकारी हो जाता है; साथ में रहे केकड़े ने ब्राह्मण की जान बचाई थी।"

सुवर्णसिद्धि ने पूछा, "यह कैसे?" उसने कहा—

बटोही ब्राह्मण और केकड़े की कथा

"किसी नगर में ब्रह्मदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। एक समय काम से गांव के बाहर जाते हुए उसकी मां ने उससे कहा, "वत्स! अकेले क्यों जाता है, किसी साथी को खोज कर।" उसने कहा, "मां, डर मत, रास्ते में कोई डर नहीं है; काम से मैं अकेला ही जाऊंगा।" उसका यह निश्चय जानकर पास की बावली से एक केकड़ा लाकर उसकी मां ने कहा, "वत्स! अगर तुझे जाना जरूरी ही है तो यह केकड़ा भी तेरा सहायक होगा। इसे लेकर तू जा।" मां की

आज्ञा से वह भी दोनों हाथों से केकड़े को लेकर कपूर की पेटी में उसे रखकर जल्दी से चल पड़ा। जाते जाते गरमी से व्याकुल होकर रास्ते में लगे किसी पेड़ के नीचे जाकर वह सो गया। उसी बीच में पेड़ के खोखले से निकल कर कोई सांप उसके पास आ पहुंचा। कपूर की सुगंध प्रिय होने से ब्राह्मण को अकेला छोड़कर उसने थैली चीर डाली और उसके अन्दर रखी हुई कपूर की पेटी को लालच से खा गया। उस केकड़े ने पेटी के अन्दर रहते हुए भी सर्प को मार डाला। ब्राह्मण ने जागकर देखा तो अपने पास कपूर की पेटी पर मरा हुआ काला सांप था। उसे देखकर उसने सोचा, 'इस सांप को केकड़े ने मारा है।' इस तरह प्रसन्न होकर वह बोला, "अरे! मेरी माता ने ठीक ही कहा था कि आदमी को कोई मददगार बनाना चाहिए, अकेले नहीं जाना चाहिए। मैंने श्रद्धापूर्वक मन से माता की बात मानी, इसलिए इस केकड़े ने सांप से मेरी जान बचाई। अथवा ठीक ही कहा है कि

"क्षीण चन्द्रमा चमकते हुए सूर्य का आश्रय ग्रहण करता है। पूर्ण होने पर वह बादलों को बढ़ाता है। विपत्ति में दूसरे ही सहायक होते हैं और धनिकों का धन दूसरे ही उपभोग करते हैं।

"मंत्री, वीर, ब्राह्मण, देव, ज्योतिषी, वैद्य और गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि होती है।"

यह कहकर ब्राह्मण अपने इच्छित स्थान को चला गया।

इसलिए मैं कहता हूं कि

"रास्ते में डरपोक का साथ भी कल्याणकारी होता है। साथ में रहे केकड़े ने ब्राह्मण की जान बचाई थी।"

यह सुनकर सुवर्णसिद्धि चक्रधर की आज्ञा लेकर अपने घर चला गया।

निर्देशिका